राजस्थान म किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

महाकाव

पृथ्वीराज राठौड़

व्यक्तित्व और कृतित्व

प्रो० भूपतिराम साकरिया
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
टी वी पटेल आर्ट्स कालेज,
वल्लभविद्यानगर (गुजरात)

पचशील प्रकाशन, जयपुर

आचार्य
प० बदरीप्रसादजी साकरिया

राजस्थानी भाषा के मूर्धन्य
विद्वान
कोशकार व शोधवेत्ता
पूज्य पिताजी
के
श्री चरणो मे सादर समर्पित

राजस्थान म किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

परिप्रेक्ष्य

डेढ दशक पूर्व जब पूज्यपाद प० बदरीप्रसादजी साकरिया बीकानेर से प्रकाशित त्रैमासिक शोधपत्रिका 'राजस्थान भारती' के सपादक थे तब दो अभिनव विशेषाक प्रकाशित हुये प्रथम, राजस्थानी को अपनी मातृभाषा इटालियन से भी अधिक प्यार करने वाले (म्हने जित्तो प्रेम म्हारी देस भासा इटालियन सू है, उणकरता इधको मारवाडी सू है उणमे बळ नै तेज है और वा बोहळ परवार री तथा मीठी है) शोधवक्ता और विद्वान डॉ० एल पी तस्सितोरी स सबधित था और द्वितीय कवि शिरोमणि वीरवर महाराज पृथ्वीराज राठौड से सबधित दोनो का बीकानेर से अनन्य रागात्मक सबध था डॉ० तस्सितोरी[1] ने प्रथम जोधपुर और तत्पश्चात् बीकानेर को और उनके माध्यम स सारे मरुप्रदेश को अपना कार्य क्षेत्र बनाया और अत म इसी प्रदेश की डेढ गज भूमि का अधिकारी बना बीकानेर के साहित्यकारो का शतश अभिनदन कि उन्होने हमारी मातृभाषा से प्रेम करने वाले विदेशी मनीषी के स्मारक का निर्माण करवाया और मृत्यु के ३७ वर्ष बाद सन १९५६ म प्रथम बार इटालियन दूतावास के सास्कृतिक दूत की उपस्थिति मे अपनी श्रद्धाजली अर्पित की 'राजस्थान भारती' के इस अद्वितीय विशेषाक से राजस्थानी भाषा के प्रेमियो को बडा बल और प्रेरणा मिली राजस्थानी के नवजागरण के काल मे इस अक का स्थान चिरस्थायी रहेगा

पृथ्वीराज राठौड तो इसी भूमि की उपज थे उन्हे अपनी मातृभूमि के चप्पे चप्पे और मातृभाषा के वर्ण-वर्ण से अतिशय प्यार था वे इस प्रदेश के सच्चे प्रतिनिधि थे जिनके एक हाथ म खड्ग तो दूसरे मे लेखनी थी और वह भी ऐसी कि जिसका कोई सानी नही था 'राजस्थान भारती' के महाराज पृथ्वीराज राठौड विशेषाक मे देश के अनेक लब्धप्रतिष्ठ सहित्यकारो का सराहनीय योगदान रहा अन्य वरिष्ठ बधुओ के साथ मैंने भी अपने श्रद्धा सुमन चढाये थे तब से मेरे मन मे समाज व सरकार द्वारा उपेक्षित इस समृद्ध भाषा के मध्यकालीन कवि पृथ्वीराज राठौड के उदात्त व्यक्तित्व और उनके उत्कृष्ट कोटि के वाड्मय को प्रकाशित करने की धुन लगी

---

१ पृथ्वीराजजी की 'वेलि क्रिसन रुकमणीरी' का सबसे पहले सम्पादन करके प्रकाश मे लाने का श्रेय डॉ० तस्सितोरी को है जिसको एशियाटिक सोसायटिक कलकत्ता ने सन् १९१७ मे प्रकाशित किया था।

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

रही मैंने इ स्टीटयूट के डाइरेक्टर को एक पत्र लिख कर यह सुझाव भी दिया था कि पृथ्वीराज राठौड विशेषाक और परिशिष्टाक' के सारे लेखो तथा तदविषयक कुछ लेख अ य अधिकारी विद्वानो से लिखवा कर उ हे एक ग्रथ रूप दिया जाय कदाचित् धनाभाव अथवा किसी अन्य प्रकार की कठिनाई के कारण उस समय वे ऐसा न करवा सके इस विषय की महत्ता म आज भी किसी प्रकार का अतर नही आया है विपरीत इसके, ज्यो ज्यो राजस्थानी भाषा मे अधिकाधिक शोधकार्य होने लगे त्यो त्यो यह विद्वानों के आकर्षण का के द्र बनती गई आज स्थिति यह है कि भारतीय आर्यभाषाओ के विकासक्रम तथा उनके भाषा वज्ञानिक अध्ययन मे इस भाषा का अपरिहार्य महत्व समझा जाने लगा है

इसके भाषाकीय महत्व को समझ देश के अनेक विश्वविद्यालयो म हिंदी विषय के अ तगत, स्नातकोत्तर स्तर पर इसके उक्त ग्र थ का अध्ययन भी गत अनेक वर्षों से करवाया जा रहा है प्रारम्भ मे यह व्यवस्था अवश्य ठीक रही होगी, पर बदलते सदभ मे राजस्थानी का एक स्वतन्त्र विषय मानकर आगे बढना ही उचित होगा केन्द्रीय साहित्य अकादमी ने राजस्थानी भाषा को अन्य भारतीय भाषाओ के समान स्वतन्त्र रूप देकर सही दिशा म कदम बढा भी दिया है अकादमी के इस निणय का व्यापक अनुकूल प्रभाव भी पडा—

(१) प्रात की जनता और साहित्यकारो मे आशा और उत्साह का सचार,

(२) स्वतन्त्र राजस्थानी साहित्य अकादमी की माग का बल पकडना,

(३) स्कूलो कालिजो, और प्रात के विश्वविद्यालयो मे इसके अध्ययन और अध्यापन की व्यवस्था का शुभारम्भ तथा,

(४) सभी साहित्यिक विधाओं मे द्रुतगति से साहित्य निर्माण के काय का आरम्भ

यह भी इस भाषा का क्रूर उपहास ही है कि एक ओर हिंदी के विद्वान, इतिहासकार और भाषाविद राजस्थानी को हिंदी की प्रादेशिक बोली मान कर हिंदी के वीरगाथाकाल अथवा आदिकाल मे राजस्थानी की कृतियो का भरपूर उपयोग करते हैं तथा दूसरी ओर हिंदी के इन्ही विद्वानों ने वीरगाथाकालीन साहित्य के अतिरिक्त अन्य किसी भी काल मे इसके साहित्य और साहित्यकारो को कोई स्थान नही दिया है वीरगाथाकालीन साहित्य मे से राजस्थानी साहित्य को निकालने के बाद हिंदी के वीरगाथाकाल मे रह ही कितना जाता है कि वह अपनी प्राचीनता का बोध करा सके ? यह निहित स्वार्थों का उपेक्षात्मक दृष्टिकोण ही है

राजस्थानी का मध्ययुगीन साहित्य समग्र देश की मूल साहित्यिक चेतना से कटा हुआ न था परिमाण एव स्तर दोनो ही दृष्टियो से यह काल बड महत्व का रहा है आन शान और धम के नाम पर जो युद्ध इस काल मे हुये है और इनमे जिस अप्रतिम शौय के दशन हमे होते हैं, यह साहित्य इसका जीता जागता प्रमाण है विश्वकवि रवीबाबू ने इस विशाल काव्य सामग्री के कुछ अश का रसास्वादन करने के पश्चात सत्य ही कहा है कि 'भक्ति रस का काव्य तो भारतवष के प्रत्येक साहित्य मे किसी न किसी कोटि म पाया जाता है राधाकृष्ण को लेकर हर प्रात ने मद व उच्चकोटि का साहित्य पदा किया है लेकिन राजस्थान न अपन रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है, उसकी जोड का साहित्य नही मिलता' वास्तव मे राजस्थानी मे इस काल मे वीर, भक्ति [सगुण और निगु ण, सगुण धारा मे राम और कृष्ण के अतिरिक्त देवी (शक्ति)] और शृगार की त्रिवेणी अबाध गति से बह रही थी छद शास्त्रीय ग्र थो के निर्माण के अतिरिक्त जिस अनुवाद की परम्परा का दशन हमे १४वी शताब्दी से होता है, वह भी अक्षुण्ण थी सस्कृत प्राकृत अपभ्र श और फारसी मे रचित विविध विषयो के अनेको ग्र थो के राजस्थानी अनुवाद हमे आज उपलब्ध हैं इस काल के गद्य-साहित्य की ओर दृष्टिपात करें तो 'ख्यात' और 'वात की विविध शैलिया मे लिखी जो प्रचुर सामग्री हमे प्राप्त है, उससे उसकी समृद्धि और विशालता का पता चलता है इस लिखित साहित्यिक परम्परा के अतिरिक्त जनकाव्या के रूप मे लोक साहित्य का तो राजस्थान रत्नाकार है नरसीजी रो माहेरो ढोला मारू रा दूहा मूमल का छबियो, निहालदे, रूपादे तोलादे, पाबूजी रा पवाडा, बगडावत, तेजाजी, गोपीचद, भरथरी आदि ऐसे जनकाव्य हैं, जिनका अध्ययन राजस्थान के इतिहास को समझने के लिये नितात आवश्यक है राजस्थानी साहित्य के एक विशिष्ट छद 'गीत' का भी इस युग मे वचस्व रहा है दुरसा आढा ईसरदास हुक्मीचद बाँकीदास, महाराजा मानसिंह इत्यादि अनक प्रसिद्ध कविया ने ६१ प्रकार के गीत-छदा मे सभी प्रकार के विषयों को लेकर सुदर रचनाओं का निर्माण किया है

राजस्थानी भाषा के इस स्वण युग मे अवतरित महाराज पृथ्वीराज राठौड पर निश्चय ही इस वविध्य का प्रभाव पडता सत्य तो यह होगा कि पृथ्वीराज न एक ही साथ इन सारी विधाओ को अपना कर उनको और पुष्ट कर दिया उन्होंने जिस विषय, छद, अलकार, शली, और रस को छुआ, वही उस भाग्यशाली हो गया 'वेलि' उनकी प्रबधात्मक रचना है तो वसदेरावउत दसरथरावउत तथा गगाजी रा दूहा उनकी मुक्तक शली की दोहो म रची रचनाएँ हैं उद्बोधन और ईश्वरस्तुति के पदं रीति काव्य हैं, तो उनकी प्रशस्तिपरक रचनाएँ गीत' छद मे लिखी उत्तम रचनाएँ है इस प्रकार इस एक ही प्रतिभाशाली पुरुष न राजस्थानी साहित्य को कला और भाव दोनो ही पक्षा की दृष्टि से प्रौढता की कोटि मे लाकर रख दिया था

राजस्थान में किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

(घ)

एक कुशल संगीतज्ञ व नर्तक की भांति पृथ्वीराज कला मर्मज्ञ थे निम्न छंद में भगवती जोगमाया की नृत्यलीला का उन्होंने जो अनोखा वर्णन किया है, वह संगीत, नृत्य शास्त्र के साधारण ज्ञाता का काम नहीं है वाद्य और नृत्य की विभिन्न ध्वनियों से श्रवणेन्द्रिय तो क्या अन्य सारी ज्ञानेन्द्रियाँ झंकृत हो उठती हैं, मन मयूर नाच उठता है —

छंद गाहा

गुज्जै गुहिर नद्द गण गण ग्रहि कुडता माहिण गुज्ज ।
तिण नाटारभ सुर नर त्रिय नच दहवह दहवह वयण सु वज्जै ॥

छंद पद्दाडगति

व्रह वह वाग्डिदिक व्रह व्रह वाग्डिदिक व्रह तत तत तत तत्कार कर ।
धप मप पप धम दौं दौं दौं दौं दौ गिक्ट भ्रदग धुनि ध म स धर ॥
किट किट धौकटि धौं धौं धौ धौ धौ धिक्टि कटि कटि धौं धौं
गुण गुण गुण गुण ताल गुण ।
तो सगति सभ रभ नाटारभ जुग डुग जुग डुग खेलत जोगणिय ॥ १ ॥

थ थाग्डिग्कि थिरि रि रि रि रि रि रीथि टिक टिप धुनि धमक पय ।
थुग थुग थुग थागग्डिदिक तत थट भण ण ण ण ण झकार रय ॥
भ भ भ भागग्डिदिक भ भ भ भ भ रवद्द भण ।
तो सगति सभ रभ नाटारभ जुग डुग जुग डुग खेलत जोगणिय ॥ २ ॥

कटि धुग्डिदौं कटि धुग्डिदौं कटि कडदकटि धुग्डिदौं धुटि धुटि किट ।
धौं धौं ताल मिल ।
च च च च च च चप्पट च च पट रण ण ण ण ण ण कि ताल भल ॥
ता थेई थई थेई थाग्डिदिक थाग्डिदिक तत तत थेई तत ता नाटारभ तण ।
तो सगति सभ रभ नाटारभ जुग डुग जुग डुग खेलत जोगणिय ॥ ३ ॥

धाग्डिदिक धम धौं धौं धौं धौं धम धम धम धम रम भम घुघरिय ।
डिग्डि ग्डिदा दा दा भणतकार भम भम भणकि झुमरिय ॥
गु" गु" गु" गों गौं गिगित गिगित गिगित गिन तौग्डिदिक
तास स ण ण ण ण तणं ॥
तो सगति सभ रभ नाटारभ जुग डुग जुग डुग खेलत जोगणिय ॥ ४ ॥

छंद कलस

तण ण ण ण ण ण ण तण ण ण ण त लत तण ण णण फर र र र फाळ ।
फर गद फण ण ण ण ण पडि पडसाद पयाळ ॥
धिग्डिदि धड ड ड ड धर बूजँ रमै रूपत्रि रास गुहिर
त्रिह जद सुगजँ गूजँ गुहिर ॥ ५ ॥[1]

ग्रंथ के शीर्षक से स्पष्ट है कि ग्रंथ दो प्रमुख भागो में विभाजित है—व्यक्तित्व और कृतित्व कृतित्व को पुन दो भागा मे विभाजित किया गया है—वेलि और अन्य रचनाएँ व्यक्तित्व खंड मे राठौडा (राष्ट्रकूटो) के मारवाड मे आने व उनके जोधपुर बीकानेर आदि अनेक राज्यों की स्थापना का सिंहावलोकन करते हुये, महाकवि के जीवन चरित्र का आलेखन किया गया है, जो राजस्थानी और हिंदी के अनेक ग्रंथो द्वारा सम्पुष्टित है वेलि खण्ड के अन्तर्गत वेलि के संपादन को छोड कर, केवल उसका ऐतिहासिक सांस्कृतिक एव साहित्यिक विवेचन ही प्रस्तुत किया गया है यद्यपि विभिन्न विद्वानो द्वारा संपादित वेलि के अब तक छ संस्करण देश के विभिन्न भागो से प्रकाशित हो चुके हैं, फिर भी इसके मूल पाठ के सुंदर संपादन की आवश्यकता अब भी बनी हुई है प्रस्तुत ग्रंथ मे वेलि के संपादन काय का समावेश न करने का एक मात्र कारण ग्रंथ की कलेवर वृद्धि का भय था पर दूसरी ओर वेलि के आलोच्य खण्ड मे कई सवथा नवीन अध्याय यथा (१) वेलि का काव्य रूप (२) वेलि म औचित्य तथा (३) वेलि मे पृथ्वीराज की भक्तिभावना आदि को सयुक्त कर इसके सर्वांगो को पुष्ट किया गया है

कृतित्व के दूसरे खंड म अन्य रचनाओ के अन्तगत प्रत्येक रचना के प्रारम्भ के पूव विषय प्रवेश की दृष्टि से एक एक भूमिका दी गई है इन विषय प्रवेशों मे विषय पर सामान्य प्रकाश ही न डाल कर, इसकी संक्षिप्त साहित्यिक-समीक्षा भी दी गई है इसके पीछे आशय यह रहा है कि ऐसे प्रयास से विषय को हृदयगम करने मे सुविधा रहेगी अद्यावधि अप्रकाशित इन अन्य रचनाओ के मूल पाठ के नीचे शब्दार्थ और कतिपय स्थानो पर पाठान्तर भी दिये गये हैं मेरे लिये उचित तो यह होता कि इन कृतियो के सर्वांगो को आवेष्टित करती हुई एक विस्तृत समालोचना का इस ग्रंथ मे समावेश होता, पर जैसा कि ऊपर निर्देश किया जा चुका है कलेवर-वृद्धि

---

१ इस ग्रंथ के छपते छपते श्री सौभाग्यसिंह शेखावत का 'वरदा' वर्ष १८ अंक २ में एक लेख पढने को मिला शेखावत ने उपयुक्त गीत महाराज पृथ्वीराज राठौड कृत माना है वे अधिकारी शोधवेत्ता हैं और 'अमृत ध्वनि' के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह गीत भी कवि ने ही रचा होगा पर छंद में कहीं भी पृथ्वीराज का नामोल्लेख न होने के कारण संशय होता है संशय का एक कारण यह भी है कि स्वयं लेखक ने कहीं भी वह आधार नहीं दर्शाया है जिससे यह प्रमाणित हो कि यह छंद महाराज पृथ्वीराज कृत ही है

और समयाभाव इसमें बाधक रहे यह अवशता है, पर भविष्य में इस अभाव को पूर्ण करने की हार्दिक इच्छा है

प्रस्तुत ग्रंथ के परिशिष्ट के रूप में व्यक्ति, स्थान, संस्था, संदर्भ ग्रंथ और पत्र पत्रिकाओं की अकारादिक्रम में नामानुक्रमणिका देकर इसे और अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है

'महाकवि पृथ्वीराज, व्यक्तित्व व कृतित्व' शोध का विषय है और किसी शोधार्थी द्वारा इसके आधे भाग का समुचित रूप से प्रस्तुत करने पर उसे पी एच-डी की डिग्री प्राप्त हो सकती थी पर मेरा उद्देश्य कुछ दूसरा ही रहा है

इस विषय पर अपने विचारों को ग्रंथबद्ध करने की प्रेरणा तो मुझे बहुत पहले ही मिल चुकी थी और रेंगता सा काम कर रहा था, पर पूज्य पिताजी की स्नेहमयी रुष्टता ने इसमें वेग ला दिया ग्रंथ के प्रत्येक चरण पर मुझे उनका मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा है मैं तो सदैव उनका ऋणी ही रहना चाहता हूँ

ग्रंथ के तैयार करने के बाद भी इसके प्रकाशन का प्रश्न तो था ही संयोग से पंचशील प्रकाशन जयपुर के प्रतिनिधि श्री कूर्मसिंह राठौड से मिलना हुआ उन्होंने इसे पूर्ण करने के लिये मुझे प्रोत्साहित किया और एक दिन इस प्रकाशन संस्था के मालिक व्यवस्थापक श्री मूलचंदजी गुप्ता का पत्र मिला कि पाडुलिपि शीघ्र ही प्रेषित कीजिये श्री मूलचंदजी गुप्ता ने बडी त्वरा से रसपूर्वक इस काम को अपने हाथ में लिया प्रस्तुत ग्रंथ का यह सौष्ठवयुक्त स्वरूप इन के प्रयत्नों का परिपाक है

इस कार्य के प्रारंभ से अंत तक मुझे अनेक मित्रों का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सहयोग मिलता रहा है, मैं उन सबका आभारी हूँ

साकरिया सदन,
वल्लभविद्यानगर (गुजरात)

भूपतिराम साकरिया

अनुक्रम

राजस्थान म किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

व्यक्तित्व

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

व्यक्तित्व

वश

तेरहवी शती के अतिम चरण मे कन्नौज के राठौड राजा जयचद्र के वशज सेतराम के पुत्र राव सीहा मारवाड आये थे[1] उन्होने सवप्रथम 'खेड' पर अधिकार

---

१ राव सीहा, जिनका सिघसेन नाम भी ख्यातो मे उल्लिखित है, बडे धमपरायण क्षत्रिय वीर थे व अपने परिवार और परिग्रह के साथ वि स १२९२ म द्वारका की यात्रा पर जात हुए मारवाड आये थे उन्होने तब भीनमाल म मुलतान के आततायी मुसलमानो द्वारा आक्रा त प्रजा की रक्षा की थी द्वारका से लौटते हुए जब उनका मुकाम पाली मे हुआ तो वहाँ के ब्राह्मणो (जो बाद मे पालीवाल ब्राह्मण कहलाए) ने भी उनसे निवेदन किया कि उनकी भी भील, मेर मैणे आदि दस्युओ से रक्षा करें तदनुसार लुटेरो का दमन कर के पाली के ब्राह्मणों को भी अभय किया वहाँ उन्हे यह पता लगा कि खेड के स्वामी गोहिल और उनके मत्री डाभियो मे अनबन के कारण राज्य मे अव्यवस्था व लूट खसोट के कारण प्रजा सत्रस्त है सीहाजी न गोहिलो और डाभियो दोनो का दमन करके वहाँ अपना राज्य स्थापित कर दिया इसी बीच पाली को मुसलमानो ने लूटना प्रारम्भ कर दिया सीहाजी उनके मुकाबिले के लिये पाली चढ़ आये मुसलमाना को पाली से खदडते हुए जब वे बीठू गाँव आये तो सीहाजी वहाँ वीरगति को प्राप्त हुए गोहिलो ने इस बीच खेड पर पुन अधिकार कर लिया तब राव आसथान ने खेड पर आक्रमण करके गोहिलो को मारवाड स मार भगाया और वहाँ अपना निष्कटक राज्य स्थापित कर दिया मारवाड मे सर्वप्रथम खेड पर शासन होन के कारण मारवाड के राठौडो की मूल शाखा 'खेडेचा' नाम स प्रसिद्ध हुई मारवाड से भागे हुए गोहिलो और डाभियो ने सौराष्ट्र मे आकर अपन अपन राज्यों की स्थापना की

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

जमाया[1] उनके पुत्र आसथान खेड के अधिकारी हुए आसथान का एक भाई सोनग ईडर राज्य का अधिकारी हुआ[2] और सोनग से छोटा भाई अज ओखामडल का अधिकारी हुआ[3]

इसी प्रकार आगे जाकर राव सीहा का परिवार बहुत भाग्यशाली, बलशाली और नामांकित हुआ उनका वश दसाधिक राज्यो का सस्थापक[4] और लक्षाधिक परिवारो के रूप मे भारत के अनेक भागो मे प्रसरित और ख्यातिलब्ध हो गया

इन्ही समृद्ध और शक्तिशाली राठौड राज्यकुलो में पाबू मल्लिनाथ, राव कल्लाजी रायमलोत, महाराजा सावतसिंह (नागरीदास)[5], महाराजा जसवतसिंह (प्रथम), महाराजा अनूपसिंह, महाराजा मानसिंह, मीराबाई, बनीठजी और रूपादे एव वतमान महाराजा डॉ रघुबीरसिंह (सीतामऊ) आदि अनेक ख्यातनामा भक्त, विद्वान, कवि, विद्या व्यसनी, लेखक व वीर उत्पन्न हुए हैं इसी वश मे जोधपुर को बसाने वाले राव जोधा के पुत्र राव बीका ने बीकानेर राज्य की स्थापना की

---

१ खेड का प्राचीन नाम क्षीरपुर अथवा खेड पाटण भी रहा है, जो लेखक के गाव बालोतरा से ६ मील दूरी पर अवस्थित है किसी समय यह एक विशाल वभवशाली नगर था मीलो दूर स्थित वज्जावा (वज्रावास) तेमावा या तम्मावा (ताम्रावास) सोभावा या शोभावास आदि निकट के ग्राम इस नगर के मोहल्ले कहे जाते हैं लूनी नदी के किनारे पर स्थित यह नगर वष्णव शव, एव शाक्त आदि सम्प्रदायो का सगम एव तीथस्थान है इस समय खडहरो के बीच चार भग्न हिन्दु मदिर ही शेष हैं बडे मदिर म चतुभुज विष्णु की तेरहवी शती की अत्य त भव्य कलाकृति अखडित रूप मे विद्यमान है इसके जीर्णोद्धार का काय सवप्रथम लेखक के पिताश्री और उनकी मित्रमडली ने उठाया था

२ यहाँ की राठौडो की शाखा का नाम 'इडरिया' राठौड हुआ

३ यहाँ की राठौडो की शाखाओ के नाम वाढेल व वाजी हुए

४ मडोवर (जोधपुर) बीकानेर किशनगढ, रतलाम, सीतामऊ, झाबुआ, अमझरा, भिणाय ईडर आदि

५ भक्त कवि नागरीदास की पत्नी बनीठनीजी भी प्रसिद्ध भक्त कवयित्री थीं राव सीहा के वश के सभी राठौड राजघरानो मे एसी अनेक रानियाँ और पडदायतें भक्त कवयित्रियाँ हो गई हैं

जन्म

'वेलि क्रिसन रुकमणी री' एव अनेक ग्रन्थो के प्रणेता तथा हमारे ग्र थ नायक, महाकवि पृथ्वीराज राठौड इन्ही राव बीका की चौथी पीढी मे थे [१] राव कल्याणमल के पुत्र और बीकानेर नरेश महाराजा रायसिंह के अनुज, वीरवर पृथ्वीराज का जन्म सवत १६०६ की मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को बीकानेर मे हुआ था उनकी माता का नाम भगतादेजी सोनगरी था [२]

महाराज पृथ्वीराज राव कल्याणमल के तृतीय पुत्र थे [३]

---

१ आचार्य प बदरीप्रसाद साकरिया द्वारा सपादित 'मुहता नैणसी री ख्यात', भाग तीसरा, पृ ३१ — 'बीका के लूणकरण', लूणकरण के जतसी, जतसी के कल्याणमल और कल्याणमल के रायसिंह, जिनके भाई पृथ्वीराज थे

२ वही । भाग तीसरा पृ ३१,

३ (अ) वही । भाग तीसरा पृ २०६ राव श्री कल्याणमलजी रै कवरा रा नाम —

(१) महाराज श्री रायसिंघजी
(२) रामसिंघजी
(३) प्रिथीराजजी
(४) सुरताणजी
(५) भाण
(६) अमरो (अमरसिंघ)
(७) गोपाळदास
(८) राघवदास
(९) डूगरसी (डूगरसिंघ)

(ब) श्री अगरचद नाहटा ने पृथ्वीराज दिवस पर दिये गये अपने भाषण (राजस्थान भारती, भाग ७, अक १ २) मे राजकुमारों के नाम इस प्रकार दिये हैं—

(१) रायसिंघ,
(२) रामसिंघ,
(३) सुरताण,
(४) पृथ्वीराज
(५) भाण,
(६) गोपाळदास,
(७) राघौदास
(८) अमरो
(९) डूगरसी,
(१०) भाखरसी,
(११) भगवानदास

श्री नाहटा ने इसका आधार उद्धृत नही किया है

(स) वीर विनोद' मे बीकानेर की तवारीख के अन्तर्गत पृ ४८५ पर कल्याणमल के दस पुत्रा के नाम इस प्रकार दिये हैं —

(१) रायसिंह,
(२) रामसिंह
(३) पृथ्वीराज
(४) अमर सिंह
(५) भाण
(६) सुरताण
(७) सारगदे,
(८) भाखरसी
(९) गोपालसिंह
(१०) राघवदास

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपयुक्त तीनो उद्धरणा मे न केवल क्रम भेद है बल्कि सख्या भेद भी है दूसरे उद्धरण में पुत्रो की सख्या बढकर ग्यारह हो गई है पृथ्वीराज का स्थान तीसरे स्थान की जगह चौथा हो गया है

राजस्थान में किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

पृथ्वीराज के वशज

महामहोपाध्याय श्री ओझाजी कृत 'बीकानेर राज्य का इतिहास' भाग दो पृ ७०१ पर पृथ्वीराज के वशजा की वश-वृक्षावली इस प्रकार दी गई है —

(१) पृथ्वीराज (२) सुदर्सिह (सुदरसेन) (३) केशरीसिह (४) विजसिह (५) छत्रसिह (६) जोतसिह (७) मुकनसिह (८) कुशलसिह (९) लूणकरण (१०) सूरजमल (११) हरिसिह (१२) गणपतसिह (१३) मेघसिह

स्वय पृथ्वीराज के दो पुत्र थे जिनके नाम क्रमश (१) सुदशन (सुदर्सिह) तथा (२) गोकलदास है

पृथ्वीराज के वशज 'पृथ्वाराजोत बीका' कहलाते हैं तथा बीकानेर राज्यान्तगत ददरेवे' के ठाकुर हैं

व्यक्तित्व

'ऊगती बाजरी रा बोकना इक' वे (होनहार बिरवान के होत चीकने पात)-हमारे चरित्रनायक बाल्यकाल से ही विलक्षण प्रतिभा के घनी थे प्रत्यक्ष दिखलाई पडनवाले विरोधी गुणो से परिपूर्ण महाकवि पृथ्वीराज राठौड साहित्याकाश के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र थे यद्यपि प्रारम्भ से ही वे ऐश्वय और विलास मे पले थे, फिर भी उनकी उत्कृष्ट भगवत् भक्ति, प्रतिभा सम्पन्न काव्यशक्ति और वदुष्य, अप्रतिम वीरता तथा सुडौल स्वरूप आदि उनके बहुमुखी प्रभविष्णु व्यक्तित्व के परिचायक थे

दो सौ बावन वष्णवन की वार्ता' के अनुसार महाराज पृथ्वीराज बाल्यकाल स ही बडे गभीर व साधु प्रकृति के थे — 'ये पृथ्वीसिहजी बीकानेर के राजा कल्याणसिहजी के यहाँ ज मे सो बालपणे सो इनको चित्त साधु सगति में रहे देश देस के साधु वहाँ आवत तिनसे य मिले इन सबका इतना व्यापक प्रभाव पृथ्वीराज के बाल मस्तिष्क पर पडा कि जब ये बडे हुए सवप्रथम गोकुल व मथुरा की यात्रा को गये

वैवाहिक जीवन

यद्यपि पृथ्वीराज की पत्नियो के सबध मे विद्वानों मे मतैक्य नहीं है और अनेक प्रकार के वाद प्रचलित हैं फिर भी एक बात निसदिग्ध है कि उनकी एक अथवा अनेक सभी पत्नियाँ प्रसिद्ध सुदरियाँ विदुषियाँ और वीर रमणियाँ रही हैं

उनका विवाह जसलमेर म हुआ था उनकी प्रथम पत्नी का नाम लालादे तथा द्वितीय का नाम चापादे (चपावती) था दोनों ही जसलमेर के रावळ हरराज

की पुत्रिया थी [1]

---

१ (अ) राजस्थान भारती पृथ्वीराज विशेषाक के परिशिष्टाक म राठौड पृथ्वीराज की पत्नी चपावती' — ले श्री अगरचद नाहटा स आचाय प बदरीप्रसाद साकरिया

(ब) जसलमेर के इतिहासानुसार रावळ हरराज की तीना पुत्रियो के नाम क्रमश गगा चापा और नाथी मिलता है

(स) डॉ हीरालाल माहेश्वरी ने अपने शोध प्रबन्ध 'राजस्थानी साहित्य' पृ १५२ मे लिखा है कि 'पृथ्वीराज के तीन विवाह हुए थे प्रथम महाराणा उदयसिंह की पुत्री से, दूसरा जसलमेर के रावळ हरराज की बटी लालादे और तीसरा लालाद की मृत्यु के बाद उसकी छोटी बहन चापादे से चापादे स्वय कवयित्री थी'

(द) 'क्रिसन रुकमणि री वेलि' के एक सम्पादक प्रो नरोत्तमदास स्वामी ने अपनी प्रस्तावना पृ २४ पर पृथ्वीराज के प्रथम विवाह को उदयपुर के महाराणा की पुत्री और महाराणा प्रताप की बहिन के साथ हुआ मानत हैं इस रानी का नाम किरनवती बताया जाता है

पर पृथ्वीराज का प्रथम विवाह महाराणा उदयसिंह की पुत्री के साथ हुआ था इतिहास सम्मत नही है वास्तव मे इनके बडे भाई महाराजा रायसिंह का विवाह महाराणा उदयसिंह की पुत्री से हुआ था इस सम्बन्ध म कविवर दुरसा आढा का निम्न गीत प्रसिद्ध है यह गीत श्री रावत सारस्वत न सादूळ राजस्थानी रिसच इस्टीट्यूट, बीकानेर से 'डिंगल गीत' नामक ग्रथ मे प्रकाशित करवाया है —

गढ बीकाण, चीतगढ सगपण,
कलो उदैसिघ इळ आकास।
जसमा नार रायसिघ जोडो,
पमग पाचसो हसत पचास ।।

(भावाथ — बीकानर के राव कल्याणमल और चित्तौड क राणा उदयसिंह के इस सबध और जसमादे तथा रायसिंघ के विवाह के अवसर पर पाँच सौ घोड और पचास हाथियो का यह दान पृथ्वी और आकाश की समाप्ति तक चिरस्थायी रहेगा)

— वीर विनोद' पृ १७८ — रायसिंघ की शादी महाराणा उदसिंह की बटी जसमादे से हुई थी

— आचाय प बदरीप्रसाद द्वारा सम्पादित 'मुहता नैणसी रीख्यात भी इसका पुष्ट प्रमाण है

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

कुछ प्रवाद तीसरी पत्नी के होने के तथ्य की भी पुष्टि करते हैं और उसका नाम किरणवती बतलाते हैं,[1] जो हिंदू सूय महाराणा प्रताप के अनुज शक्तिसिंह की पुत्री थी ये वे ही शक्तिसिंह हैं जो एक बार अपने भाई से क्रोधित हो अकबर से जा मिले थे, पर विश्वप्रसिद्ध हल्दीघाटी के तुमुल युद्ध मे महाराणा प्रताप के अप्रतिम शोय व कत्त व्यपरायणता से इतने प्रभावित हुये कि उनकी रक्षाथ अपने प्राणा को भी सकट म डाल दिया कुछ विद्वान लालादे और किरणवती दोनो को एक ही मानते हैं तथा अकबर के राज्य मे नौरोज के जश्न मे जो मीना बाजार लगाया जाता था, उसमे अकबर को बोधपाठ सिखान वाली चापादे थी[2]

---

१ The Annals & Antiquities of Rajasthan by James Tod और 'कल्याण' के नारी विशेपाक प ५८२ वीरागना साध्वी किरणदेवी'

२ (अ) मुशी देवीप्रसाद कृत राज रसनामत' चौथी धारा

(ब) क्रिसन रूकमणी री वेलि स डॉ तस्सितौरी भूमिका, पृ VI — 'एक बार अकबर ने पृथ्वीराज को गुजरात मे घोडे खरीदने के लिये भेजा जब वे घोडे खरीद कर दिल्ली वापस लौट रहे थे तो एक ऐसे गाँव से गुजरे, जिसमे दूध उपलब्ध नही था और वे बडे असमजस म पडे बात यह थी कि घोडो के व्यापारी ने उनको अेक शत पर घोडे बेचने का तय किया था शत थी कि दिल्ली तक सारे रास्ते भर घोडा को दूध पिलाया जायगा इतने मे एक चारण कुमारी वहाँ आई और उसने एक गाय का दोहन करके ही इतना दूध निकाला, जो सारे रास्ते घोडो की आवश्यकता स अधिक था पृथ्वीराज को बडा आश्चय हुआ और वे चारणकुमारी के चरणो पर गिरे उन्होने उससे कहा कि देवि ! ऐसा एक जादू तो मुझे भी बतलाइये उसन अपना नाम राजबाई बतलाया और कहा कि जब आप सकट म हो तो मुझे याद करें मैं आपकी सहायताथ उपस्थित हूँगी कुछ समय बाद पृथ्वीराज की पत्नी की अनुपम सुदरता के विषय मे सुनकर, पृथ्वीराज के बिना जान बादशाह ने उसे दिल्ली बुलवाया पर इसके पूव कि रानी दिल्ली मे प्रवेश करे पृथ्वीराज रास्ते म मिल गय रानी ने सारा वृत्तात कह सुनाया और शाही पत्र बतलाया बहुत समय तक पृथ्वीराज किंकत्त व्यविमूढ अवस्था मे खडे रहे बादशाह की विश्वासपात्रता का ठोकर मार दे या पत्नी का सम्मान खो दें इसी समय राजबाई का ध्यान आया जसे ही उन्होने राजबाई का स्मरण किया, राजबाई वहाँ उपस्थित हुई उसन पृथ्वीराज को धीरज दिलाया और स्वय सिंहनी बेश म अकबर के यहाँ गई अकबर बडा भयभीत हुआ और उससे यह प्रतिज्ञा करवाई कि भविष्य म वह किसी राजपूतनी का सतीत्व हरण करने का प्रयास न करेगा

नौराज के जश्न मे बीकानेर की इस रानी की वीरता ने अनेक कवियो, नाटककारो तथा इतिहासकारो को आकर्षित किया है जिन अनेक कविताओ और नाटको म इसकी इस अप्रतिम वीरता को अकित किया गया है उनम स एक कविता कविवर जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की है जो 'कल्याण' के वर्ष २२, अक ११ म प्रकाशित हुई थी—

बीकानेरी वीरांगना

रानी पृथ्वीराज की निहारति सिगार हाट,
पागति सु दीठी गथ विविध बिसाती पै।

कहै रतनाकर फिरी त्यो फँसी फद बीच,
लपक्यो नगीच नीच धरम अराती प।

परसत पानि अनवान गजपूती आनि
औचक अचूक घात कि ही घूमी घाती प।

झटकि झटाक कर पटकि धरा प धरी,
काती नोक गब्बर अकब्बर की छाती प ॥

रावळ हरराज की प्रथम पुत्री गगा का विवाह पृथ्वीराज के बडे भाई महाराजा रायसिह के साथ हुआ था [१] तब एक स्वाभाविक प्रश्न होता है कि लालादे कौन थी और कहाँ की थी? बहुचर्चित और अति प्रचलित होते हुय भी यह गवषणा का विषय है यहाँ एक ऐसा भी प्रश्न उत्पन्न होता है कि वस्तुत हरराज के कितनी

---

१ (अ) 'मुहता नणसी री ख्यात' भाग ३ पृ ३१ स आचाय प बदरी प्रसाद साकरिया— 'महाराजा श्री सूरसिघजी भाटी रावळ हरराज रा दोहिता राणी श्रीगगाजी रो बेटो सासर रो नाम सोभागदजी ये सूरसिघजी महाराजा रायसिहजी के पुत्र थे

(आ) टॉड कृत राजस्थान का इतिहास' अनुवादक श्री केशवकुमार ठाकुर पृ ५१७ बीकानेर का इतिहास— 'जसलमेर के राजा की लडकी का विवाह रायसिह के साथ हुआ था और उसकी दूसरी लडकी बादशाह अकबर को ब्याही थी' इस ववाहिक सबध क कारण रायसिह और पृथ्वीराज के प्रति बादशाह का आकपण स्वाभाविक था

(इ) 'दयाळदास री ख्यात' भाग २ पृ १२३— "पीछ स १६४६ फागण वद २ र साहै ऊपर श्री रायसिघजी रावळ हरराज री बेटी गगा नू परणीजण पधारिया जसळमेर अर सिराही रो राव सुरताण इण साहै परणीजण आयो हरराज री बेटी"

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

पुत्रिया थी ?

जसा कि प्रसिद्ध है लालादे के मरणोपरान्त उसकी जसी ही रूपवान सदगुणी, विदुषी और उसकी ही सगी छोटी बहिन चापादे का विवाह पृथ्वीराज राठौड के साथ किया गया साथ ही यह भी सभव है कि पृथ्वीराज अकबर के दरबार म शक्तिसिंह के अत्यधिक सम्पर्क मे आये हो और वही किरणवती का विवाह उनसे हो गया हो यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या पृथ्वीराज अकबर के दरबार मे दरबारी के रूप म विद्यमान थे ?[१]

पृथ्वीराज कृत दोहो[२] मे तो यह सभावना अधिक पुष्ट होती दिखाई पडती है चपाद क साथ विवाह होने के पश्चात् महाकवि को बारह वष तक बादशाह की चाकरी म रहना पडा[३] पत्नी विछोह के एक वल्प तथा मुगलकालीन ऐश्वय-पूण परम्परागत जीवन मे तीसरा विवाह कोई अनहोनी घटना नही है इसी किरणवती ने सभवतया अपने निमल चारित्र्य और शौय से अकबर जसे शक्तिशाली पर पतित बादशाह को नौराज के जशन मे जनाना (मीना) बाजार को समाप्त करने के लिये विवश किया हो

---

१ (प) यह भी एक विवादास्पद विषय है कि महाराज पृथ्वीराज राठौड अकबर के दरबार म विद्यमान थे इस सबध मे बीकानेर से प्रकाशित सेनानी के सन् १९५८ के जनवरी–फरवरी अको मे प्रसिद्ध राजस्थानी कवि श्री मुकुनसिंह और ख्यातिप्राप्त शोधकर्ता श्री अगरचद नाहटा के लेख द्रष्टव्य हैं।

(फ) 'वीर विनोद' मे अकबर बादशाह के मनसबदारो की जो विस्तृत सूची दी गई है उसमे पृथ्वीराज राठौड का नाम नही है

(ब) परवर्ती शोधानुसार पृथ्वीराज का अकबर के दरबार मे होना (दरबारी कवि के रूप म नही) प्रमाणित होता है।

(भ) प्रो नरोत्तमदास स्वामी सपादित 'क्रिसन रुक्मणी री वेल' भूमिका पृ २४ पर लिखा है सम्राट के दरबार मे पृथ्वीराज का बडा सम्मान था अकबरी दरबार के नौ रत्नो मे स एक पृथ्वीराज भी थे' ऐसा मानने का आधार क्या है उसका उल्लेख स्वामीजी ने नही किया है

२ श्री अगरचदजी नाहटा के सवत् १७१९ के गुटके के आधार पर

३ वही

लालादे[1] की मृत्यु के पश्चात पृथ्वीराज राठौड विक्षिप्त से हो गए हर पल लालादे की रट लगाते हुए उन्होने खानपान तक छोड दिया कहते हैं कि अपने अग्रज महाराजा रायसिंह की आज्ञानुसार जब पृथ्वीराज राठौड अकबर के दरबार मे जाने लगे तो उन्होंने अपनी प्रियतमा लालादे को यह वचन दिया था कि वह छ मास की अवधि के समाप्त होते ही तुरन्त बीकानेर लौट आयेंगे उधर लालादे ने भी प्रण किया था कि यदि निश्चित अवधि से एक दिन भी अधिक लग गया तो वह अपना प्राण त्याग देगी अवधि समाप्त हो गई और विरह मे शोकाकुल लालादे तडफ उठी—

पति परितिग्या साभळो, अवध उलघन थाय,
प्राण तजू तो विरह मे, कद न राखू काय।

(हे पतिदेव ! आप अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करें, अवधि समाप्त हो रही है मैं विरह मे अपने प्राणो का त्याग कर दूगी और अपनी काया को भस्म कर दूगी)

लालादे के प्राणपखेरू उड गए और जब चिता धक धक कर जल रही थी तो चिंतातुर प्रेम प्यासा कवि वहा आ पहुँचा और बरबस फूट पडा—

कथा ऊभा कामणी, साई ! थू मत मार,
रावण सीता ले गयो, वे दिन आज सभार ।।१।।

लाला लाला हू करू, लाला साद म देय,
मो अधा री लाकडी, मीरा खीच म लेय ।।२।।

और अत मे कवि ने लाला को जला देने वाली सवभक्षी अग्नि पर क्रुद्ध होकर कहा—

तो राघ्यो नी खावहूँ, रे वासदे निसडड !
मो देखत थें बालिया, लाला हदा हड्ड ।।३।।

(हे भगवान ! मेरी लाला की मृत्यु न होने दो म यहा खडा हूँ आप तो स्वय भुक्तभोगी है सीता का हरण होन पर आप कितने दुखित हुए होगे ? आप उसी दुख को याद कर मेरी लाला को उबार लीजिए ।।१।। मैं लाला लाला पुकार रहा हूँ पर लाला प्रत्युत्तर नही देती है हे भगवान ! वह ही मुझ अध का सहारा

---

१ 'कहावती गाथाए' नामक डॉ कन्हैयालाल सहल का लेख जिसमे से उपयुक्त उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं

२ 'राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान'—लेखक डॉ० कन्हैयालाल सहल पृ० ६३ पर ई घटना का अति सक्षप मे उल्लेख है

राजस्थान में किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

थी आप उसको मुझ से दूर न कीजिए ।।२।। हे अग्नि ! अब मैं तेरे द्वारा पकाया गया अन्न ग्रहण नहीं करूँगा, क्योकि तूने मेरे समक्ष ही, मेरी लाला को जलाकर भस्म कर दिया ।।३।।)

पृथ्वीराज की इस विक्षिप्तावस्था मे सारे परिजन दुखी हो उठे और उपचार के लिये विचार विनिमय होन लगा निश्चय किया गया कि स्वरूप, वर्ण, गुण आदि मे लालादे के समान, उसकी ही छोटी बहिन चपादे का विवाह पृथ्वीराज के साथ कर दिया जाय छत्तीस वष की अवस्था मे स० १६४२ मे जब हरराज की राजकुमारी का विवाह पृथ्वीराज के साथ सम्पन्न हुआ तो एक बार तो स्वय पृथ्वीराज धोखा खा गए पुन स्थिर हष्टि से देखने पर उनका विरह व्याकुल कवि बोल उठा—

आयी है चपा अठ, वा लाला अब नाहिं,

(यह तो चपादे यहा आई है लालादे तो अब इस लोक मे नही है)

चपादे के साथ विधिवत विवाह के पश्चात्, जब महाकवि ने उसकी पति परायणता दखी तो पृथ्वीराज के मन मे अनेक विचार तरगें उठी और अ त मे उसे सहप अगीकार करते हुए कहा—

चपा ! डगला चार, सामा ह्वै दीज मजल,
हीडळते गळ हार, हसतमुखा हरराय री ।

(हे हरराय की पुत्री चपा ! गले के हार को उभरे वक्षस्थल पर झुलाती हुई तथा ओठा पर स्मित लिए अपने प्रियतम की ओर स्नेहपूण चार कदम तो बढा अर्थात उसके समीप तो आ)

चतुर चपा न भी बडा मनोहारी उत्तर देकर अपनी काव्य रसिकता तथा वदुष्य स रसिक कवि पति को मोहित कर लिया—

मुकुल परिमल परीहरे, जब आये ऋतुराज,
अलि नही आलि हयन की कलि विकसे कहि काज ।

(बसत ऋतु के आन पर यदि भौरे पुष्पो की मधुर सुवास को त्याग कर चले जाय तो कलिका किसके लिए विकसित हो)

उत्तर पाकर कवि बाग बाग हो उठा और दौड कर उसे आलिगन वद्ध कर लिया पृथ्वीराज को यह अनुभव हुआ कि चपादे न केवल काव्य रचना म ही चतुर है वल्कि "लाला" मे भी दो डग आगे ही है तो कवि को आत्मतुष्टि हुई और यही प्रसग कवि के पुन प्रवृति मार्ग ग्रहण करन का कारण भी हुआ वे अब उसे अत्यन्त प्यार करन लगे —

चपा ! थू हरराज री, हस कर बदन दिखाए।
मो मन पात कुपात ज्यू, कबहू तृप्त न थाए ।।

(हे हरराज की पुत्री चपा ! तू सदैव मुस्कराती रह मेरा मन कुपात्र के समान है जो कभी तृप्त ही नही होता)

वैसे ही चपादे प्रतिभाशालिनी थी, पर कवि प्रियतम के सपर्क से उसकी प्रतिभा म चार चाद लग गये वह न केवल काव्य निर्माण की ओर ही अभिमुख हुई बल्कि उसकी काव्य दक्षता इस सीमा तक पहुँच गई कि पाद पूर्ति म भी सदा कदा अपने पति की सहायभूत बन जाती थी

कहते हैं कि एक बार 'वेलि' की रचना मे महाकवि राजा भीष्मक के नगर कुदिनपुर के वभव का वर्णन करते हुए आगे के पद के अभाव मे, चदन पाट चदन पाट दुहरा रहे थे तभी कवि प्रिया ने तुरन्त ही अपनी कुशाग्र बुद्धि से पाद पूर्ति कर

चदन पाट कपाट ही चदन।

दोनो का दाम्पत्य जीवन बडा सुखमय रहा हास विलास, क्रीडाओ तथा काव्य निर्माण मे समय व्यतीत हो रहा था कि एक दिन दपण के सम्मुख बठ हुये कवि को अपनी दाढी मे सन जैसा सफेद बाल दिखलाई पडा। उन्होने उस उखाड फेंका इतने मे चपाद दपण मे प्रतिबिम्बित हुई वास्तव मे कभी की ओट मे खडी चपादे अपन प्रियतम के क्रिया कलाप दख रही थी कवि कहा चूकने वाले थे अपनी मनोदशा को छिपाते हुए उन्होने मुस्करा कर एक व्यग्य बाण छोडा —

पीथळ धोळा आविया, बहुळी लागी खोड ।
पूरे जोवण पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड ।।

(अब तो मेरे श्वेत केस क्या आगए, एक दुगण आ गया है मैं वृद्ध होने लगा हू इसी कारण यौवन मे मदमस्त प्रियतमा मुझ से मुख मोडे खडी है)

चतुर चपादे ने महाराज के मनोभावो को समझ कर तथा उनकी ग्लानि को दूर करने की दृष्टि से कवि प्रिया ने समुचित मनोवैज्ञानिक उत्तर दिया—

प्यारी कहै, पीथळ सुणो, धोळा दिस मत जोय।
नरा, नाहरा, डिगमरा, पाक्या ही रस होय ।।१।।
खेडज पक्का धोरिया, पथज गध्धा पाव ।
नरा, तुरगा, वनफळा, पक्का पक्का साव ।।२।।

(चपादे कहती हैं कि हे प्रियतम पृथ्वीराज आप सुनिए अपने श्वेत केसा की ओर मत देखो वे सदव बुरे नही होते पुरुष, सिंह, दिगम्बर (मुनि) परिपक्व होने

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

पर ही रसपूर्ण होते हैं अनुभव, वय और ज्ञान की प्राप्ति होने पर ही पुरुष, सिंह और दिगम्बर पूर्ण माने जाते हैं ।।१।। बैलो के जीवन का साफल्य हल चलाने मे है, ऊँट का साफल्य मार्ग तय करने मे है तथा नर, घोडा और फलादि पकने पर ही रसपूर्ण व स्वादिष्ट होते है ।।२।।)

चपादे सम्बन्धी अन्य सामग्री पर श्री अगरचँद नाहटा ने प्रकाश डाला है[1] एक बार पृथ्वीराज को चिंतित मन देख कर बादशाह ने उनकी उदासीनता का कारण पूछा तब पृथ्वीराज ने बड़ा मर्मस्पर्शी उत्तर दिया—

प्रश्न —मन उतराधो तन दखण कहो न कवण विचार ?
उत्तर —मन गुणवती मोहियो, तन रूंधो दरबार ।।१।।

के सेवइ पग नाथ ना के सेवइ तट गंध ।
पृथु सेवइ चपाकली, सदल, सरूप सुगंध ।।२।।

(हे पृथ्वीराज! तुम्हारा मन उत्तर तथा तन दक्षिण की ओर है अर्थात् तुम्हारा मन अस्थिर है कहो तुम किन विचारो में लीन हो ? पृथ्वीराज ने उत्तर दिया कि मेरा मन एक गुणवती नारी ने मोह लिया है जबकि मेरा शरीर आपके दरबार में रुद्ध है कोई नाथ के चरणो की सेवा करते हैं तो कोई गंध के उपासक है पर पृथ्वीराज तो चपाकली के ध्यान में लव लीन है जो बहुत मस्त सुगठित सुदर व सुगंधि से पूर्ण है यहा चपाकली मे श्लेष है चपादे और चम्पा पुष्प)

बादशाह उनके उत्तर पर रीझ गये और बीकानेर जाने की आज्ञा प्रदान की

बारह वर्ष के पश्चात् महल मे पधारने पर विरहातुर क्षीणकाय चपादे ने अपनी व्यथा बडी मार्मिकता से प्रकट की—

बहु दीहा हू वल्लहा, आया मदिर आज ।
कँवल देख कुमळाइया, कहो स केहइ काज ।।१।।
चुग चुगाये चच भरि गये निलज्जे काग ।
काया सर दरियाव दिल, आइज बठे बग ।।२।।

(हे प्रियतम आप बहुत दिनो के पश्चात् महलो मे पधारे हैं कौनसा कारण है कि आप मेरा मुख कमल देख कर उदास हो गए मांस तो निलज्ज कौए अपनी चोचो मे भर कर उड गए हैं यह काया तो नदी है और दिल समुद्र है, जिसके किनारो पर बगुले आ बठे हैं अर्थात् अब इस शरीर मे हड्डियाँ ही शेष रह गई हैं)

---

१ आचार्य प० बद्रीप्रसाद साकरिया द्वारा संपादित 'राजस्थान भारती' भाग ७ अक तीन में श्री नाहटा का लेख 'राठौड पृथ्वीराज की पत्नी चपावती'

महाराज पृथ्वीराज ने अपने उत्तर के एक ही छंद मे गागर मे सागर भर दिया—

जिहाँ परमल तिहाँ तुच्छ दळ,
जिहाँ दळ, तिहाँ नही गध।
चपा केरे तीन गुण,
सदळ सरूप सुगध ॥

(जहाँ पुष्प होते हैं वहाँ दल होता है, और जहाँ दल होता है वहाँ गध नही होती, पर चपा तुम्हम तो तीन गुण अति प्रसिद्ध हैं। वे हैं सदलता, स्वरूप और सुगधि)

और—

चपा चमकती दात कहु क दामिनी।
अहरा नइ आभा, होड पडो हरराज उत ॥

(हे हरराज की पुत्री तेरे दातो की चमक का क्या कहना वह दाँतो की चमक है कि बिजली की चमक—कुछ कहा नही जा सकता पर एक बात तो निश्चित है कि ऐसी आभा किसी अन्य की नही है)

कवि दम्पत्ति के काव्यमय जीवन के अनेक रोचक प्रसगो मे से एक बहु-चर्चित प्रसग चपादे की गहरी चिंता का है, जब उसे मालूम हुआ कि महा प्रतापी अकबर की अतुलित शक्ति की तनिक भी परवाह किये बिना उसके पति महाराणा प्रताप का पक्ष ले रहे हैं तो उसने तुरत एक दोहा उनको लिख भेजा—

पति जिद की पतशाह सू, यहै सुणी म्हैं आज।
कहँ पातळ अकबर कहाँ करियो बडो अकाज ॥

निरअविलब पृथ्वीराज ने चपादे को ब्रजभाषा मे जो निम्न उत्तर प्रेषित किया उससे दो बातें स्पष्ट उभर आती है प्रथम तो डिंगल के साथ साथ कवि का ब्रजभाषा पर भी विलक्षण वर्चस्व था द्वितीय, महाराणा म उनकी निष्ठा और उनकी शक्ति मे अगाध श्रद्धा का भाव—

जब तें सुने हैं बन, तब तें न मोकौ चैन
पाती पढ नेक सा न विलब लगावगो।
लकै जमदूत से समत्थ राजपूत आज,
आगरे म आठो याम उधम मचावगो ॥
कहैं पृथ्वीराज, प्रिया, नेकु उर धीर धरो,
चिरजीवी राना सो मलच्छन भगावगो ॥

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

मन को मरद् मानी प्रवल प्रतापसिंह
बब्बर ज्यो तडप अकब्बर पै आवगो ।।

स्वाभिमान—

उनके व्यक्तित्व की यह सबसे बडी विलक्षणता है कि बादशाह अकबर की सेवा म रहते हुए भी कवि ने अपना स्वाभिमान व स्वदेशाभिमान नही खोया था बादशाह की सेवा मे उनका तन था, धन था, पर मन व आत्मा नही थी इसीलिये जब महाराणा प्रताप का पत्र अकबर ने उनको लज्जित करने के लिये पढ सुनाया तो कवि का सुषुप्त जातीय गौरव एव राष्ट्राभिमान जाग उठा उन्होने बादशाह को बडा स्पष्ट पर विनम्र उत्तर दिया कि यह पत्र जाली लगता है यदि आपकी आज्ञा हो तो वे उसके सत्यासत्य की जाच करवाएँ बादशाह की सहष पर अभिमानपूर्ण सहमति पर उन्होने वह अमर ऐतिहासिक पत्र लिखा, जिसने इस देश के जातीय व राष्ट्रीय इतिहास को बदल कर समूचे मृतप्राय राष्ट्र की चेतना को एक नई दिशा दी महाराज पृथ्वीराज के इस पत्र के अभाव मे इस देश का अध पतन कितनी सीमा तक होता, इसकी परिकल्पना भी असम्भव है

आत्मग्लानि व भयकर अपमान से पीडित मन ही मन अत्यन्त क्षुब्ध पृथ्वीराज ने छदोबद्ध सक्षिप्त पर अत्यन्त उत्तेजिक व प्रभावोत्पादक काव्य पत्र लिखा—

पातळ, जो पतसाह, बोले मुख हुता बयण ।
मिहर पिछम दिस माह, ऊगै कासपरावउत ।।
पटकू मूछा पाण कै पटकू निज तन करद ।
दाज लिख दीवाण, इण दो महली बात इक ।।

(हे महाराणा प्रताप ! यदि आपने अकबर को अपने मुख से बादशाह कहा है तो समझो कि सूर्य पश्चिम दिशा मे उगने लगा है

हे दीवान ! क्या मैं अपनी मूछो पर ताव दू या अपनी तलवार से ही आत्मघात कर लू ? इन दोनो म से एक बात आप मुझे लिख भेजियेगा)

यह पत्र महाराज पृथ्वीराज का स्वामिभक्त सेवक चारण सूरचन्द टापरिया महाराणा प्रताप के पास ले गया था इस पत्र से एक बात स्पष्ट होती है कि

१ पातल=महाराणा प्रताप का काव्य नाम दीवाण=दीवान यहाँ एकलिगजी के दीवान से तात्पर्य है मेवाड के महाराणाओ को इसी नाम से सबोधित किया जाता है व अपने आपको मेवाड का महाराणा न मान कर दीवान मानते हैं महाराणा तो भगवान एकलिंग स्वय है एकलिंग उदयपुर के महाराणाओ के इष्टदेवता है एकलिंग का भव्य व प्राचीन मन्दिर उदयपुर नाथद्वारा सडक पर अवस्थित है

महाराणा प्रताप ने अकबर को अवश्य बादशाह कह कर अपने संधि पत्र म सम्बोधित किया होगा, तब ही पृथ्वीराज ने इसे अपने पत्र मे दोहराया है

वैसे वह अकबर जो प्रताप से आठो याम अत्यन्त भयभीत रहा करता था तथा येन केन प्रकारेण वह उन्हे अपनी अधीनता स्वीकार करवाना चाहता था, मन ही मन महाराणा का निकदन चाहता था पृथ्वीराज से अकबर की यह मन स्थिति छिपी न रह सकी और उन्हाने उसे लक्ष्य कर एक एसा दोहा लिखा जो इतिहास और साहित्य म विशिष्ट स्थान रखता है—

माई अहडा पूत जण जहडा राण प्रताप,
अकबर सूतो ओझके, जाण सिराणे साप ।

(हे मा! पुत्र उत्पन्न करो तो एसा करो कि जसे राणा प्रताप, जिनसे आतकित होकर अकबर रात को सोते हुए भी ऐसा चमकता है जसे सिरहाने साँप आने से लोग चमकते हा)

महाराणा प्रताप की अन्यतम विशेषताओ को लेकर कवि ने अनेक प्रशस्ति दोह लिखे हैं कई विद्वानो ने इन निम्नलिखित दाहो को भी पत्र का अग मान कर उसे उस दृष्टि से प्रकाशित करवाया है, पर वस्तुत वे पत्र के अग नही होकर उनके यशोगान म कहे गये दोहे है—

घर वाकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण ।
घणा नरिंदा घेरियो रहै गिरदा राण ॥१॥

पातळ राण प्रवाडमल वाकी घडा विभाड ।
सूदाड कुण है सुरा, तो ऊभा मेवाड ॥२॥

माई एहा पूत जण जेहा राण प्रताप ।
अकबर सूतो ओझक, जाण सिराणे साप ॥३॥

अहरे अकबरियाह, तेज तुहाळो तुरकडा ।
नम नम नीसरियाह राण विना सह राजवी ॥४॥

सह गावडिया साथ, एकण वाड वाडिया ।
राण न मानी नाथ, ताडै साड प्रतापसी ॥५॥

पातळ पाघ प्रमाण साची सागाहर तणी ।
रही सदा लग राण, अकबर सू ऊभी अणी ॥६॥

सहु गोवळिया पास, आळूधा अकबर तणी ।
राणो खिम न रास, प्रबळो साड प्रतापसी ॥७॥

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

चौथो चीतोडाह, बाटो बाजतो तणो।
माथ मेवाडाह, थार राण प्रतापसी ॥८॥

वाही राण प्रतापसी, बगतर मे बरछीह।
जाणक भीगर जाळ म, मुह काढ्यो मच्छीह ॥९॥

वाही राण प्रतापसी, बरछी लच पच्चाह।
जाणक नागण नीसरी, मुह्र भरियो बच्चाह ॥१०॥

पातळ घड पतमाह री, एम विधूसी श्राण।
जाण चढी कर बदरा, पोथी वेद पुराण ॥११॥

उपर्युक्त दोहो के अतिरिक्त कही कही निम्न पाच दोहो को भी पत्र का अग मान कर प्रस्तुत किया गया है, पर ये दोहे भी प्रताप के प्रशस्ति के हैं, पत्र का अग नही

(१) अकबर समद अथाह सूरापण भरियो सजळ।
मेवाडो तिण माह पोयण फूल प्रतापसी ॥

(२) अक्बर घोर अधार ऊघाणा हिंदू अवर।
जाग जग दातार पोहर राण प्रतापसी ॥

(३) अकबर एकण वार दागल की सारी दुनी।
अणदागल असवार, रहियो राण प्रतापसी ॥

(४) हिंदू पति परताप, पत राखी हिन्दवाण री।
सह विपति सताप सत्य सपथ करि आपणी ॥

(५) चपा चीतोडाह पोरस तणो प्रतापसी।
सोरभ अकबरसाह अळियळ आभडियो नही ॥

हमारे निजी ग्रन्थालय के एक हस्तलिखित ग्रन्थ मे, जिसमे अनेक कवियो के दोहो का सुदर सग्रह है उसमे निम्न दो दोहे सूराइच टापरिया के कहे हुये है, जिन्हे ऊपर महाराजा पृथ्वीराज रचित माना गया है—

(१) चापो चीतोडाह, पोरस तणो प्रतापसी,
सोरभ अकबरसाह अळियळ आभडिया नही

(२) पातळ पाघ प्रमाण साची सागाहर तणो।
रही सदा लग राण अकबर सू ऊभी अणी ॥

यह सूराइच टापरिया वही व्यक्ति है जिसे पृथ्वीराज ने पत्र वाहक के रूप म महाराणा प्रताप के पास भेजा था इन्हे अन्यत्र सूरचद टापरिया भी कहा गया है

उपर्युक्त प्रथम ग्यारह दोहो का भावार्थ इस प्रकार है—

[भावार्थ—जिसकी भूमि विकट है, समय अनुकूल है और जो स्वाभिमान का कभी नही छोडता, वह महाराणा पहाडो म निवास करता हुआ भी राजाओ से घिरा रहता है ॥१॥

हे युद्ध प्रवीण ! शूरवीर महाराणा प्रताप ! तुम विकट सेनाओ का सहार करने वाले हो तुम्हारे रहते मेवाड को कौन जीत सकता है ॥२॥

माता को ऐसा पुत्र उत्पन्न करना चाहिये, जसे माहाराणा प्रताप, जिसके स्मरण मात्र से अकबर ऐसे चौंका करता है, मानो उसके सिरहाने साप आ गया हो ॥३॥

हे मुसलमानाधिपति अक्बर ! तेरा तेज भी गजब का है, जिसके सामने राणा प्रताप के अतिरिक्त सभी अय राजागण नत मस्तक होगए ॥४॥

हे अकबर ! तू ने सब राजा रूपी बैलो को एक ही बाडे म डाल दिया पर प्रताप रूपी साड अब भी गरज रहा है उसको तुम नहीं नाथ सके ॥५॥

महाराणा सागा के पौत्र महाराणा प्रताप की ही पाघ सची है जो अक्बर के समक्ष सर्दैव खडी रही कभी झुकी नही ॥६॥

सभी राजा रूपी बछडे अकबर के बधन मे बध गये—उसके आधीन हो गए, पर प्रताप रूपी साड गरज रहा है वह अपने आपको कसे नथवा सकता है ॥७॥

हे चितौड और मेवाड के स्वामी महाराणा प्रताप ! घडी का चौथा हिस्सा, पाव घडी (अर्थात् पाघडी) तेरे ही सिर पर अनम्र रही है ॥८॥

राणा प्रताप की बरछी शत्रु के कवच को चीर कर ऐसे बाहर निकली जैसे मछली ने जाल स अपना मुह बाहर निकाला हो ॥९॥

राणा प्रताप की चलाई हुई बरछी इस प्रकार शत्रु की आतो का लेकर बाहर निकली, जसे कोई सर्पिणी अपन बच्चो को मुह मे लेकर बिल से बाहर निकली हो ॥१०॥

प्रताप ने अक्बर की सेना को ऐसे तहस नहस कर डाला जैस किसी बदर के हाथ मे वेद व पुराणो के ग्र थ पडने पर वह बडी आसानी से उनको फाड कर फेक देता है ॥११॥]

पत्र को प्राप्त करते ही स्वतत्रता दीपक के रक्षक, वनचारी, उस अमर सेनानी का सुप्त स्वाभिमान जाग उठा शरीर के अग फडकने लगे और रोगटे खड

राजस्थान में किसी डिंगल कवि पर प्रथम वार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

हो गये अपने पूवजो का गौरव और स्वतनता की ज्योति को सदैव प्रज्वलित रखने वाले असख्य वीरो के बलिदान का स्मरण कर, उनकी क्षणिक कमजोरी तिरोहित हो उठी। ग्लानि नष्ट होगई बचो की भूख प्यास भूल गए और वक्षस्थल सगव उन्नत कर उन्होंने जो उत्तर दिया, वह आने वाले युगो तक, जब कभी हमारा राष्ट्र इसी प्रकार तद्रा मे आत्म प्रतिष्ठा खो बैठेगा, हमे प्रेरित कर विश्व मे पुन प्रतिष्ठित करेगा।

महाराणा का उत्तर—

> तुरक कहासी मुख पतो, इण तन सू इकलिंग।
> ऊग जाँही ऊगसी, प्राची बीच पतग ॥१॥
> खुसी हूत पीथळ[1] कमध, पटको मूछा पाण।
> पछटण है जेत पतो, कलमा सिर केवाण ॥२॥
> साग, मुड सहसी सको सम जस जहर सवाद।
> भड पीथळ जीतो भला, वैण तुरक सू वाद ॥३॥

[भावार्थ—भगवान शिव की शपथ मेरे मुख से अकबर सदव तुक ही कहलाएगा सूर्य, जिस पूर्व दिशा मे उगता है उसी ओर उगेगा, पश्चिम मे कदापि नही ॥१॥

हे पृथ्वीराज राठौड! जब तक प्रताप मुसलमानो के सिर पर अपनी तलवार से प्रहार करने को जीवित है आप अपनी मूछो पर निर्शंक ताव देते रहियेगा ॥२॥

अन्य राजागणों (जिन्होंने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली है) की कीर्ति मुझे विष वत लगती है अधीनता स्वीकार करने के बनिसबत प्रताप तो अपने सिर पर तलवारो के वार ही सहन करना पसद करेगा वीरवर पृथ्वीराज! आप चाहें तो तुर्क से (अकबर से) वाद मे विजय प्राप्त कर सकते हैं ॥३॥]

उपयुक्त पत्रोत्तर से एक विशेष तथ्य और भी उभर आता है (जिस ओर साहित्यकारो का ध्यान नही गया है) कि प्रात स्मरणीय महाराणा प्रताप एक कुशल कवि भी थे इस सबध म और शोध-काय करने की अत्यन्त आवश्यकता है

यह तो निश्चित है कि पृथ्वीराज अकबर के दरबार के दरबारी कवि नहीं थे और वीर विनोद' के आधार पर यह भी सत्य है कि पृथ्वीराज अकबर के दरबार के मनसबदारो की सूची म नहीं थे तब प्रश्न होता है कि पृथ्वीराज अकबर के यहाँ किस हैसियत स रहत थ? कनल टॉड न अपन इतिहास म एक ऐसी विचित्र घटना का उल्लेख किया है[2] जिसका उल्लेख राजस्थान के किसी इतिहासकार ने तथा किसी नायधर्मी साहित्यकार ने अद्यावधि नहीं किया है —

---

१ पीथल—पृथ्वीराज राठौड़ का काव्य नाम

२— टॉड कृत राजस्थान का इतिहास में 'मेवाड का इतिहास पृ ९०२ अनुवादक श्री केशव कुमार.

'प्रताप के उस पत्र को बादशाह ने पृथ्वीराज नामक श्रेष्ठ राजपूत सरदार को दिखाया पृथ्वीराज बीकानेर के राजा का छोटा भाई था और वह इन दिनो मे अकबर बादशाह के यहाँ कदी था उसके कदी होने का कारण यह था कि उसम राजपूती स्वाभिमान था दूसरे राजाओ की तरह वह अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिये तैयार न था इसलिये वह कैद किया गया था और बन्दी अवस्था मे वह बादशाह के यहा जीवन व्यतीत कर रहा था'

उपर्युक्त अति रोमाचक घटना कितनी इतिहास सम्मत है वह तो इतिहास विशेषज्ञो पर छोड देते हैं पर इससे एक बात की सपुष्टि हो जाती है कि पृथ्वीराज बचपन से ही अत्यन्त स्वाभिमानी थे और साथ ही यह भी सभव है कि जब उनके अग्रज महाराजा रायसिहजी ने प्रथम बार भेंट आदि लेकर उन्हे बादशाह के दरबार मे भेजा था, तब अपने इसी अक्खड व निर्भिक स्वभाव के कारण, बादशाह ने इनके व्यवहार की स्वभावगत विशेषता न समझ कर इसे उद्दण्ड व्यवहार मान लिया हो और उन्हे नजर कद कर दिया हो निरतर वही रह कर और अपने चारित्रिक तथा अन्य असामान्य गुणो के कारण वे बादशाह के प्रिय पात्र बने होगे इसी विश्वासपात्रता के कारण भविष्य मे उनको सेना का मुख्य पद देने मे भी बादशाह को हिचकचाहट न हुई और क्रमश बादशाह पर अपने व्यक्तित्व की वह अमिट छाप छोडी कि पृथ्वीराज की मृत्यु पर, बादशाह कह उठे—

'पीथळ सौं मजलिस गई'

कदाचित इसी घटना के कारण यह वाद भी उत्पन्न हुआ कि पृथ्वीराज अकबरी दरबार मे थे?

वीर

पृथ्वीराज जगप्रसिद्ध वीर और बादशाह अकबर के बडे सम्मान्य व विश्वासपात्र सेनापति थ यही कारण है कि बादशाह ने इनको अनेक बार सेनापति अथवा सहायक सेनापति बना कर युद्ध विजय के लिये भेजा था एक सच्चा वीर सदैव आत्मविश्वासी और कृतनिश्चयी होता है और कहना न होगा कि उनम ये दोनो गुण कूट-कूट कर भरे हुए थे

'दयाळदास की ख्यात' म ऐसे कई प्रसग हैं जो इनके आत्म विश्वास व वीरता के परिचायक हैं कहते हैं कि एक बार बादशाह के कुछ अप्रिय बोल के कारण पृथ्वीराज के छोटे भाई अमरसिह डाकू बन गए बादशाह ने कहा कि अमरसिह पकडा जायेगा, पर पृथ्वीराज ने कहा कि अमरसिह कभी पकडा नहीं जायेगा और हुआ भी वही 'दयाळदास की ख्यात' मे इसका वणन इस प्रकार है—

'जिणा दिना अमरसिघजी पातसाहजी सू केई बोल माथ बारोटिया हुवा सु हजार दोय राजपूता सू खालसो लूटै तिणरी मालम हजरत मे हुई तद आरवखां

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

नै हुकम दिया, जो अमरू को पकड कर यहा ले आवो तठै पृथ्वीराजजी मालम करी जो हजरत आपसू बेमुख है सु सजावार करण जोग्य है अमरू हमारा भाई है पण गिरफदार होणै का नही दूसरा उसके ऊपर जायगा सो मारया जायगा तद पातसाहजी कया— 'पकडया आवैगा' पृथ्वीराजजी कयो – 'पकडया नही आवैगा'

हजरत सू मालम हुई जो अमरसिंघ मारया गया है तद पातसाहजी पृथ्वीराज न बुलाय र कयो 'पृथ्वीराज अमरू को पाणी देवो" तद क्यो, 'हजरत नही देऊ, वात भूठी है" पीछे दूजी डाक लागी महाराज ! आरवखा मारिया गया अमरसिंघजी का ऊपरता धड उड हौदे मे सामल हुवा जहाँ तेर कटारी का वार हुआ तद पातसाहजी क्या— या अल्ला आफरीवाद है अमरू के ताई हू पीथा ! अमरू बडा हिंदू था वो उडणा शेर था अरू पीथा तुम कू भाई का भरोसा बहोत हो रया था सु तू बी धन्य है तुमारा वचन बहोत नेक हुवा'

महाराज पृथ्वीराज राठौड के अनुज अमरसिंघ निश्चय ही एक स्वाभिमानी व वीर योद्धा थे जिनकी यशगाथा से राजस्थानी जन-मानस मुखर उठा अपने काय मे वे इतन लोकप्रिय हुए कि उन पर अनेक कवियो ने काव्य रचे बाई पदमा सादू री कह्यो, 'गीत बीकानेर राठौड अमरसिंघ रो' एक ऐसी ही रचना है—

सहर लूटतो सदा थू देस करतो सरद,
कहर नर पडी थारी कमाई ।
उजागर भाळ खग जतहर आभरण,
अमर अकबर तणी फौज आई ।।
बीकहर सीह घर मार करतो वसू
अभग अर व्रद तो सीस आयो ।
लाग गयणाग भुज तोल खग ळकाळा
जाग हो जाग कलियाण जाया ।।
गोळ भर सबळ नर प्रगट अरगाहणा
अरवसाँ आवियो लाग आसमाण ।
निवारो नीद कमधज अब निडर नर
प्रबळ हुय जतहर दाखवो पाण ।।[1]

---

१ (अ) श्री रावत सारस्वत द्वारा सम्पादित तथा सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीटयूट बीकानेर द्वारा प्रकाशित डिंगल गीत प २७ टिप्पणी प ६ वे कहते हैं कि पदमा ने अमरसिंघ को उपयुक्त गीत गाकर जगाया और अमरसिंह के युद्ध मे वीरगति प्राप्त होने पर पदमा भी अन्य रानियो के साथ सती हो गई

(ब) कर्नल टॉड ने अमरसिंह को 'उडणा शेर (Flying Tiger) कहकर उसकी प्रशंसा की है"

[भावार्थ— तू सदा शत्रुओं के शहरों को लूटता और उनके प्रदेशों पर विजय प्राप्त करता है हे जेतसी के वीर पौत्र तुम्हारी वह कमाई आज कठिन हो गई है अमरसिंघ ! तलवार उठा अकबर की फौज आ गई है।

हे सिंह सदृश पराक्रमी! हे बीका के वशज! तू शत्रुओं पर आक्रमण कर उनके देश पर अधिकार करता था वे शत्रु सिर पर आ गये है हे कल्याणमल क पुत्र जाग और तलवार ग्रहण कर आकाश से जा लग

ह जतसी के पौत्र ! अपना पराक्रम दिखा क्योंकि शत्रु आरबखाँ तोपों म गोले भर आसमान स लगा आ रहा है ह राठौड वीर ! अब तो नीद छोड]

'दयाळदास री रयात' मे दूसरा प्रसग महाराज पृथ्वीराज के अग्रज महाराज रामसिंह से सबधित दिया गया है यह प्रसग अपन भाई का बदला लेने की घटना से है —

'आ वात सवत् १६५६ री है जद पृथ्वीराजजी विराजता हा सो रामसिंघजी क्तिेक साथ सू किल्याणपुर म उतर्या हा तठ राणी गगाजी रै क्य सू ठाकुर मालदेजी साथ कर रामसिंघजी नु चूक करण चढिया अर दरबार री पण छाप रुके मे छी पीछ गाव किल्याणपुर मे रामसिंघजी झगडो कर काम आया पीछ पृथ्वीराजजी दिल्ली सू आय रामसिंघजी रा वर लियो ठाकर मालदेजी ने वणी रीत नु मारिया रामसिंघजी काम आया तिण भाव रो गीत पृथ्वीराज कह्यो

(अनुवाद — यह घटना सवत् १६५६ की है जब पृथ्वीराजजी जीवित थे एक बार रामसिंघजी अपने कुछ सैन्य के साथ कल्याणपुर म रुके थे तब रानी गगाजी के कहने से उन्होन ठाकुर मालदेजी को मारने के लिये आक्रमण किया दरबार की मोहर भी रुके (पत्र) मे थी बाद मे कल्याणपुर म रामसिंघजी युद्धभूमि मे सेत रह (जब पृथ्वीराजजी को इसका समाचार मिला) तो पृथ्वीराजजी दिल्ली से आये और रामसिंघजी का बदला लिया ठाकुर मालदेजी को उसी प्रकार स मारा रामसिंघजी युद्ध में काम आये तत्सबधी गीत पृथ्वीराज ने बनाया)

हिन्दुस्तानी अकेडेमी प्रयाग द्वारा प्रकाशित व ठाकुर रामसिंघ व प सूय करण पारीक द्वारा सपादित वेलि क्रिसन रुकमणी री की भूमिका मे महाराज पृथ्वीराज की वीरता सबधी दो प्रसग दिये गये हैं—

(१) जब बादशाह ने अपने ही भाई मिरजा हकीम से लडने के लिय काबुल पर धावा किया उस समय पृथ्वीराज सेना के अग्र भाग मे विद्यमान थे इस युद्ध मे विशेष शूरवीरता का परिचय दन के लिय पुरस्कार स्वरूप इनको पूर्वी राजस्थान में

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

गोगराना (गागरौन) प्रात की जागीरी प्रदान की गई थी[१]

(२) 'मुहता नणसी री ख्यात मे गोगरान प्रात के साथ साथ खींचियां से युद्ध वणन का भी उल्लेख है—'तठा पछ वळे अेक वार राव प्रिथिराज कल्याणमलोत बीकानेरियानू गढ गागुरण दी थी सद पिण वेढ अेक हुई तिकी राव प्रथीराज जीतो खीची हार्‌या'

इसके पूव सन् १५७४ (सवत १६३०) के आसपास जब अकबर ने रायसिंह को गुजरात विजय के लिये भेजा था तब पृथ्वीराज भी बीकानेर की फौज के साथ थे

अपनी मृत्यु के चार वप पूव सवत १६५३ मे अकबर बादशाह न अहमदनगर के युद्ध मे पृथ्वीराज को प्रधान सेनापति बनाकर भेजा था वहाँ पर भी उन्होने विजय प्राप्त की स्वतत्र रूप से सेनाध्यक्ष बना कर भेजना, बादशाह के अनुग्रह का सूचक तो है ही, पर साथ ही साथ उनकी कार्यक्षमता सन्य सचालन, वीरता और विश्वासपात्रता का सूचक है

इसी प्रकार अपनी मृत्यु के समय, जिसकी घोषणा उन्होने बहुत पूव ही कर रखी थी, बादशाह अकबर का उनको काबुल जैसे अत्यन्त दूर व दुर्गम स्थल पर भी भेजना, और वहा पर कम समय मे विजय प्राप्त करना उनकी रण कुशलता तथा अद्भुत पराक्रम और साहस का परिचायक है

कनल टॉड ने पृथ्वीराज की वीरता के विषय मे लिखा है, 'Prithi Raj was one of the most gallant chieftains of the age and like the

---

१ (अ) यह प्रसिद्ध स्थान कोटा शहर से ४५ मील दक्षिणपूव म और झालावाड नगर से तीन मील उत्तरपूव मे है इसक तीन ओर कालीसिंध नदी ह और राजस्थान के प्रमुख किलो में इसका स्थान है यहाँ के तात अत्यन्त प्रसिद्ध हैं इसम एक शिलालेख बीकानेर के राठोड कल्याणमल के पुत्र सुल्तानसिंह का है जो उस समय गागरोण का हाकिम था'—राजपूताने का इतिहास, भाग द्वितीय प ३० म कोटा राज्य का इतिहास, सम्पादकद्वय श्री सुखवीरसिंह गहलोत तथा डा घासाराम परिहार प्रकाशक हिन्दी साहित्य मन्दिर घडसिया दरवाजे क भीतर जोधपुर

(ब) 'महता नणसी री ख्यात भाग एक, प २५६ सम्पादक आचाय प बदरीप्रसाद साकरिया

(स) अकबरनामा क लेखक अबुलफजल ने भी इस युद्ध का वर्णन किया है तथा खुश होकर अकबर के गागुरान की जागीरी दने का उल्लेख किया है

(द) गागुरान को बीरवर अचलदास खींची ने अपने रक्त से सींचा था

Troubadour princes of the West, could grace a cause with the soul inspiring effusions of the muse, as well as aid it with his sword, nay in an assembly of the bards of Rajasthan, the palm of merit was unanimously awarded to the Rathore Cavalier "[1]

[पश्चिम के ट्रुबेदार राजाओ की भांति, पृथ्वीराज अपने समय के नरेशो मे से श्रेष्ठतम वीर थे जो अपनी ओजस्वी काव्यशक्ति द्वारा लोगो मे प्राण फूंक सकते थे तो समय पडने पर रणभूमि म अपने शौय का परिचय भी द सकते थे अधिक कहना व्यथ है पर तत्कालीन चारण कवियो के समुदाय मे वे राठौड वीर सर्वोच्च अभिशसा के भागी रहे हैं]

इन्ही कनल टॉड ने उनकी शक्तिशालिनी कविता की आलोचना करते हुये अन्यत्र कहा था कि उसमे दस हजार घोडो की शक्ति है

डॉ एल पी तस्सितोरी ने उनकी निर्भीकता और स्पष्टता को इस प्रकार व्यक्त किया है — "He was an admiror of courage and unblending dignity and a sworn enemy of degradation and cringing servility With the same freshness with which he would compose a song in praise of an act of gallantry or of determination performed by a friend or by a foe he would condemn in verses his own brother, the Raja of Bikaner or even the all powerful Akbar for any act of injustice committed by them "[2]

[पृथ्वीराज पराक्रम और अदम्य स्वाभिमान के अभिशसक थे तथा दैन्य, गुलामी और नैतिक पतन के कट्टर शत्रु थे जिस स्वाभावोचित उदारता के साथ वे किसी मित्र अथवा शत्रु की अपने काव्य मे उसकी प्रशसा कर सकते थे उसी स्पष्टता के साथ वे अपने भाई बीकानेर नरेश की ही नही, स्वय बादशाह अकबर तक की भी उनके किसी हीन काय के लिये कटु आलोचना कर सकते थे]

भक्त

सुकवि और सुभट होने के साथ साथ, वे भक्त शिरोमणि भी थे विचक्षण प्रतिभा सम्पन्न इस भक्त कवि के भक्ति रस से परिपूर्ण अनेक दोहे, गीत और ग्रथ जो हमे आज उपलब्ध हैं, उनके अनन्य भक्त होने के पुष्ट प्रमाण हैं लोकप्रियता की दृष्टि से भी वे अन्यतम भक्त के रूप म जनमानस मे प्रतिष्ठित हैं इस सबके अतिरिक्त भक्त

1 Annals of Mewar, Chapter XI Page 273

2 Tessitori Velis Introduction, Pa III
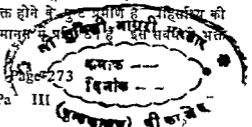
राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

'गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट' पृ २६ मे श्री पॉलिट ने भी इस घटना का वर्णन किया है

एक अन्य प्रसग भी बडा रोचक व चमत्कारिक है वेलि' की रचना समाप्त कर कवि ने भगवान श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ द्वारिका की ओर अपने परिग्रह के साथ प्रस्थान किया मार्ग मे एक उपयुक्त स्थान पर पडाव डाला गया नजदीक मे ही एक दूर देश मे यात्रा करते आ रहे व्यापारी ने भी अपना डेरा डाला रात्रि के समय उस व्यापारी ने अपने डेरे मे कवि मुख से वेलि सुनी व्यापारी तो भाव विभोर हो गया प्रात काल कवि ने पुन अपनी यात्रा प्रारभ की परन्तु कुछ दूर जाने पर कवि को स्मरण हुआ कि वेलि' तो वहीं रह गई है कवि ने तुरत एक सेवक को उस लाने के लिये प्रेषित किया, पर सेवक के आश्चर्य का पारावार न था कि वहा व्यापारी के पडाव के चिह्न भी न थे जबकि पृथ्वीराज के डेरो के चिह्न पृथ्वी पर अंकित थे। सेवक ने लौटकर सारा वृतान्त पृथ्वीराज को दिया पृथ्वीराज को एकाकी विश्वास न आया वे स्वय लौटे और तब उनकी समझ मे आया कि हो न हो, व्यापारी के रूप मे उनके इष्टदेवता ही रात्रि को उनसे वेलि-पाठ सुन रहे थे वेलि तुलसी के एक पौधे के नीचे सुरक्षित पडी हुई थी।

वल्लभ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मे भी उपयुक्त घटनाओ का वर्णन ब्रज भाषा मे मिलता है इस ग्रथ की 'भाव प्रकाश टीका' पर से एक अन्य बात और प्रकट होती है कि वल्लभ सम्प्रदाय मे उनका विशिष्ट स्थान था टीका का कुछ अश यहा उद्धृत है[1]—

अब श्री गुसाईजी के सेवक पृथ्वीसिहजी बीकानेर के राजा कल्याणसिंहजी के बेटा तिनकी वार्ता के भाव कहतु है भाव प्रकार—ये राजस भक्त है लीला मे इनका नाम प्रभावती है ये श्रुतिरूपा तें प्रकटी हैं तातें उनके भाव रूप है'

हिंदी गद्य के विकास मे दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता ग्रथ का प्रदेय अमूल्य है यह टीका भी ब्रजभाषा के प्राचीन पर प्रौढ गद्य स्वरूप को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मे 'मानसी पूजा विषयक दृष्टान्त भी है पर वह कुछ भिन्न है— और राजा परदेस जाय तब मानसी करे। सो एक सम राजा परदेस गये तब बीकानेर के ऊपर शत्रु चढ आय तब दोना और तें शत्रु घेर लिये तब श्री ठाकुरजी ने तीन दिन ताई शत्रुन तें लडाई करी। म के मदिर के किंवाड तीन दिन ताई भीतर ते बद रहे। सुने थे दिन जब शत्रु भाजि गये तब मदिर के किंवाट वान मे

[1] गुप्तद्रव प्रकाश्या कांकरोली खंड १ पृ २१६

मानसी करत मे जानी । सो उनने दीवान को लिखी पठाई । सा दीवान पत्र वाचि के चकित ह्वै रह्यो । सु राजा पृथ्वीसिहजी ऐसे श्री गुसाईजी के कृपा पात्र भगवदीय भये ।

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ गौरीशकर हीराचद ओझा ने पृथ्वीराज की भक्ति सबधित द्वारिका यात्रा और वलि पाठ का उल्लेख भी अपने ग्रथ म किया है[1]—

'कहते हैं कि 'वलि क्रिसन रुक्मणि री' को पूर्ण कर जब उसे द्वारिका मे भगवान श्रीकृष्ण के चरणा मे अर्पित करने जा रहे थे, तो मार्ग म द्वारिकानाथ ने स्वय वैश्य के रूप मे मिल कर उक्त पुस्तक को सुना था'

डॉ ओझा ने उनकी मानसी भक्ति की भी पुष्टि की है — '*श्री लक्ष्मी-नारायण का इष्ट होने से वह उसकी मानसिक पूजा किया करते थे*'

प्रसिद्ध भक्त और राष्ट्र कवि दुरसा आढाजी ने वेलि को पाचवा वेद और उन्नीसवा पुराण कहा है —

> रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण
> वेलि तास कुण करै बखाण ।
> पाचमो वद भाखियो पीथळ,
> पुणियो उगणीसमो पुराण ।।

(भावार्थ — रुकमणि के रूप और लक्षण आदि की प्रशसा वलि से अधिक और कौन काव्य कर सकता है पृथ्वीराज ने वेलि का निर्माण क्या किया जैसे पाँचवाँ वेद और उन्नीसवा पुराण ही निर्मित कर दिया हो)

आढाजी ने भागवतकार व्यासजी से कवि की तुलना कर, अन्य भक्तो मे उनके महत्व को शीर्षस्थ कर दिया है—

> *म्है कहियो हरभगत प्रिथीमल,*
> आगम अगोचर अति अचड ।
> व्यास तणा भाखिया समोवड,
> ब्रह्म तणा भाखिया बड ।।

(मैं सत्यपूर्वक कहता हूँ कि पृथ्वीराज श्रेष्ठ हरिभक्त हैं जिस प्रकार व्यासजी ने ब्रह्म का गुणानुवाद किया है उसी प्रकार पृथ्वीराज न भी अगोचर व अगम्य ब्रह्म का गुणानुवाद किया है

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मे महाराज पृथ्वीराज राठौड किस प्रकार गोसाई विट्ठलनाथजी के शिष्य हुये, उसका वर्णन भी सविस्तार किया गया है—

---

1 बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ १६०

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

'ये पृथ्वीसिहजी बीकानेर के राजा कल्याणसिहजी के यहां जन्मे सो बालपणे सो इनको चित्त साधु सगति म रहे देश देश के साधु वहां आवतें तिनसे यह मिले सो यह राजा भय तब प्रथम ही गोकुल मथरा की जातरा को चले। सो मथराजी म आए तब चौबेन सो पूछें जो ऐसो कोई महापुरुष बतावो जासू मिलिये तब चोबे ने कही जो राजा यो तो बडे बडे महापुरुष यहा ब्रजमडल मे हैं परि गोकुल में श्री गोसाईजी विट्ठलनाथजी बढ प्रसिद्ध हैं। बडे बडे राजा सत, महात्मा, गुनी, ज्ञानी सब इनकी वदना करता है। तातें उनसे तें मिलवो आछो है। तब राजा तत्काल श्री गोकुल आये सो ता सम श्री गुसाईजी आपु ठकुरानी घाट पर सध्या वन्दन कर रहे है। सो राजा को श्री गुसाईजी के दशन भय सो तेज पुज अति उज्जवल अलौकिक दशन भये। सो राजा दशन करके विस्मित हुय रह्यो। पाछे अपने मन मे कहे जु ऐसे तेजस्वी पुरुष के दर्शन तो आज तांई इस पृथ्वी मडल पर भय नही। इतने मे श्री गुसाईजी आपु सध्या वन्दन करी चूके तब आपु राजा की ओर देखे तब राजा श्री गुसाईजी कू दण्डवत कर विनती किये। जो महाराजाधिराज! कृपा करि मोको सेवक कीजिये। आज मेरो जन्म सफल भयो। तब श्री गुसाईजी कृपा करि राजा का नाम सुनाई सेवक किये। पाछ एक व्रत कराय निवेदन करवाये। पाछे राजा को आप कहे जा राजा अब तुम घर जाय भगवत सेवा करो पाछ से गुसाईजी आप राजा को श्री बालकृष्णजी को स्वरूप पधराय सेवा की। सब रीति बताय और आशीर्वाद दिये जो तुमको काल कबहू बाधा न करेगो। श्री ठाकुरजी के सदा सनमुख रहोगे। पाछे राजा प्रसन्न होई अपने देश आय। भगवत सेवा प्रीतिपूर्वक करण लागे।'

श्री अगरचद नाहटा को अपने हस्तलिखित ग्रथा के एक गुटके मे एक अज्ञात कवि मोहनरामजी का काव्य उपलब्ध हुआ है यह गीत भी उनके हरिभक्त होने को प्रमाणित करता है तथा कवि द्वारा वेलि की उपमा गगा से दी है काव्याश उद्धृत है—

गीत पृथ्वीराजजी रो मोहनरामजी रो कह्यो—

> पढिव गग प्रवाह प्रवाणी,
> सुणता अम्रित पान समथ।
> माड प्रभू रो भाव ग्रथ माखण
> परगट कीधी लता ग्रथ ॥

(भावाथ — पृथ्वीराज ने नवनीत सम हरिभक्ति के श्रेष्ट ग्रथ का निर्माण किया है, जिसका पठन पावन गगा के प्रवाह के सदृश है और जिसके श्रवण मे अमृत-पान करवाने का सामथ्य है)

वेलि क्रिसन रुकमणि के अतिरिक्त पृथ्वीराज के जितने भी ग्रथ उपलब्ध हुए हैं वे सब के सब भक्ति रस के हैं अद्यावधि निम्न ग्रथो की शोध हो सकी है और वे सब के सब उपलब्ध हैं --

(१) विट्ठल रा दूहा
(२) बसदेवरावउत रा दूहा
(३) दसरथरावउत रा दूहा
(४) भागीरथी रा दूहा

उपरोक्त ग्रथो के अतिरिक्त जिन फुटकर दोहो पदो व गीतो की प्राप्ति हुई है, वे अधिकाश वीर रस के है, तथा शेष भक्ति रस के

वेलि मे यद्यपि स्वय कवि ने ग्रथारम्भ मे ही इसको शृगार ग्रथ मान लिया है—

नीवरणण पहिली कीज तिणि
गूथिय जेणि सिंगार ग्रथ ।।८।।

परन्तु उसके तुरत बाद ही नौमें छद मे कवि ने नारी के मातृरूप की महिमा का वणन कर सारा प्रसग ही बदल दिया है —

दस मासि उदर धरि, वळे वरस दस
जा इहाँ परिपाळ जिवडी ।
पूत हेत पेखता पिता प्रति
वळो विसख मात वडी ।।६।।

(जो दस महिनो तक गभ मे धारण कर फिर दस वर्षों तक इस ससार मे जिस प्रकार वात्सल्य से पालन पोषण करती है, एसी पुत्रवत्सला को देखते हुए पिता की अपेक्षा माता ही बडी है)

स्पष्ट ही कवि स्त्री वणन को प्रथम स्थान इसलिय दे रहे हैं कि पितृ जाति से मातृ-जाति बडी है रुकमणि मात जाति की प्रतीक हैं व अम्बा हैं इसलिये सर्वप्रथम उनका वणन सुसगत व औचित्यपूरण है

इसी प्रकार कवि ने आठवें छद के प्रथम दुहाले म प्रसिद्ध भक्त कवि, सुकदेव व्यास और जयदेव आदि के नामो को उद्धरित कर कहा है कि इन सभी न जिन्होंने शृगार ग्रथ लिखे है, एकमत हैं कि सवप्रथम स्त्री वणन ही होना चाहिय इस दृष्टि से भी कवि न किसी औचित्य को भग न कर केवल एक परिपाटी का पालन ही किया है

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

मेरा नम्र निवेदन तो यह है कि यहा जिस 'त्रीवरणण' का उल्लेख हुआ है उसका अर्थ एक सामान्य नारी से सबधित न होकर स्त्री (लक्ष्मी) से है, जो स्वय अन्यतम श्रृंगार से पूर्ण धनधान्यादि की देवी विष्णु-पत्नी हैं फिर भोजराज के अनुसार श्रृंगार ही एक मात्र रस है अन्य आठ रस स्वतन्त्र न होकर मुख्य रस श्रृंगार की हो रनिया है कविवर देव ने भी श्रृंगार ही एक मात्र रस है ऐसा मान कर कहा है कि —

भूलि कहृत नवरस सुकवि, सकल मूल सिंगार ।
जो सपत्ति दपतिनु की, जाको जग विस्तार ।।

सभव है कवि ने भी श्रृंगार की इस व्यापकता और उसकी समाहृत शक्ति को ही ध्यान म रख 'गूथिय जेणि सिंगार ग्रथ' का उल्लेख किया हो यदि ऐसा नहीं होता तो रीतिकालीन कवियो की भाति इनका श्रृंगार भी कामोत्तेजक होता, परन्तु इसका तो वेलि मे लवलेश भी नही है वह तो भक्ति से आवेष्ठित सात्विक श्रृंगार की रचना है न कि सासारिक श्रृंगार रचना, जैसाकि कई विद्वान इस छद से अर्थ निकालते है

इस कथा का मूल तो महान धार्मिक ग्रथ भागवत का दशम स्कध ही है—

वल्ली तासु बीज भागवत वायौ,
महि थाणो प्रिथिराज मुख ।।

वलि की घटनाओ का चरमोत्कर्ष और उसकी परिणिति भी भक्ति ही है—

हरिजस रस साहस करे हालिया
मो पडिता वीनती मोख ।
× × × ×
मुगति तणी नीसरणी मडी
सरग लोक सोपान इळ ।

उपर्युक्त सारे तथ्य पृथ्वीराज को महाकविराज के साथ साथ असदिग्धरूप से भक्तराज प्रमाणित करते हैं इनकी वीरता और भक्ति से प्रभावित होकर तत्कालीन चारण कवि लाखा ने एक गीत मे पृथ्वीराज के गुणो का वर्णन किया है लाखा राज्यमान्य कवि थे और सभवत यह वही लाखा चारण है जिन्होंने सर्वप्रथम वेलि

की टीका ढूढाडी भाषा मे लिखी लाला निखित वह गीत जिसम कवि के दान, विद्वत्ता, युद्ध कौशल्य आदि का भव्य चित्रण किया गया है, इस प्रकार है—

गीत पृथ्वीराज कल्याणमलोत रो
बारहट लखो कहे—

वपि वावँ नतू विराजै अविरच, भले बिहु विध उर नवली भाँति ।
प्रभु सू जता हेत प्रथीमल, प सरसो तेतो पुरसाति ॥१॥
राजे राव राठोड प्रथीरज, रूडँ अगि रूडी व रीत
प्रीति जिसी सरस जगपति, पँ सो तिसी खग्रीपण प्रीत ॥२॥
अधिको नित कलियाण अगोभव, उभविधि अधिकार अछेह ।
रहै जिम तूझ सनेह सरिस हर, गु सतिय तो सरिस सनेह ॥३॥
विध बिहु रिध कीज तव सी धर धारण हेकण व्रवण धन ।
मनि तू उबर सुर न मान, मछर न ऊवर नरे मन ॥४॥[1]

ज्योतिर्विद

सामान्यत प्राचीन कवि बहु विद्या विशारद हुआ करते थे इसके पीछे भावना थी कि कवि को सवज्ञ होना चाहिये एक साथ अनेक शास्त्रा के ज्ञाता होन के कारण उनके काव्य म अथ गाभीय व चमत्कारिता अनायास ही आ जाती थी इस बहुज्ञता के कारण काव्य को बोझिल नहीं होन देना चाहिये बाह्य ज्ञान और काव्य दोना के एकमेक हो जाने के पश्चात् ही रसाभिव्यजना म किसी प्रकार का व्यवधान नही होता केशव की रामचद्रिका व कुछ अशो म बिहारी सतसई मे काव्य जो ब्रह्मानन्द सहोदरम होना चाहिये, न होकर ज्ञान का प्रदशन भर रह गया है वेलि मे इस प्रकार का अनुभव हमे कहीं न होता वेलिकार ने स्वय छद स २९९ मे स्पष्ट कहा है कि वेलि का रसास्वादन करन के लिये निम्न शास्त्रा का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है—

ज्योतिषी, वद, पौराणिक, जोगी सगीती तारकिक सही ।
चारण, भाट, सुकवि भाखा, चित्र करि एकठा तो अथ कही ॥

(ज्योतिषी, वद्य पुराणा का ज्ञाता, योगी सगीतज्ञ तार्किक चारण, भाट, भाषा मे शब्द रस, भावादि का चमत्कार उत्पन्न करन वाले सुकवि सबको एकत्रित किया जाय तो वेलि का पूरा पूरा अथ कहा जा सकता है)

उपयुक्त छन्द द्वारा कई विद्वान वेलिकार पर आत्मश्लाघा का आरोपण कर सकते है पर वास्तविकता यह है कि इस ग्रथ के अध्येता उपर्युक्त शास्त्रा के ज्ञानाभाव के कारण इसका अथ स्पष्ट नहीं कर पा सके हैं

---

१ शोधपत्रिका, उदयपुर वष १८ अक १ महाराज पृथ्वीराज राठोड रचित छप्पय ले श्री सौभाग्य सिंह शखावत।

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

कवि का ज्योतिष सबधी ज्ञान विशेषत निम्न छदो म चमत्कृत हुआ है—

छद सख्या ७०, ६३ ६६, ११७, १८८, १६३, २११, २१२, २१६, २२२, २२६, २६६ और ३०१

उदाहरण द्रष्टव्य है—

स्यामा कटि कटिमेखला समरपिन
त्रिसा अग मापित करळ ।
भावी सूचक थिया कि भेळा
सिंघरासि ग्रहगण सकळ ॥६६॥

(मुट्ठी म मापी जा सके एसी पतली कमर म रुक्मणी ने नवरत्नो से जटित करधनी पहिन रखी है मानो भाग्योदय सूचक नवग्रह सिंहराशि (सिंह—कटि प्रदेश) पर एकत्रित हुए हैं)

राशि फलादेश —बारह राशियो में सिंहराशि का स्थान पाँचवाँ है श्री रुक्मणी का नाम रकार से प्रारम्भ होने के कारण उनकी राशि तुला हुई सिंहराशि पर सारे ग्रहो का आ जाना रुक्मणी के लिये ज्योतिष की दृष्टि शीघ्र ही बडे लाभ की सूचना देता है

गजरा, नवग्रही आचिया आचे
वळ वलय विधि विधि वळित ।
हस्त नखित्र वेधिया हिमकरि
अरध कमळ अलि आवरित ॥६३॥

[रुक्मणी ने कलाई पर गजरे और नवरत्नो से जटित पहुँचियाँ पहनी जो *काले रेशमी डोरो स विविध रूपो से गुथी हुई थी ये ऐसी शोभायमान थी मानो* हस्त नक्षत्र ने चद्रमा को वेध लिया है अथवा भ्रमरो से घिरे आधे खिले कमल हो]

हस्त नक्षत्र— इसम पाँच तारे होते हैं तथा इसकी आकृति खुले हुये पजे के समान मानी गई है इसीलिये रुक्मिणी के हाथ के पजे की उपमा हस्तनक्षत्र से दी गइ है रुक्मिणी का हाथ रूपी हस्तनक्षत्र गजरा तथा पहुँचिया रूपी चद्रमा को पार कर गया है हस्त नक्षत्र मे जब चद्रमा का प्रवेश होता है तो वह शुभ माना गया है

उपयुक्त दो छदो क उदाहरण से ही हम कवि के ज्योतिष सबधी विशाल ज्ञान का पता चल जाता है

सगीतज्ञ

ज्योतिष शास्त्र के ममज्ञ होने के साथ साथ वेलिकार की सगीत मे केवल अभिरुचि ही नही थी पर वे इसकी बारीकियो से भी पूणतया परिचित थे वेलि

के विभिन्न छदो मे राग रागिनियो का जो वर्णन किया है, वह इसका प्रबल प्रमाण है

> आगणि जळ तिरप उरप अलि पिअति
>
> मरत चक्र किरि लियत मरू ।
>
> रामसरी खुमरी लागी रट
>
> धूया माठा चन्द धरू ।।२४६।।

(भ्रमर आगन मे पडे हुये पानी को पी रहे हैं अर्थात वे जल पृष्ठ को छूते हुये थिरक थिरक कर उड रहे हैं मानो त्रिसम ताल पर नृत्य विशेष हो रहा है वायु का चक्राकार घूमना ही मानो मूर्च्छना लेना है रामसरी और खुमरी नामक चिडिया की रटन हो रही है जसे वही 'मधुर ध्रुवा' और 'चद्रक ध्रुपद नामक रागिनिया हो)

मूर्च्छना — सगीत मे एक ग्राम से दूसरे ग्राम तक जाने मे सात स्वरो का जो आरोह अवरोह होता है, उसे मूर्च्छना कहते हैं मूर्च्छनाएँ इक्कीस प्रकार की होती हैं

रामसरी —अभिधाय मे एक चिडिया विशेष, पर श्लिष्ट म एक राग विशेष

खुमरी —अभिधाय मे एक सकर जाति की चिडिया विशेष पर, श्लिष्ट मे एक राग विशेष

माठा धूया —मधुर ध्रुपद राग का एक भेद

चन्द धरू —चन्द्रक ध्रुपद राग का एक भेद

अब पूरा रूपक इस प्रकार है कि भ्रमरगण मच पर त्रिताल पर नृत्य कर रहे है तथा उस समय ध्रुपद राग की दो रागिनियाँ (मधुर ध्रुपद व चद्रक ध्रुपद बज रही हैं)—

> वीणा डफ महुयरि वस बजाए
>
> रोरी करि मुख पचम राग ।
>
> तरुणी तरण विरहि जण दुतरणि
>
> फागुण घरि घरि खेल फाग ।।२२७।।

(वीणा, डफ, अलगोजा, बासुरी बजाते हुए हाथा मे गुलाल और मुख मे पचम राग सहित युवक-युवतियाँ घर घर फाग खेल रहे हैं ऐसा फागुन मास विरही जनो के लिये बहुत ही कष्ट कारक है)

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

फाग —फाल्गुण मास मे गाये जाने वाले वासतिक गीत और क्रीडाएँ

पचमराग —इसका उच्चारण नाभि, उर, कठ, हृदय और मूर्द्धा से होता है, इसलिये इसका नाम पचम पडा

ऋतुराज वसत की महिफल

आगळि रितुराम मडिश्रो अवसर
मण्डप वन नीझरण मृदग।
पचवाण नायक गायक पिक
वसुह रग मेळगर विहग ।।२४३।।

(ऋतुराज के सम्मुख महिफल लगी है वन मण्डप है झरने ही मदग हैं पचबाणो का अधिपति (कामदेव) ही उत्सव का नायक है कोयल गायिका है और विविध पक्षीगण ही महिफल के दशक व श्रोतागण हैं)

कळहस जाणगर मोर निरतकर
पवन तालधर ताल पत्र।
भ्रारि तं तिसर भमर उपगी
तीवट उघट चकोर ।।२४४।।

(इसमे राजहस ही कला के जानने वाले हैं मोर नतक हैं पवन ताल देने वाला है पत्ते करताल हैं भिल्ली की झकार तार के बाजे के स्वर हैं भंवर नसतरग बजाने वाला है और चकोर वहाँ त्रिवट ताल देने वाला है)

ततिसर —तार के वाद्यो का स्वर (सितार, सारगी, वीणा, सारगी, दिलरुबा, इकतारा)

ताल —(१) समय, विराम (२) ताल देने के वाद्य

उपग — नसतरग नामक वाद्ययत्र

उपगी — नसतरग का बजाने वाला

उघट — मात्राओ की गणना के लिये बोले जाने वाले 'बोल'

तीवट — दोपहर के समय गाया जाने वाला राग-त्रिवट

चकोर — पक्षी विशेष इसकी बोली तीन भागो मे विभक्त होती है और त्रिवट राग के बोल से मिलती हैं

इन सारे तथा अन्य कई छदों मे कवि का सगीतशास्त्र का विशाल अनुभव भरा पडा है वेलि के अतिरिक्त कवि के अनेक पद सगीत की विभिन्न राग रागिनिओ पर आधारित हैं

योगशास्त्र ज्ञाता

वेलि के अनेक छदो मे महाराज पृथ्वीराज ने योग सबधी विविध तत्वो का सूक्ष्म वणन किया है, अतएव यह नि शक कहा जा सकता है कि कवि इस शास्त्र के भी ज्ञाता थे —

कामिणि कहि काम काळ कहि केवी,
नारायण कहि अवर नर।
वेदारथ इम कहै वेदवत
जोग तत्त जोगेसवर ॥७६॥

(कुदनपुर मे जब भगवान ने प्रवेश किया तो सुदरियाँ कहने लगी कि य तो कामदेव हैं दुर्जन कहने लगे कि ये तो साक्षात काल हैं तथा भक्तजन कहने लगे कि य ही नारायण हैं वेदज्ञा ने कहा कि ये वेदाथ हैं और योगीगणो ने योग तत्व कहा)

जोग तत्त —योग के तत्व शास्त्रों मे योग के आठ तत्व माने गये हैं ये भगवत् प्राप्ति के साधन हैं योगियो का भगवान को योग साधनो का लक्ष्य रूप मे देखना ही ठीक है

धुनि उठी अनाहत सख भेरि धुनि
अरुणोदय थियौ जोग अभ्यास।
माया पटल निसाम मजे
प्राणायामे ज्योति प्रकास ॥१४८॥

(यहा अरुणोदय का योगाभ्यास के साथ साग रूपक द्वारा वणन किया गया है अरुणोदय हुआ मानो योगाभ्यास आरम्भ हुआ शखो और नगाडो का शब्द होने लगा मानो अनहद नाद हो रहा है रात्रिकाल समाप्त हो गया मानो माया का परदा हट गया सूय की ज्योति प्रसरित हो गई मानो प्राणायाम द्वारा [illegible] ज्योति प्राप्त कर ली हो)

इसी प्रकार छद सख्या १२१ १८० और २०८ मे भी याग के [illegible] स्पष्ट किया गया है

पुराण ज्ञान

वसे तो सारी वेलि ही भागवत पर आधारित है [illegible] पुरुषोतम भगवान श्री कृष्ण एव जगद्धात्री लक्ष्मी (रुक्मिणी) [illegible] भागवत कथा तो है ही, पर अन्य पुराणों, रामायण [illegible] दृष्टात निम्न छदो मे प्रस्तुत किये हैं—

छद स ८४, ६८, १०६, १६४, २०१, [illegible]
२६३

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

जब भगवान शिव ने अपने त्रिनेत्र से कामदेव को भस्म कर दिया था तब—

> अवसरि तिणि प्रीति पसरि मन अवसरि
> हाइ भाइ माहिया हरि।
> अग अनग गया आपाणा
> जुडिया जिणि वसिया जठरि ॥२६६॥

[उस समय श्रीकृष्ण और रुक्मणी के मन मे प्रेम व्याप्त हुआ रुक्मणी के हाव भाव ने उनका मन मोह लिया कामदेव के अपने अग जो महादेव के त्रिनेत्र से जल कर भस्म हो गए थे, रुक्मणी के उदर मे आकर निवास किया और इस प्रकार फिर जुड गये]

अपने भक्ति विषयक एक फुटकर गीत मे कवि ने भक्तो की उद्धार विषयक अनेक पौराणिक कथाओ का समावेश किया है—

गीत ठाकुरजी रो पिरथीराज कहै—

> प्रहलाद भाळ गज भाळ परीखत भाळ गुवाळ पडवा भणी,
> सरीखो कोई न सूझै सावळा, धणीयप करै सेवगा धणी ॥१॥
> जाइ राजा बाधिया जरासिंध, जोई अबरीष द्रोपदी जोई।
> आया सकट आपरा उवेळण, किसन सरीखो धणी न काई ॥२॥
> ईस-सीत सुग्रीव ईसवर इद्र ईस जादुव कुळ ईस।
> अर हुण अब चाढण ओळगुवा सिरीवर तणो न का सारीस ॥३॥

वैद्यकीय ज्ञान

छद स २८४ और २८५ से कवि का वद्यक-सबधी ज्ञान प्रकट होता है—

> चतुराविध वेद प्रणीत चिकित्सा
> ससत्र उखध मत्र तत्र सुवि।
> काया काजि उपचार करता
> हुवइ, सु वेलि जपत हुवि ॥२८४॥

(वेदोक्त चार प्रकार की चिकित्साओ (शस्त्र चिकित्सा, औषधि चिकित्सा, मत्र चिकित्सा और तत्र चिकित्सा) द्वारा जिस प्रकार शरीर को लाभ मिलता है उसी प्रकार का लाभ वेलि का पाठ करने से हो जाता है)

> आधिभूतिक आधिदेव अध्यातम
> पिडि प्रभवति कफ वात पित।
> त्रिविध ताप तसु रोग त्रिविध मइ
> न भवति वेलि जपति नित ॥२८५॥

(ग्राधिभौतिक ग्राधिदविक और ग्राध्यात्मिक ये तीन प्रकार के ताप तथा यफ वात, पित से उत्पन्न तीन प्रकार के राग जो शरीर मे होते हैं वेलि के नित्य पाठ करने से नही होते)

कृषि शास्त्र ज्ञाता

प्रकृति ज्ञान, पशुपक्षियो के स्वभावो और व्यापारो के ज्ञान के साथ साथ महाराज पृथ्वीराज राठौड को कृषि शास्त्र का भी सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त था—

उपडी धुडी, रवि लागी ग्रबरि
खेतिग्रे ऊजम भरिया खाट्र ।
मिग्रसिरि वाजि किया किकर म्रिग
ग्राद्रे वरसि कीध धर ग्राद्र ॥१६३॥

(धूल उडी और आकाश म ग्रवस्थित सूय से जा लगी मृगशिर नक्षत्र के पवन न चल कर मृगों को किकत्तव्य-विमूढ वना दिया उधर ग्राद्रा नक्षत्र के मेघ ने बरस कर पृथ्वी को सजल कर दिया गड्ढे भर गय और किसान कृषि की तयारिया करने लगे)

बग रिखि राजान सु पावसि बइठा,
सुर सूता, थिउ मोर सर ।
चातिग रटइ बळाहकि चचळ
हरि सिणगारइ ग्रबहर ॥१६४॥

(वर्षा मे बगुले, साधु और राजा लोग एक जगह बठ जाते हैं देवता सो गये मोर बोलने लगे पपीहे भी वोलने लग सारस उडने को चचल हो गये इद्र बादला और इद्रधनुप से आकाश को सजान लगा)

समस्त युद्ध रूपक वणन से कवि के विशाल कृषि ज्ञान का परिचय होता है एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

विसरिया विसरि जस बीज बीजजइ
खारी हळाहळा खळां ।
त्रूटइ कध मूळ, जड त्रूटइ
हळधर का वहता हळा ॥१२४॥

(जसे कृषक खेत मे दूसरी बार हल चला कर बीज बोता है वसे ही बलराम युद्धभूमि म दूसरी बार हल चलाकर शत्रुओ को हलाहल विप से भी खारे लगन वाले यश रूपी बीज बोन लगे जब हलधारी बलराम का हल चलने लगा तो शत्रुओ के कधो के मूल उखडने लगे जसे वर्षाकाल मे किसान के हल चलाते समय जमीन के भीतर की जडें उखड जाती हैं)

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

इन सबके अतिरिक्त शृंगार, आभूषण, विवाह व पुत्र जन्म सबधी रीतिया, विविध उत्सवो तथा पर्वों का सूक्ष्म ज्ञान और पशु पक्षियो के स्वभावो और व्यापारो का भी उन्हे विशेष ज्ञान था —

गउ खीर स्रवति रस धरा उदगिरति
सर पोइणिअ थयो सु स्त्री ।
बळी सरद स्वग-लोक वासिअे
पितरे ही म्रित लोक प्री ॥२०६॥

(अश्विन मास के आने पर गायें दूध झरने लगी, धरती अन्न के रूप मे रस उगलने लगी तालाबो और सरोवरो मे कमल सुशोभित हुए स्वर्गलोक मे रहने वाले पितरो को भी मर्त्यलोक प्यारा लगने लगा अश्विन मास मे ही श्राद्ध पक्ष आता है जबकि पितर बलि ग्रहण करने के लिये पृथ्वी पर आते है)

पुत्रोत्सव का एक सजीव चित्रण देखिये—

कामा वरस्वती काम-दुघा किरि,
पुत्रवती थइ मनि प्रसन
पुहप करणि करि केसू पहिरे
वनसपती पीळा वसन ॥२३६॥

(जसे माता पुत्र को प्रसव देकर मन मे आनदित होती है और अनेक प्रकार के दान देती है वैसे ही वनस्पति रूपी माता वसत रूपी पुत्र को जन्म देकर प्रसन्न होती है और जसे मा कामधेनु के समान मुहमागा दान देती है वसे ही वनस्पति सौरभ और सौंदय प्रदान करने लगी पुत्र जन्म पर माता पीला' नामक वस्त्र ओढती है उसी प्रकार वनस्पति टेसू आदि फूलो के कारण पीला ओढती है राजस्थान म पीला ओढना मागलिक है वडी वूढी स्त्रिया जब बहूओ को आशिष देती हैं तो कहती हैं पीळा ओढो')

आप्त द्रष्टा

सिवाना के शासक व इतिहास के अप्रतिम वीर राव कल्लाजी रायमलोत वसे तो महाराज पृथ्वीराज राठौड से अकबर बादशाह की राजधानी मे अनेक बार मिलते थे, पर एक बार वे उनसे मिलने के लिये विशेष रूप से बीकानेर गये [1] वहां उन्होने पृथ्वीराज राठौड स कहा कि म अपनी मातृभूमि की रक्षाथ जूझकर वीरगति प्राप्त करना चाहता हूँ आप सच्चे व प्रसिद्ध कवि हैं मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मर मरणव्रत की पूर्णाहुति एव उद्यापन का वणन अपने काव्य द्वारा मुझे पहले ही

१ महावीर कल्लाजी रायमलोत लेखक आचाय बद्रीप्रसाद साकरिया प्र राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ (राजस्थान)

सुना दें पृथ्वीराजजी कल्लाजी की प्रचण्ड वीरता, निडरता तथा स्वतन्त्र प्रकृति से पूर्णतया परिचित थे उन्होंने कहा कि कल्लाजी ! मैं जानता हूँ कि आप हमारे वंश के गौरव हैं आपकी वीरता मे किसे सदेह हो सकता है ? मैं भविष्यवक्ता तो हूँ नही कि आपको यह पहिले से ही बता दू कि आप किस प्रकार जूझते हुए वीरगति को प्राप्त करेंगे ? हाँ आपके मरणोपरात आपके शौर्य को काव्यबद्ध कर आपको अमर बना दूगा कल्लाजी ने उत्तर दिया भक्तराज ! मैं देश और जाति के लिये बलिदान होकर अपने जीवन को सार्थक कर देना चाहता हू, मुझे अमर होने की चाह नही है, मुझे तो अपना कत्तव्य करना है आपकी पवित्र वाणी द्वारा मेरे इस मरण मगलोत्सव का वणन सुन कर मैं अपनी वीरगति का अपने हृदय चक्षुओ से दशन कर सकूगा कृपा कर मुझे वह सुना दीजिये

कल्लाजी के आग्रह और प्रार्थना को वे ठुकरा न सके अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण का ध्यान कर, अपनी आशुवाणी द्वारा कल्लाजी के युद्ध का जो वणन किया है तथा इस रूप मे जो भविष्यवाणी की है, वह इतिहास व साहित्य दोनो की अमूल्य निधि है पृथ्वीराज के युद्ध वर्णनानुसार कल्लाजी अक्षरश लडे उनकी यह भविष्य वाणी भी शत प्रतिशत सच्ची हुई कि मोटा राजा उदयसिंह (जो इस समय तुमसे बहुत स्नेह रखते हैं) बादशाह की ओर से तुम पर आक्रमण करेंगे कल्लाजी के यह कहने पर कि यह असभव सा लगता है पृथ्वीराजजी ने कल्लाजी के पूवजो के ऐतिहासिक उदाहरण देकर कहा कि पराधीनता सब कुछ करवा सकती है रावळ मल्लीनाथ तो भक्त और सिद्ध पुरुष थे उन्होने अपने भतीजे त्रिभुवनसी से युद्ध कर उसे मार दिया भवितव्यता को कौन टाल सकता है प्रतीक्षा करो अपने इस गीत मे पृथ्वीराज ने अनेक महावीरो के उदाहरण देकर कहा कि कल्लाजी भी इसी प्रकार का प्रचड युद्ध करेंगे पृथ्वीराज राठौड का वह इतिहास प्रसिद्ध गीत इस प्रकार है—

वढ चढ बोलियो पतसाह वदीतो, मडोवर रस माण मलीतो ।
जिण जमवार लगे जस जीतो, कलो भलो रजपूत कहीतो ।।१।।
पुळिया दळ पारभ पतसाहै, सिंध नरेसर बीडो साहै ।
वकिया वयण तिके निरवाहै, गढ समियाण कलो पडिगाहै ।।२।।
थट गागरट तलहटी थाणो, राव अग्रज कर रीसाणो ।
करडा वयण कहै कलियाणो, सिर पडिय आपिसि समियाणो ।।३।।
तोडिस मछर वधै तियाळ बेंध पडया धर खेध विचाळ ।
ऊदो राव दुरग उदाळ रायमलोत दरग रखवाळ ।।४।।
सूजाहरो डाखिया साबळ, छावो विढै अणखळा निय छळि ।
दीठो काळ रोहिया अरिदळ चढिया गढै जूजुवा चळि चळि ।।५।।
भारतसीह जिसा भूपाळा, माचि कळह गढ उपरमाळा ।
रे कहता आयो रवताळां, कलियो रह्यो मुहै किरमाळा ।।६।।

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम वार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

जिम रावळ दूदो जेसाणै सातळ सोम मुआ समियाण ।
निहसि राव चूडो नागाणै, कीधो मरण तिसो कलियाण ।।७।।
जुडि घण कान्ह मुआ जाळधर, थाट विडारि हमू रणथभर ।
अगति लाज अणखला ऊपरि, कलियो जूझि मुओ गज केहरि ।।८।।
नरसिघ मणियड प्रोळ निरोहै रहियो भाण मडोवर रोहै ।
लुद्रव भाज मुओ वढि लोहै सिर समियाण क्लो भ्रित साहै ।।९।।
पावागढ जूझार पताई, वळि जमळ चीत्रोड सवाई ।
लाखावड सिर माड लडाई, वाघहरो रहियो वरदाई ।।१०।।
हाथी सो हरिभाण हथाळा कुभ गागरण माझी कालो ।
आवू मजन मुओ अडसाळो, समियण तेम कलो सपखाळो ।।११।।
अचळ तिलोकसिघ रण आग, जुडि गागरण मुआ छळि जागै ।
लाज तिका भुज अबरि लाग, खेड नरमेर विढियो खागै ।।१२।।
वढि घा भोज मुओ वीकाणै पाटत अरिजण जेणि प्रमाणै ।
वरसलपुर खेमाळ वखाणै, साको तेम कलो समियाण ।।१३।।
निहचळ वात कलो निरवाहै, चावो रावा बोल चढाहै ।
रवि ससिहर लगि नाम रहाव इद छभा विचि बैठो आवै ।।१४।।

कहा जाता है कि गीत सुनते समय राव क्ला अपने शौयवेश को सम्हाल नही सकने की अवस्था म आने लगे तो पृथ्वीराज ने गीत आगे न बढाकर इत्यात्मक ढाला कहकर तुरत समाप्त कर दिया इस गीत मे उत्तम वयण सगाई अलकार का निरतर प्रयोग हुआ है

इस गीत से महाकवि के इतिहास सबधी ज्ञान का भी अच्छा परिचय मिल जाता है कौनसे प्रसिद्ध योद्धा ने कहा और कसे तया किसके साथ युद्ध किया यह उसका एक प्रमाण है वसे तो उनके ऐतिहासिक प्रशस्तिमूलक सारे गीत उनकेइतिहास सबधी विशिष्ट ज्ञान को ही सूचित करते हैं, पर जहां उन गीतो मे एक एक वीर का वणन है, वहा इस गीत म तो कवि न सारे इतिहास का ही समावेश कर दिया हो, एसा लगता है

मृत्यु

कालजयी भक्त प्रवर महाराज पृथ्वीराज राठौड अपनी मृत्यु तिथि और स्थान से भली भांति अवगत थे वस्तुत महान व पवित्र आत्माएँ दिव्य दृष्टा होती हैं जब बादशाह अकबर न महाराज पृथ्वीराज को काबुल पर आक्रमण करने के लिय कहा तो अपनी मृत्यु तिथि का ध्यान कर एक क्षण तो वे हिचकिचाये पर फिर अपन गुरु श्री गुसाईंजी विट्ठलनाथजी का ध्यान कर काबुल विजय के लिये तयार हो गए 'दो सौ बावन वष्णवा की वार्ता म यह प्रसग इस प्रकार दिया गया है —

'बहुरि राजा पृथ्वीसिंहजी कू पृथ्वीपति दिल्ली बुलाये सो राजा पृथ्वीपति के पास दिल्ली आये तब तिलक छाप सब करिके आये तब बादशाह पृथ्वीसिंहजी कू देख के मन में बडे प्रसन्न भयो कहे जु देखो इनको अपने गुरू प असो विश्वास है पाछे बादशाह राजा की काबुल की ओर लडाई जायवे की कही तब राजा ने विचार कियो जो मेरी मृत्यु तो अमुक दिन मथुरा में विश्रान घाट प हुयवे वारी है सो अब कैसे करें ? फेरि श्री गुसाईजी के चरणारविन्द को ध्यान करि राजा काबुल गयो सो वहाँ थोरे दिन में लडाई जीति के साडनी पै बैठि के उहाँ तें चले सो कोई दिन मे मथुरा आई के वाहि दिना देह छोडी सो यह बात बादसाह न सुनी तब बादसाह ने बहुत खेद कियो जु एसो राजा मो को मिलनो कठिन है'

यह कथा कुछ इस प्रकार भी लोक मे प्रचलित है पृथ्वीराज के काबुल चले जाने के पश्चात् एक दिन अकबर के दरबार मे एक बहेलिया चकवा चकवी का जोडा लेकर आया, जो मानवी भाषा म बातचीत करता था यह जोडा एक ही पिंजरे में बंध था गुणवान बादशाह, बहेलिये की इस भेंट पर बडे प्रसन्न हुये और-कहा कि ऐसे शत्रु शिकारी पर तो करोडो मित्र न्योछावर हैं उपस्थित कवि खानखाना ने इसी भाव को वाक्यबद्ध किया 'सज्जन वारू कोडधा वा दुजन की भेंट', किन्तु वे दूसरी पंक्ति नही बना सके बादशाह को पृथ्वीराज का स्मरण हो आया और उन्हें बुलवा भेजा मथुरा पहुँचने तक उनकी मृत्यु की अंतिम घडी आ गई थी उन्हाने हलकारे के साथ दूसरी पंक्ति लिख भेजी 'रजनी का मेळा किया, विहि का अच्छर मेट' बादशाह बडे प्रसन्न हुये पर उसी समय हलकार ने उनकी विश्रामघाट पर मृत्यु और उस समय दो श्वेत कौओ के आने की बात कही सभी आश्चर्यचकित रह गये

एक अन्य स्थल पर मृत्यु के समय एक श्वेत कौआ प्रकट होने का भी उल्लेख है। वीरवर पृथ्वीराज न यमुना के किनारे विश्रात घाट पर अपनी नश्वर देह को सवत् १६५७ म त्यागा ऐसे भक्तशिरोमणि, महान कवि और योद्धा पर मथुरा मे कोई स्मारक न बना हो, असभव-सा लगता है, पर श्री हजारीमल बाठिया के अथक प्रयत्न करने पर भी अभी तक कुछ पता नही चल सका है

तानसेन व बीरबल की मृत्यु के पश्चात अकबर को अपना नवरत्नी दरबार सूना सूना लगने लगा बादशाह को इन दोनो का अभाव खटकने लगा ऐसे समय मे यद्यपि पृथ्वीराज उनके नवरत्नो मे से एक नही थे, फिर भी अपने अनेक गुणो के कारण जिन्होने बादशाह का हृदय जीत रक्खा था, स्वर्गवास हो जाने के कारण बादशाह का बडा आघात लगा और उनके मुह से बरबस फूट पडा कि—

पीथळ सो मजलिस गई, तानसेन सों राग।
रीझ बाल हस खेलबो, गयो बीरबल साथ ॥

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम वार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

पृथ्वीराज जैसे परमवीर और परमभागवत श्रेष्ठ कवि और दातार की मृत्यु पर किसी समकालीन कवि द्वारा कहे गये मरसियो मे उनके व्यक्तित्व की एक झलक दर्शनीय है[1]—

विवनो पृथ कल्याण तण, जाणण भेद गुणाह ।
मोल विथका रावता, कवि सचा कहणाह ।।१।।
विवनो पृथ कल्याण तण, जास सकल गुण जाण ।
कुण दातार कहीजसी कह दीजै बाखाण ।।२।।
पृथ्वी विवनो राठवड, दाता सूर सुजाण ।
कवि किरमर वायक सकल, इखीजै अप्रमाण ।।३।।
सरसति कठा सूर मुख, पिउ पौरसि वरियाम ।
भगा पृथ कमध मत, चहू विलवण ठाम ।।४।।

'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' के रचयिता अनेक युद्धो के विजयी योद्धा तथा भक्त प्रवर यद्यपि आज हमारे बीच मे नही हैं, फिर भी हम उनके देशवासी उनके अप्रतिम ओज, साहित्य साधना व भक्ति गगा से सदा अनुप्राणित रहगे ।

किसी अन्य कवि ने उनके जीवन की चारित्रिक विशेषताओ को आबद्ध करते हुये सत्य ही कहा है—

दाता,भोक्ता हरेभक्त कर्ता शास्त्रस्य शास्त्रवित,
पृथ्वीराज समो राजा, न भूतो न भविष्यति ।।

---

१ शोधपत्रिका वर्ष १८ अक १, उदयपुर, महाराज पृथ्वीराज राठौड रचित छप्पय से श्री सौभाग्यसिंह शखावत

२

वेलि

विवेचन

वेलि का नामकरण व वेलि-साहित्य

जिस प्रकार मगल काव्यो की एक सुदीघ परम्परा है उसी भाति वरन् उससे भी कही अधिक विस्तृत परम्परा वेलि काव्यो की रही है राजस्थानी, गुजराती एव व्रजभाषा में इस काव्य परम्परा के शताधिक ग्रथ उपलब्ध हैं जिनमे से कई तो प्रकाशित हो चुके हैं और शेष अद्यावधि किसी शोधधर्मी प्रकाशक की राह देख रहे हैं वैसे रोडा कृत राउलवेल वेलि परम्परा की सवप्रथम रचना सुनी जाती है और जिसका समय ग्यारहवी शती का माना जाता है, पर अब तक लिखित रूप मे प्राप्त सवाधिक प्राचीन वेलि ग्रथ 'चिहुगति वेलि' है, जो एक जैन कवि वाछा द्वारा प्रणीत है तथा जिसका रचना काल वि स १५२० के आस पास का है जिसमे कवि ने चार गतियो (१) नरक गति (२) तिर्यंच गति (३) मनुष्य गति और (४) देवगति का वणन किया है इसके पश्चात् तो बीसवी शती तक अबाध गति से अनेक वेलि काव्यो की रचना हुई है

वेलि का पर्याय बेल, लता तथा वल्लरी है वल्लरी सस्कृत शब्द है, जिसका अपभ्र श रूप ही वेल अथवा वेलि है उपनिषदो मे वल्ला शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ वल्ली का प्रयोग परिच्छेद के रूप मे हुआ है, यथा भृगुवल्ली, ब्रह्मानद वल्ली आदि कालान्तर में वल्ली शब्द का रूपान्तर हो गया और वह आधुनिक अथ लता के रूप मे प्रयुक्त होने लगा न्याय वल्लरी, वेदान्त वल्लरी चातुर्मास्य व्रत वल्ली और अम्बुज वल्ली आदि इसी वेलि परम्परा के सस्कृत साहित्य के ग्रथ है

हिन्दी में जहाँ लता शब्द अधिक प्रचलित है, वहाँ राजस्थानी और गुजराती मे वेल अथवा वेलि विद्यापति की कीर्तिलता के साथ साथ नागरीदास की राजरस-लता, सुखदेव मिश्र कृत शृ गारलता, श्रीदत्त की लालित्यलता और ब्रजनिधि की प्रीतिलता लता नामधारी तथा घनानद की रसवेलिवल्ली ब्रजनिधि कृत दुखहरणवेलि तथा वृ दावनदास की दानवेलि आदि पचहत्तर से अधिक वेलि ग्रथ प्रख्यात हैं ब्रजभाषा मे कुछ वल्लरीधारी रचनाएँ भी उपलब्ध हैं जिनमे नागरीदास की वैराग वल्लरी, रामराय की मनोरथ वल्लरी तथा घनानद की रसकेलि वल्लरी प्रसिद्ध हैं इसके अतिरिक्त करुणावेलि, आनदघन वेल और हरिकला वेलि भी प्राप्य हैं ।

राजस्थान मे किसी डिंगल कवि पर प्रथम बार
एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है, जिसका

वेलि का नामकरण व वेलि-साहित्य

जिस प्रकार मगल काव्यो की एक सुदीघ परम्परा है उसी भाँति वरन् उससे भी कही अधिक विस्तृत परम्परा वेलि काव्यो की रही है राजस्थानी, गुजराती एव व्रजभाषा में इस काव्य परम्परा के शताधिक ग्रथ उपलब्ध हैं जिनम से कई तो प्रकाशित हो चुके हैं और शेष अद्यावधि किसी शोधधर्मी प्रकाशक की राह देख रहे हैं वैस रोडा कृत राउलवेल वेलि परम्परा की सवप्रथम रचना सुनी जाती है और जिसका समय ग्यारहवी शती का माना जाता है, पर अब तक लिखित रूप मे प्राप्त सर्वाधिक प्राचीन वेलि ग्रथ 'चिहुगति वेलि' है, जो एक जैन कवि वाछा द्वारा प्रणीत है तथा जिसका रचना काल वि स १५२० के आस पास का है जिसमे कवि ने चार गतियों (१) नरक गति (२) तियच गति (३) मनुष्य गति और (४) देवगति का वणन किया है इसके पश्चात् तो बीसवी शती तक अबाध गति से अनेक वलि काव्यो की रचना हुई है

वेलि का पर्याय बेल, लता तथा वल्लरी है वल्लरी सस्कृत शब्द है जिसका अपभ्र श रूप ही वेल अथवा वेलि है उपनिषदो मे वल्ली शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ वल्ली का प्रयोग परिच्छेद के रूप म हुआ है, यथा भृगुवल्ली, ब्रह्मानद वल्ली आदि कालान्तर मे वल्ली शब्द का रूपान्तर हो गया और वह आधुनिक ग्रथ लता के रूप मे प्रयुक्त होने लगा न्याय वल्लरी, वेदान्त वल्लरी चातुर्मास्य व्रत वल्ली और अम्बुज वल्ली आदि इसी वेलि परम्परा के सस्कृत साहित्य के ग्रथ है

हिन्दी मे जहाँ लता शब्द अधिक प्रचलित है, वहाँ राजस्थानी और गुजराती मे वेल अथवा वेलि विद्यापति की कीर्तिलता के साथ साथ नागरीदास की राजरस-लता, सुखदेव मिश्र कृत शृ गारलता, श्रीदत्त की लालित्यलता और व्रजनिधि की प्रीतिलता,लता नामधारी तथा घनानद की रसकेलिवल्ली व्रजनिधि कृत दुखहरणवेलि तथा वृंदावनदास की दानवेलि आदि पचहत्तर से अधिक वेलि ग्रथ प्रख्यात हैं ब्रजभाषा मे कुछ वल्लरीधारी रचनाएँ भी उपलब्ध हैं जिनमे नागरीदास की वैराग वल्लरी, रामराय की मनोरथ वल्लरी तथा घनानद की रसकेलि वल्लरी प्रसिद्ध हैं इसके अतिरिक्त करुणावेलि, आनदवधन बेल और हरिकला वेलि भी प्राप्य हैं।

राजस्थानी साहित्य मे अनेक वेलि ग्रंथो की भाँति गुजराती मे केशवदास की वल्लभवेल, बजिया कृत सीतावेल, जीवनदास रचित श्रुतवेल, प्रेमानन्द प्रणीत व्रजवेल तथा दयानद कृत भक्तवेल प्रमुख हैं

राजस्थानी-साहित्य म अनेक वेलि काव्यो की रचनाएँ हुई हैं विभिन्न धर्मावलम्बियो द्वारा लिखी गइ य कृतियाँ विविधता व उत्कृष्टता के नमूने हैं और साहित्य के गौरव ग्रथ हैं इन वेलि काव्यो का विषय या तो चरित्र नायको क यश प्रसार का रहा है अथवा य रचनाएँ सच्चिदानद भगवान की लीला-गाथाओ के प्रचार का माध्यम रही हैं

सिहा कृत जम्बू स्वामी वेलि, ठकुरसी रचित पचेन्द्रिय वेलि, भट्टारक निर्मित आदिनाथवेलि, साधुकीर्ति की सवत्थवेलि, जयसोम कृत बारह भावना वेलि, वीर विजय की सुभ वेलि, कीर्तिविजय निर्मित सुजसवेलि और जिनविजय कृत नेमिस्नेह वेलि आदि प्रमुख जन धर्मावलम्बी रचनाएँ हैं ये सारी रचनाएँ अपभ्रंश अथवा राजस्थानी भाषा मे लिखी हुई हैं

गुण चणिक वेलि के रचनाकार प्रसिद्ध भक्त कवि चूडँजी, कृष्णजी री वेलि के रचयिता सासला करमसी, किसन रुकमणी री वेलि के सृजनकार महाराज पृथ्वीराज राठोड के अतिरिक्त त्रिपुरी सुदरी वेलि के रचयिता जसवत, किसना प्रणीत हर पारवती री वेलि, महेसदास रचित रघुनाथ चरित नव रस वेलि तथा महादेव पार्वती री वेलि के सजक आढा किसना आदि राजपूतो और चारणो द्वारा प्रणीत वलि ग्रथ अति प्रसिद्ध है इनम से गुण चणिक वेलि तथा कृष्णजी री वेलि, 'किसन रुक्मणी री वलि' की पूववर्ती रचनाएं हैं तो त्रिपुर सुदरी और महादेव पार्वती री वेलि परवर्ती रचनाए हैं य सारे वेलि ग्रथ धार्मिक हैं, पर वीर प्रसूता यह भूमि अपनी वीर सतान को कैसे भुला सकती है ? एक ओर जहाँ इस प्रदेश मे धार्मिक वेलि ग्रथा की रचना धारा प्रवहमान थी तो दूसरी ओर प्रशस्तिमूलक ऐतिहासिक वेलि ग्रथो की रचना धारा भी निरतर प्रवहमान थी

मालाजी सादू कृत रायसिंघजी री वेलि गाडण चोलो की महाराजा सूरसिंघजी री वलि, गाडण वीरमाण कृत महाराजकुवर अनोपसिंघजी री वेलि, सादू रामा प्रणीत उदसिंघ री वेलि दूदा कृत रतनसी खींचावत री वेलि और बारहठ अखै भाणोत रचित देईदास जतावत री वेलि आदि सारे वेलि ग्रथ अपने अपने आश्रयदाताओ के ऐतिहासिक प्रशस्ति ग्रथ हैं जो वेलियो छद मे लिखे हुए हैं ।

धार्मिक तथा एतिहासिक प्रशस्ति वेलि ग्रंथो के अतिरिक्त लोक कठों में अनेक वेलि ग्रथ अवस्थित हैं रामदेवजी री वेल, माईमातारी वेल, रूपादे री वेल और तोलादे री वल जनमन के हार हैं

उपयु क्त सक्षिप्त विकासोन्मुख सर्वेक्षण से अब यह स्पष्ट है कि न तो वेलि काव्य किसी एक विषय को लेकर ही सृजित हुये हैं और न लेखकवृद मे स किसी एक जाति विशेष का उस पर एकाधिकार था वेलि ग्रथ मे पयुक्त छद भी एक से नही है फिर भी एक बात निश्चित है कि अधिकाश ऐतिहासिक प्रशस्तिमूलक वेलि ग्र थ वेलियो छद मे लिखे गये हैं

आधुनिक युग मे श्री मुकुनसिंघ राठौड कृत बहुनामी री वेलि, शैतानसिंघ री वेलि और पीरूसिंघ री वेलि आदि वेलि ग्रथ शृ खला की नवीनतम कडियाँ हैं श्री राठौड ने वेलि-परम्परा को सिंचित कर पुन पल्लवित कर दिया है

प्रारम्भ मे यह मत अधिक प्रचलमान था कि क्योंकि वेलि ग्रथ वेलियो छद म लिखे गये हैं, इसलिये इसका नाम वेलि पडा पर उपयु क्त विवरण से यह स्पष्ट है कि सभी वेलि ग्रथ वेलियो छद मे रचित नही हैं जिन प्रशस्तिमूलक ऐतिहासिक वेलि ग्रथों का निर्माण हुआ है, वे सभी वि स १६३७ के बाद के हैं वि स १६३७ ही 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' का रचना काल माना जाता है महाराज पृथ्वीराज राठौड उस समय तक एक प्रसिद्ध कवि, भगवद्भक्त, योद्धा सामत तथा बहुत के रूप मे अकबर के दरबार और साहित्यिक व सामाजिक जगत म पूणतया प्रस्थापित हो चुके थे अतएव प्रशस्तिमूलक ऐतिहासिक वेलि काव्य परम्परा के परवर्ती कवियो ने जिन्होंने अपने ग्रथ म 'वेलियो' छद का प्रयोग किया है, महाराज पृथ्वीराज राठौड की पद्धति का अनुकरण किया हो तो कोई आश्चय नही

प्रो० नरोत्तमदास स्वामी तथा कविराजा मोहनसिंह यही मानते हैं कि वेलियो' छद मे लिखे जाने के कारण इनका नाम वेलि रखा गया यह मत थोडा भ्रामक है क्योंकि प्रथम तो सभी उपलब्ध ग्रथ वेलियो छद मे लिखे हुये नही हैं द्वितीय स्वय पृथ्वीराज रचित वेलि भी शत प्रतिशत वेलियो छद म रचित ग्रथ नही है

प्रो० मजुलाल मजमुदार ने वेलि शब्द को विवाह के अथ मे प्रयुक्त हुआ कहा है पर उनका यह विधान भी सत्य से कही दूर है विवाह परक वेलि काव्य अपवाद रूप मे ही प्राप्त हैं ऊपर जिन गुजराती वेलि ग्रथा की चर्चा की है उनम से केवल अक सीता वेल ही विवाह परक है दूसरे उन वेलि ग्रयो मे जिनमे विवाह सम्बन्धी वणन है उनमे विवाह वर्णन सम्पूण कथा का केवल अशमात्र ही है

डॉ० माताप्रसाद गुप्त व डॉ० भोलानाथ तिवारी ने विलास >विलाम> विल्ल>वेल्लि आदि से वेलि की जो व्युत्पत्ति बताई है, वह नितान्त भ्रमपूण है

डॉ० आनदप्रकाश दीक्षित[1] के मतानुसार वेल अथवा वेलि शब्द राजस्थानी-साहित्य में छ अर्थों मे प्रयुक्त होता है—

(१) ससार, शरीर वनक, पाप, ज्ञान, अमृत, यश अपयश सहित अपमान रूप मे,

(२) वेलि काव्यो के आदि अन्त मे काव्य सज्ञा के रूप मे,

(३) छद के नामोल्लेख के रूप मे,

(४) साथी या सहायक रूप म,

(५) लहर-तरग के रूप म

(६) लता, वल्लरी के अभिधेय अर्थ मे वेल, वेलडी, वेलि आदि.

डा० दीक्षित द्वारा दिया गया वेलि का प्रथम अर्थ सस्कृतादि किसी भाषा म हो सकता है पर राजस्थानी भाषा मे तो उसके यह पर्याय प्राप्य नही हैं द्वितीय अर्थ से शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश नही पडता शेष चारो अर्थ राजस्थानी भाषा मे अवश्य उपलब्ध हैं पर सवप्रचलित राजस्थानी अर्थ जिसे डॉ० दीक्षित नहीं दे सके हैं वह है वश' और 'उम्र' राजस्थान मे बडे बूढे जब आशीर्वाद देते हैं तो सदव यह कहते हैं कि थारी वल वधो' अेक और अर्थ जो राजस्थान में वेलि का होता है वह है अगूठी या कडा वास्तव मे यह अर्थ रूढ हो गया है वेलि का एक साधारण अर्थ है शरीर के किसी अग के चारो ओर लिपटा हुआ आभूषण

प० बदरीप्रसाद साकरिया ने अपने राजस्थानी हिंदी कोश मे वेलि के निम्न अर्थ दिये हैं —१ लता २ एक छद ३ राजस्थानी साहित्य का काव्य रूप, ४ वश, ५ आयु ६ तरग, लहर, ७ अगूठी ८ कडा (वि) ९ सहायक, साथी

स्वय पृथ्वीराज ने अपने ग्रथ क्रिसन रुकमणी री वेलि' के अन्तिम भाग मे छद सख्या २९१, २९२ और २९३ मे वेलि ग्रथ का वेल (लता) के साथ सादृश्य बतलाया है वह उनकी स्वप्नशीलता का भव्य उदाहरण तो है ही परन्तु साथ ही साथ अपने काव्य को वेलि सज्ञा देन का कारण भी उसमें निहित है—

वल्ली तसु बीज भागवत वायो,
महि थाणो प्रियुदास मुख ।
मूळ ताल जड, अरथ मण्डहे,
सुथिर करणि चढि छाँह सुख ॥२९१॥

(इस वलि रूपी लता का बीज भागवत है दास पृथ्वीराज के मुख रूपी थाँवले म यह बीज बोया गया है इसका मूल पाठ ही मानो वृक्ष की डालियाँ हैं तथा इसका अर्थ ही मानो जडे हैं श्रोताओ के एकाग्र कान मडप हैं जिनके ऊपर यह चढी रहती है सुख ही इसकी छाया है)

---

[1] स्वसपान्ति वेलि प० २७ प्रकाशक -विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर ।

पत्र अक्खर दळ द्वाळा जस परिमळ,
नव रस ततु विधि अहोनिसि ।
मधुकर रसिक सु भगति मजरी,
मुगति फूल, फळ भुगति मिसि ।।२६२।।

(अक्षर इसके पत्ते है दोहलो मे वर्णित भगवान का यश ही सुगधि हैं नव रस इसके ततु हैं और यह वेलि रात दिन बढती रहती है साहित्य रसिक अथवा भक्त ही मानो भँवर हैं और भक्ति ही मजरी है मुक्ति ही इसका फूल है और परमानद इसका फल है)

कळि कलप वेलि वळि कामधेनुका,
चितामणि सोमवल्लि चत्र ।
प्रकटित पृथिमि, पृथु मुख पकज,
अखरावलि मिसि थाइ एकत्र ।।२६३।।

(यह वेलि कलिकाल मे कल्पलता, कामधेनु चितामणि तथा सोमलता है ये चारों पृथ्वीराज के मुख कमल मे अक्षरो के समूह के बहान पृथ्वी पर प्रकट हुई हैं)

इसी प्रकार एक और अत्यन्त महत्वपूण तथ्य वेलि मे दृष्टिगोचर होता है, जिस पर से नामकरण की साथकता सिद्ध होती है सद्यजाता रुक्मिणी का वर्णन कवि ने कनक वेलि के माध्यम से किया है जिससे रुक्मिणी के कचनवर्णी कोमलागो पर सुदर प्रकाश पडता है—

रामा अवतार, नाम ताइ रुकमणी
मानसरोवरि मेरु गिरि ।
बाळक गति किरि हस चउ बाळक,
कनक-वेलि बिहु पान किरि ।।१२।।

(बाल्यावस्था मे रुक्मणी एसी जान पडती थी मानो मानसरोवर मे हस का बच्चा हो अथवा सुमेरु पवत पर सोने की छोटी सी लता हो, जिसके दो पत्ते अभी अभी निकले हो)

अन्यत्र एक अन्य राजस्थानी कवि ने भी वेलि का सादृश्य गुणवती नारियो से कर बडी ही भावपूर्ण और अयगभीर अभिव्यक्ति की है —

वेलडियां गुणवतियां नेहा नही चुक्त ।
ज्यारे गळे विलूवही, वा पर ही सूक्त ।।

वश वृद्धि के रूप मे भी वेलि शब्द इस काव्य के लिये साथक है वेलि मे कवि ने वसुदेव से वासुदेव वासुदेव से प्रद्युम्न और प्रद्युम्न से अनिरुद्ध—इस प्रकार चार पीढियों का वर्णन छद सख्या २७० और २७१ मे किया है

भगवान श्रीकृष्ण रुकमणी की आतपुकार पर वेली (बेली) के रूप म सहायताथ दौड आये, यह वेलि के तीसरे अथ की साथकता है फिर यह, राजस्थानी का विशिष्ट काव्य रूप भी है जिसमे वेलियो छद का भी प्रयोग किया गया है

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचाय प० बदरीप्रसाद द्वारा दिय गये वेलि के सारे अथ पृथ्वीराज रचित वेलि मे साथकता से प्रयुक्त हुए हैं, अतएव हम नि सकोच कह सकते हैं कि इस काव्य का वेलि नामकरण सवथा उचित ही है

वेलि का काल निर्णय

भारतीय सस्कृति की उदात्त विशेषताम्रो (सहिष्णुता, सत्यता, परोपकारिता व निभिमानता) मे विनम्रता अपना विशिष्ठ स्थान रखती है विनम्रता म शक्ति रहते हुये भी विद्वानो और बुजुर्गों आदि के समक्ष रचयिता या कर्ता के ज्ञान और यश आदि का भाव उपेक्षित रहता है इस उपेक्षा-प्रवृति ने भारतीय सस्कृति, साहित्य व इतिहास को लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक पहुँचाई है और इसी के परिणामस्वरूप आज हम अपना क्रमबद्ध प्रामाणिक राष्ट्रीय इतिहास नही मिल रहा है

साहित्य का क्षेत्र भी इससे अछूता नही रहा है। यही कारण है कि कई अत्यन्त अमूल्य ग्रथो के रचनाकारो के न तो हमे नाम ही मालूम है और न उनकी निर्माण तिथि ही हिंदी साहित्य मे ऐसे ग्रथो की कमी नही है जिनमे उपयु क्त दोनों बातो का अभाव न हो ऐसे ग्रथो के रचयिताम्रो के नामो, स्थानो व रचनाकालो को लेकर अनक विवाद उठ खडे हुये हैं और इतनी चर्चाएँ, इतने अनुशीलन के पश्चात् भी वे आज तक अनिर्णित ही रहे हैं पृथ्वीराज रासो को ही लीजिय उसके रचनाकाल के सबध म उतना ऊहापोह हो जाने के पश्चात् भी सारे विद्वान किसी एक निष्कर्ष पर पहुँच नही पाये हैं मीरा के जन्मकाल व तुलसी के जन्मस्थल को लेकर भी जो साहित्यिक वाद-विवाद होते रहे है, उनसे सभी परिचित हैं

जब से इटालियन विद्वान स्व० डॉ० तस्सीतोरी ने सन् १६१६ मे प्रथम बार 'राठोड प्रिथीराज री कही वेलि क्रिसन रुक्मणी री' को सपादित कर भक्ति और शृ गार के इस श्रेष्ठ डिंगल ग्रथ को साहित्यिक जगत मे रखा तब से आज तक वेलि के छ और सुसपादित सस्करण निकल चुके हैं, पर सारे ही विद्वान लेखक इसके रचना काल पर एक मत नही हो सके हैं वेलि के इन आधुनिक सम्पादित सस्करणो के पूर्व भी वेलि विद्वानो व जनता मे इतनी लोकप्रिय थी कि न केवल राजस्थानी भाषा की बोलियो (ढूढाडी व मारवाडी) मे ही इसकी टीकाएँ लिखी गई थी बल्कि सस्कृत मे भी दो बहुत ही विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखी गईं थी। गोपाल लाहोरी नामक एक कवि ने वेलि का एक सुदर पद्यानुवाद ब्रजभाषा मे भी किया है और ढूढाडी टीका तो पृथ्वीराज के जीवन काल मे ही लिखी गई थी

ऐसे प्रसिद्ध ग्रथ क रचनाकाल का निणय एक स्वर से अभी नही हो पाया है परन्तु नई शाध के आधार पर एक निणयात्मक स्थिति पर पहुँचने का एक प्रयत्न यहा किया जा रहा है

(१) डा० तस्सितोरी ने वेलि के साहित्यिक मूल्य को समझ कर अनेक हस्त लिखित प्रतिया के आधार पर सवप्रथम एक सुदर सस्करण सन् १९१९ में एशियाटिक सोसायटी ऑफ बगाल' से प्रकाशित करवाया था इस प्रकाशन का सारा व्यय भार बीकानेर नरेश स्व० महाराजा श्री गगासिहजी ने उठाया था जिन आठ प्रतिया के आधार पर डॉ० तस्सितोरी न इस अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रथ का सम्पादन किया था—वे इस निष्कष पर पहुँचे कि वेलि का रचनाकाल वि० स० १६३७ ही है उन्होने अपने इट्रोडक्शन के पृ० XII पर लिखा है — In editing the 'Veli Krisna Rukamani ri', I have been able to avail myself of an adventage which very rarely, if ever, falls in sort to editors of Rajasthani Bardic Poetry the existence of old commentries The Principal of these are three and they were all written within fifty years from the composition of the Veli (Samvat 1637)' उनके इस वष को रचना काल मानन का आधार निम्न छद है—

7 3 6 1
वरसि अचल गुण अग ससी सवति
तवियो जस करि श्री भरतार ।।

(२) ठा रामसिह व श्री सूयकरण पारीक द्वारा वेलि का दूसरा सपादित सस्करण हिन्दुस्तानी अकेडेमी की ओर से सन् १९३१ मे प्रकाशित हुआ विद्वान सम्पादको न वलि के रचना काल पर अपनी भूमिका म पृ० ४६ पर लिखा है — यह पुस्तक स० १६३७ मे लिखी गई थी, जसा कि उक्त पुस्तक के अतिम दोहे म प्रकट किया गया है' दाहा वही है जिसकी ओर डॉ० तस्सितोरी ने निर्देश किया है यहाँ यह भी ध्यान म रखन योग्य बात है कि सम्पादक द्वय न डॉ० तस्सितोरी की आठ प्रतियो के अतिरिक्त चार अन्य प्रतिया का अवलोकन कर अपने इस मत को स्थिर किया है

(३) इसके ठीक बाईस वष पश्चात् अर्थात् सन् १९५३ मे दो और सपादित सस्करण प्रकाशित हुए एक प्रो० नरोत्तमदास स्वामी का है जो श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी आगरा से प्रकाशित हुआ तथा दूसरा प्रो० आनदप्रकाश दीक्षित का जो विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर से हुआ अपने पूव सपादको तथा अन्य एक दो विद्वानों के विभिन्न मतो का अति सक्षिप्त वर्णन कर प्रो० स्वामी ने अपनी भूमिका पृ० ७८ पर लिखा है — हमारी समझ म रचना सवत-सूचक पद्यो म से कोई भी

पृथ्वीराज की रचना नही हैं वेलि से सम्बन्ध रखने वाले अन्यान्य कई एक प्रशसात्मक पद्यो की भाँति, जो वेलि की रचना के बाद बन गये थे और जिनको टीकाकारो अथवा लिपिकारो ने पीछे से जोड दिया, ये पद्य भी पीछे की रचना हैं'

(४) प्रो० आनदप्रकाश दीक्षित ने अपने सम्पादित ग्रथ की भूमिका मे वेलि की रचना तिथि स० १६४४ माना है उनके इस सवत् को मानने के नीचे लिखे कारण हैं—

(क) डिंगल ग्रथो मे रचना सवत् सूचक पद्य स्पष्ट लिखे जाते हैं कूट भाषा मे लिखने की परम्परा नही थी

(ख) भक्तमाल, जो सवत् १६४२ से १६८० के बीच लिखा गया है—उसमे वेलि का उल्लेख है

(ग) डॉ० मोतीलाल मेनारिया का मत

अतएव प्रो० दीक्षित के शब्दो मे ही—'वेलि की रचना को सवत् १६४२ से पूर्व ही मानने की कोई आवश्यकता विशेष प्रतीत नही होती'

(५) डॉ० रामकुमार वर्मा वेलि का रचना काल वि० स० १६३७ मानते हैं डॉ० तैस्सितोरी ठा रामसिंह, प० सूर्यकरण पारीक की मान्यताएँ, डॉ० वर्मा की मान्यता का आधार है

(६) डॉ० मोतीलाल मेनारिया को जो तीन प्रतियां उदयपुर के सरस्वती भडार से प्राप्त हुई हैं उन तीनो मे रचनाकाल सवत् १६४४ ही दिया गया है, जो नीचे लिखे छद मे स्पष्ट है—

सोलह स सवत् चमाळै वरस, सोम तीज वसाख समधि।
रुक्मणी कृष्ण रहस्य रमण रस कथी वेलि पृथ्वीराज कमधि॥

(७) सन् १९५४ मे साहित्य निकेतन, श्रद्धानद पार्क कानपुर से श्री कृष्णशकर शुक्ल द्वारा वेलि के एक अन्य सम्पादित सस्करण मे वेलि के रचना-काल पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है

(८) सन् १९५५ मे वेलि का एक और सस्करण प्रकाशित हुआ पर इस बार यह कवि के जन्मप्रान्त राजस्थान अथवा उत्तर प्रदेश से न होकर बम्बई स्थित श्री फार्बस गुजराती सभा के द्वारा गुजराती विद्वान श्री नटवरलाल इच्छाराम देसाई के द्वारा सपादित हुआ इसकी टीका पश्चिमी राजस्थानी (मारवाडी अर्थात् जूनी गुजराती) और समभूती (अर्थ) गुजराती मे है यह प्रति उन्हें सन् १९२० मे सूरत में प्राप्त हुई थी तथा जिसे स० १७७४ मे तारापुर (गुजरात) नामक स्थान पर किसी अनाम लिपिकार ने लिपिबद्ध किया है

इस सटीक हस्तलिखित प्रति की पहली विशेषता यह है कि इसमे कुल मिला कर ३०७ छन्द हैं तथा वेलि की प्रशसा मे कहा गया कवित्त प्रसग है इसकी दूसरी विशेषता यह है कि अतिम दोनो छद रचना सवत् सूचक छद है, जो निम्नांकित हैं–

८ ३ ६ १
(१) वसु सिव-नयण रस शशि वछरि
विजय दशमी रवि दिन वरणीत।
किसन रुक्मणी बेलि कल्पतरु
की कमधज कलियाण उत ॥३०६॥

(२) सोभसैं सुक्ल चमाळ वरसे
सोम तीज वशाख सुध ।
रुपमणि करो रहसि रस रमति
कही वलि पृथुदास कमध॥

प्रथम छन्द के अनुसार वेलि का रचना काल सवत् १६३८ है जबकि दूसरे के अनुसार सवत् १६४४ है। (दूसरे छद की प्रथम पक्ति का प्रथम शब्द सोभस' न होकर 'सोलेसै' होना चाहिए) यह लिपिकार की भूल हो सकती है क्योकि प्रथम तो शब्द की सगति नही बैठती और दूसरा डॉ० मेनारिया की तीनो प्रतियो म यह दूसरा छद ही रचना-सवत-सूचक शब्द है जिसम 'सोलसै' है

यहाँ यह तो मानना ही पडेगा कि डॉ० तस्सितोरी तथा अन्य विद्वानो को विभिन्न प्रतियो म १६३७ का जो रचना सवत सूचक छद मिलता है उससे उपयु क्त प्रथम छद मे वष, तिथि, वार नक्षत्र और कवि के नाम आदि का उल्लेख अधिक स्पष्ट है फिर भी यह प्रश्न तो निरुत्तर ही रहता है कि सवत सूचक यह दूसरा छद क्यो ? इसके उत्तर म श्री नटवरलाल इ देसाई की यह मान्यता है कि रचना तो सवत १६३८ मे ही पूर्ण हो गई थी, पर अपने सशय इत्यादि का काव्य कसौटी पर कसवा कर दूर करने मे वेलिकार को सात वष और लग गये और इस प्रकार वास्तव म यह रचना जनता और विद्वानो के सामन प्रथम बार सवत् १६४४ मे आई यहाँ कसौटी से सबधित प्रसिद्ध दत कथा 'वलि की परीक्षा' ध्यान मे रखने योग्य है माधव, केशव माला और दुरसा आढा न इसकी भूरि-भूरि प्रशसा की है दुरसा आढा ने तो उस पाचवाँ वेद और उन्नीसवा पुराण ही निम्न छद म घोषित कर दिया है—

रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण,
वेलि तास कुण करे बखाण।
पाचमो वद भाखियो पीथळ,
पुणिया उगणीसमो पुराण ॥

(९) श्री अगरचद नाहटा से हुई मौखिक साहित्यिक चर्चा म उन्होने यह बताया कि उनके मत मे वि० स० १६३८ ही वेलि का रचना काल है।

(१०) इसके अतिरिक्त अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति सख्या ७४०५ (वेलि क्रिसन रुक्मणी री) म छद सख्या ३०३ है और प्रशस्ति के दो छद अलग से दिये गये है लिपिकार रगविमल ने इस नवहर (नोहर, बीकानेर राज्य) मे वि० स० १७४१ मे लिपिबद्ध किया था रचनाकाल सबधी इसमे जो छद दिया गया है, वह इस प्रकार है—

सोलसे सवत छत्रीसा वरषे सोम ग्रीज वेशाप समधि ।
रुकमणी कृसन रहस रग रमता कही वेलि पृथ्वीराज कमधि ॥

उपयुक्त छद से वेलि का रचना काल सवत् १६३६ माना जाना चाहिये, इस छद और श्री नटवरलाल देसाई वाली प्रति मे वष को छोड कर तिथि दिवस आदि का साम्य है इस प्रति मे उपयुक्त छद के ठीक बाद रचनाकाल सबधी एक दूसरा छद वसु शिवनयन रस शशि वछरि वाला दकर रचना काल संवत १६३८ भी मान लिया गया है

(११) महिमाभक्ति जैन भडार (बडा उपाश्रय) बीकानेर की दो और हस्तलिखित प्रतियाँ क्रमानुसार ग्रथ सख्या ४०० व ४६० श्री अभय जन ग्रथालय म देखने को मिली हैं ग्रथ सख्या ४०० वाली प्रति वि०स० १७१८ म प० कुशलसागर ने वेनातट मे लिपिबद्ध किया है इसमे रचनाकाल सबधी सवत् १६३७ व सवत् १६३८ वाले दोनो छदो के देने के बाद लिपिकार ने टीका मे यह बतलाया है कि 'किहाई कई परते दुहला उचारणउ कीधउ सवतरउ पाठातर नउ छई' अर्थात् कई प्रतियो मे सवत सबधी दोनो दुहाले मिलते हैं जो पाठातर है

इसी प्रकार ग्रथ सख्या ४६०, जो सवत् १६८६ मे लिपिबद्ध हुआ है (जो उपयुक्त प्रति से ३२ वष पूव की है) प्रशस्ति मे १६३७ व १६३८ वाले दोनो छदो को लिख कर टीका मे लिखा है कि 'कीए एके परते ए पणि सवतरउ दुवालउ पाठातर छई' अर्थात् किसी एक प्रति म रचना सवत सूचक १६३८ वाला छद पाठांतर है।

(१२) पू प बदरीप्रसाद साकरिया, सपादक 'राजस्थान भारती' व 'डिंगल कोष' का मत है कि सभी रचना-सवत् सूचक छद प्रक्षिप्त हैं

(१३) श्री अभय जन ग्रथालय मे वेलि की अब तक प्राप्त प्रतियों म एक प्राचीनतम प्रति मिली है जो वि० स० १६६६ मे लिपिबद्ध है इसम ३०१ छद हैं और रचना-सवत सूचक कोई छद नही है इस ग्रथ की प्रशस्ति इस प्रकार है—
इति श्री कृष्णदेव रुषमण वेलि सपूर्ण समाप्ता ॥ राठोड श्री कित्याणमल सुत

प्रथिराज तत्त ।। बधव सुरताणजी गागरोणगढ मध्ये ।। स० १६६६ वर्षे माह सुदी ४ दिने लिपत रामा ।। फूलखडा मध्य ।। शुभ भवतु ।। क्ल्याण ।। शोध की दृष्टि से यह प्रति अत्यन्त महत्व की है इस गुटकाकार प्रति के पूव पत्र में अकित निम्न छद के रचयिता के सबध मे विद्वानो और सम्पादको मे जो भ्रम है वह दूर हो जाता है इस प्रति म निम्नाकित छद के अत मे लिखा हुआ है कि —'इति कलस ज्यादव कृत ।। भोजग जादव कृत ।। अतएव यह स्पष्ट है कि यह छद भोजग जादव ने वेलि की प्रशसा म लिखा है छद इस प्रकार है—

वेद बीज जळ विमळ, सुकवि जड रोपी सद्धर ।
पत्र दूहा गुण पुहुप, वास लोभी लपमीवर ।।
पसरी दीप प्रदीप, अधिक गहरी आडम्बर ।
मन सुधि जे जाणति अव फळ पामइ अबर ।।

विस्तार कीध जुगि जुगि विमळ, धणी किसन कहणहार धन ।
अमिम वेलि पीथळ अचळ तेंइ रोपी कलियाण तन ।।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वेलि के रचना काल पर सभी विद्वान एक मत नही है तथा सभी ने प्रमाणो सहित अपने अपने मत के मडन का प्रयत्न किया है

(१) स्व० डॉ० एल पी तस्सितोरी का सवत् १६३७ को वेलि का रचना काल मानने का मूल कारण ऐसा ही हो सकता है कि उनको प्राप्त सभी प्रतियो में रचना सबधी यही सवत् मिला हो यही कारण है कि इस छद को ही रचना सवत् मानने मे उन्हें किसी भी प्रकार की शका व सदेह नहीं रहा पर उनके बाद के शोध कार्यों से यह साफ है कि किसी एक सवत् को प्रमाणित मानने म काफी विवादास्पद बातें हैं

(२) प्रो० नरोतमदास स्वामी ने रचना सवत सूचक सभी छन्दो को प्रक्षिप्त माना है यह ठीक है कि आज तक प्राप्त सवत् १६३६, १६३७, १६३८ और १६४४ म स किसे रचना काल माना जाय ? सबको प्रक्षिप्त कहकर टाल देने से भी यह प्रश्न तो हमारे सामने रहता ही है कि यदि इन चारों सवतो मे स कोई भी रचना काल नही है तो सही रचना काल कौनसा है ? और यदि हमे वह आज उपलब्ध नही है तो इस दिशा में और भी अधिक अनुशीलन की आवश्यकता तो है ही

(३) प्रो० आनदप्रकाश दीक्षित के मतानुसार डिंगल मे रचना-सवत कूट भाषा में लिखने की परम्परा नही है अतएव वेलि की विविध प्रतियो म प्राप्त सवत् १६३७ व १६३८ वाले सभी छन्द प्रक्षिप्त हैं ऐसा मानने का कोई कारण नहीं होता, क्योंकि प्रथम तो यह कोई आवश्यक नहीं कि किसी परिपाटी का

भा न हो और द्वितीय कई बार विद्वान अपनी विद्वता का प्रदर्शन करने के लिये भी कूट छदा का सहारा लेते हैं और इस प्रकार घुमा-फिरा कर कहने मे साहित्यकार की प्रतिभा की विलक्षणता दिखलाई देती है इसीलिये सम्भव है कि वेलिकार ने कूटभाषा का प्रयोग किया हो प्रो० दीक्षित का अनुमान भर है कि यह रचना सवत् १६४२ के बाद की है क्या केवल भक्तमाल मे वेलि का उल्लेख होने के कारण हम उसे वि० स० १६४४ का मान लें जबकि स्वय भक्तमाल का रचना काल भी अनिर्णीत है [1] इसके विपरीत स्वय वेलिकार के जीवन काल मे ही वेलि की दो अनेक टीकाएँ लिखी जा चुकी थी, इसलिये वेलिकार तो पहले से ही ख्याति प्राप्त थे और यह स्वाभाविक ही है कि परवर्ती कवि अपनी-अपनी कृतियो मे प्रसगानुसार वेलि का उल्लेख करते

(४) डॉ मोतीलाल मेनारिया को ग्रन्थ का रचनाकाल सवत् १६४४ ही मान्य है, पर अन्यत्र प्राप्त सवत् १६३७ व १६३८ के दोहलो से उनके मस्तिष्क मे भी एक भ्रम उत्पन्न हो गया प्रतीत होता है और उन्होंने मध्यम मार्ग अपना कर अपने निर्णय मे—'१६३७ को रचना का आरम्भ काल तथा सवत् १६४४ को समाप्ति काल मानना चाहिये' लिखा है

(५) श्रीकृष्णशकर शुक्ल शायद इस विवादास्पद पचडे म नहीं पडना चाहते हैं और कदाचित इसीलिये ही उन्होंने अपनी भूमिका मे तद् विषयक कोई विचार प्रकट नही किये हैं

(६) श्री नटवरलाल इच्छाराम देसाई ने सवत् १६३८ को ही वेलि का निर्माण काल माना है, पर साथ ही साथ यह भी स्वीकार किया है कि विद्वानो से वेलि की साहित्यिक श्रेष्ठता आदि को प्रमाणित करवाने मे कवि को छ सात वर्ष और लग गये अतएव जनता के सम्मुख वेलि प्रथम बार वि० स० १६४४ मे ही आई वेलि की कसौटी आदि की कथाएँ दत कथाएँ भर है, अतएव इनकी प्रामाणिकता पर सहज विश्वास कर लेना कठिन है ये कथाएँ ठीक उसी प्रकार इतिहास सम्मत नही हैं, जिस प्रकार कि इन्ही महाराज पृथ्वीराज का महाराणा प्रताप को पत्र लिखना कई लेखक तो इन्हें अकबर का दरबारी मानते ही नही है, नौरत्नों मे से एक होने की बात दूर रही [2] व तो एक साधारण व्यक्ति के रूप मे रहे हैं, अतएव उनको अपने काव्य को कसौटी पर कसवाने की बात सर्वथा सगत प्रतीत नहीं होती

---

[1] भक्तमाल का रचनाकाल सवत् १६४२ से १६८० के बीच का माना जाता है

[2] डॉ० गोपीनाथ शर्मा एम ए, पी एच डी कृत Mewar & Mughal Empe
डॉ० एम आर. शर्मा कृत महाराणा प्रताप

(७) श्री अगरचद नाहटा किन आधारो पर सवत् १६३८ को वलि का रचना काल मानते हैं, इसका इन पक्तियो के लेखक को परिचय नहीं हो सका है फिर भी श्री नाहटा यह कह रहे थे कि उनकी इस मान्यता के लिये उनके पास पुष्ट प्रमाण हैं नाहटाजी यदि इस पर प्रकाश डालेंगे तो साहित्यिक जगत को लाभ होगा परन्तु उन्हीं के ग्रन्थालय म प्राप्त अलम्य प्रति उनके इस निणय मे सहायक बनती हो, ऐसा प्रतीत नही होता

(८) मेरी अपनी दृष्टि से वास्तव मे रचना-सवत सूचक जितने भी छद उपलब्ध हैं, वे सब प्रक्षिप्त ही हैं और इस प्रकार प्रो नरोत्तमदास स्वामी और पू प बदरीप्रसाद साकरिया से लेखक का मतैक्य है स्वामीजी व मुझ मे अतर केवल इतना ही है कि आज से कई वष पूव प्रमाणा के अभाव मे स्वामीजी ने यह निर्णय कर लिया था कि वेलि के अत मे आये हुये रचना-सवत् सूचक विभिन्न छद बाद के जोडे हुए प्रक्षिप्त अश हैं, जबकि हमे तो आज एक ऐसी सम्पूर्ण प्रति भी उपलब्ध है, जो प्राप्त प्रतियो मे सबसे प्राचीन है इसमे रचना सवत-सूचक कोई भी छद नही है तथा प्रशस्ति के कलस छद के बारे म विद्वानो के जो भ्रम थे, उसका भी निराकरण हो गया है

यह प्रति ढूढाडी टीका से भी (जिसका लिपि काल वि० स० १६७३) चार वष पुरानी है अर्थात् वि० स० १६६६ की है जब ढूढाडी टीका को विद्वान वेलिकार के जीवन काल मे ही लिखी मानते हैं तब तो रामा लिखित यह प्रति निश्चित ही वेलिकार के जीवनकाल की है और इसीलिये जब उनके जीवनकाल मे ही लिपिकार रचना-सवत सूचक छद अथवा निर्माण काल नही दे सका तो परवर्ती लिपिकारो के दिये गये रचना सबधी सवत असदिग्ध रूप से भ्रामक व गलत हैं

स्वाभाविक ही यहा एक प्रश्न उठ खडा होता है कि सवत १६३६, १६३७, १६३८ और १६४४ सभी प्रक्षिप्त हैं तो इनकी कल्पना क्यो की गई ? मेरे अपने विनम्र मत मे या तो य सवत लेखक के जीवन सम्बधी महत्वपूर्ण घटनाओ से सम्बधित है या वेलिकार ने विशेष प्रसगो पर स्वय वेलि का पाठ विद्वानो या भक्तजनो के समक्ष विशिष्ट स्थानो पर किया हो, जिनके आधार पर विविध लिपिकारो ने भिन्न भिन्न सवतो को उसका रचना काल मान लिया हो

फिर भी अनिश्चितता के कोहरे को तिरोहित करने के लिये इस ओर अधिक शोध काय की आवश्यकता है विश्वास है आज नही तो कल कोई न कोई अनुसधाता इस विषय की पूरी छान बीन कर सही तिथि का पता लगायेगा

वेलि का कथानक

कृष्ण रुक्मणी सम्बन्धी मूल धार्मिक कथा का अवलोकन हमे सवप्रथम श्रीमद्भागवत् के दशमस्कध के उत्तरार्ध मे ५२ से ५५ तक के अध्यायो मे होता है इसी कथा का उल्लेख आगे चल कर हमें विष्णु पुराण व हरिवश पुराण मे कुछ परिवर्तित रूपो मे क्रमानुसार ५२वें अध्याय के २६वें खड और ५६ व ६०वें अध्याया म मिलता है मूलत भागवत व पुराणो के इसी कथा का आधार लेकर परवर्ती कवियो ने अनेकानेक ग्रन्थ—रुकमणी मगल, रुकमणी हरण, रुकमणी परिणय, कृष्ण रुकमणी व्याहलो, कृष्ण-रुकमणी-वेलि और रुकमणी-स्वयबर आदि नाम देकर अपने अपने काव्य ग्रन्थो का निर्माण कर भगवान के चरणो मे अपने श्रद्धा सुमन चढाये हैं रुकमणी सबधी ये ग्रन्थ हमको राजस्थानी हिंदी, मराठी व गुजराती मे उपलब्ध हैं मराठी मे अपेक्षाकृत अधिक ग्रन्थ उपलब्ध हैं[1] जबकि राजस्थान व गुजरात म श्रेष्ठ वर प्राप्त करने के लिये कुमारिकायें गौरी-पूजन करती है तथा व्रतादि रखती हैं, महाराष्ट्र मे इमी इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के लिए एकनाथ रचित 'रुकमणी स्वयम्बर' का नित्य प्रति पाठ व पूजन आदि किया जाता है वैसे महाराष्ट्र व राजस्थान मे यह भक्ति ग्रन्थ घर घर मे प्रतिष्ठित है और इस प्रकार इसने जन काव्य का रूप ग्रहण कर लिया है

'वेलि क्रिसन रुकमणी री राठोड राज प्रिथीराज री कही' का आधार भी भागवत ही है स्वय कवि ने 'वेलि' के छद २६१, प्रथम पक्ति मे भागवत को अपनी वेलि का बीज रूप मानते हुये स्पष्ट लिखा है कि—

वल्ली तसु बीज भागवत वायो
महि थाणो प्रिथिराज मुख।

पर भागवत के इस बीज द्वारा प्रस्फुटित 'वेलि' ने कालभेद व परिस्थिति भेद से एक नया रूप ही ग्रहण कर लिया है श्रीमद्भागवत व वेलि मे कथा साम्य,

---

1 (अ) डॉ० आनदप्रकाश दीक्षित सपादित वेलि की भूमिका पृ० १६१
(ब) लेखक का निजी सग्रह

विष्णु पुराण व हरिवंश पुराण मे भी है, पर इन सब मे शृ गारिकता का सर्वथा अभाव कहू तो कोई अतिशयोक्ति न होगी

भागवत

भागवत मे वर्णित कथा का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है —भीष्मक राजा के पाच पुत्र और एक पुत्री रुकमणी थी एक ओर कृष्णगुणगान श्रवण कर रुकमणी ने मन ही मन भगवान कृष्ण को पति के रूप मे वरण कर लिया था तो दूसरी ओर कृष्ण भी रुक्मणी के गुणा पर रीझ गये थे युवराज रुक्मी, रुक्मिणी का सम्बन्ध शिशुपाल से करना चाहते थ रुक्मिणी ने एक ब्राह्मण के साथ द्वारिका मे श्रीकृष्ण के पास अपना सदेश भेजा ब्राह्मण के भोजनादि से निवृत्त होने पर श्रीकृष्ण ने उसके आगमन का कारण पूछा ब्राह्मण ने मौखिक सदेश मे यह कहा कि आज से तीसरे दिन रुक्मिणी का विवाह तय हो गया है अम्बिका पूजन के समय राक्षस विधि से हरण करने का रुक्मिणी का प्रस्ताव भी उसने कह सुनाया श्रीकृष्ण बडे व्याकुल हुये ब्राह्मण को रथ मे साथ लेकर श्रीकृष्ण एक ही रात्रि मे कुण्डिनपुर जा पहुँचे उधर निमत्रण मिलने पर शिशुपाल भी बारात लेकर वहाँ आ पहुँचा नगर का खूब सजाया गया था और शिशुपाल के आगमन पर स्वय राजा भीष्मक उसकी अगवानी के लिय गया शिशुपाल को श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण की कुछ गध लग गई थी इसलिये उसने अपन साथ जरासध को भी ले लिया था भगवान कृष्ण को अकेला जानकर बलराम ससैन्य कृष्ण की सहायतार्थ आ पहुँचे उधर रुक्मिणी देर हो जाने से बडी व्याकुल हुई इतने म शुभ शकुन के साथ ही उसे प्रसन्न वदन सदेशवाहक ब्राह्मण दिखलाई पडा श्रीकृष्ण को आया जानकर रुक्मिणी बडी आनदित होकर सखियो, सनिको राजकमचारियो वादको तथा वदीगणा के साथ अम्बिका पजन के लिये भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए चली उधर भीष्मक और अन्य पुरवासियो ने बलराम का भी यथोचित सम्मान किया रुक्मिणी ने अनेक विधि से देवी की पूजा की उस समय साक्षात जगद्धात्री रुक्मिणी के सुदर स्वरूप को देख कर सनिक मूर्छित हो गये इसी समय श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण कर लिया सनिकों की मूर्छा जब भग हुई तो उन्होन श्रीकृष्ण को घेर लिया रुक्मिणी को इससे बहुत चिंता हुई, पर श्रीकृष्ण के हाथा पराजित होकर सभी सनिक नगर की ओर पलायन कर गये इस पर रुक्मी ने श्रीकृष्ण को हराने की प्रतिज्ञा कर उन पर आक्रमण किया पर वह भी हार गया और ज्योंहि श्रीकृष्ण रुक्मी का वध करने लगे रुक्मिणी न उनके पर पकड लिय इस पर श्रीकृष्ण ने उसे जीवनदान तो दिया, पर उसके सिर के केश काट लिये इस मुडन काय के लिये बलराम ने श्रीकृष्ण की निंदा की रुक्मी इस पराजय और अपमान के कारण कुण्डिनपुर नहीं गया उसने भोजकट नाम का नगर बसाया द्वारिका जाकर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी से विधिवत विवाह किया जनता आनन्दमग्न हो उठी

होते हुये भी वेलि के रचनाकार ने अपनी प्रतिभा तथा कवित्व शक्ति के आधार पर प्रसगोपयुक्त कई मौलिक घटनाओ, वर्णनो आदि का सृजन कर इस अत्यत प्राचीन कथा को एक अभिनव रूप दे दिया है वेलि को एक स्वतत्र काव्य बनाने मे तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियो व राजनैतिक वातावरण का बडा हाथ रहा है वैसे तो वेलि के रचना काल मे विद्वान मतक्य नही है, फिर भी यह तो सभी मानते हैं कि वेलि का रचना काल सवत् १६३६ से १६४४ (नौ वर्ष) के बीच मे हुआ है भक्ति काल इस समय अपने चरमोत्कर्ष शिखर पर पहुँच कर समाप्ति की ओर अग्रसर था तथा रीतिकाल का बीजारोपण हो चुका था भक्ति और रीति के इस सधिकाल मे वेलि का निर्माण हुआ अतएव अपने पूर्ववर्ती भक्त तथा सत कवियो का प्रत्यक्ष प्रभाव तो पडा ही, साथ ही उस समय तक रचे गये कई शृ गार ग्रथों से रीति की जो एक निश्चित परिपाटी निर्मित हो गई थी, उससे वेलिकार का अपने आपको मुक्त रखना सभव नही था वेलि पर एक और प्रभाव जो पृथ्वीराज को तथाकथित शृ गारिकता की ओर बहा ले गया, उनका ऐश्वर्यशाली और विलासी मुगल दरबार मे पूरे राजसी ठाट बाट से रहना, वहा होने रहने वाले ऐसे समारोहो मे अनिवार्य रूप से निरतर भाग लेना और उनका स्वय का राजघराने म उत्पन्न होना था इसके विपरीत किंवदती प्रसिद्ध है कि पृथ्वीराज के ही समकालीन भक्त श्रेष्ठ सत परमानददासजी को जब अकबर के दरबार मे आमत्रित किया गया तो उन्होने सतन का सीकरी सा कया काम, आवत जावत पनहिया घिसावत हो कह कर उस निमत्रण को ठुकरा दिया अतएव स्पष्ट ही है कि शृ गारिकता का वह मुलम्मा जो पृथ्वीराज के नख शिख पर चढ सका तुलसीदास, सूरदास आदि अगणित भक्त व सत कवियो को छू भी न सका वेलिकार के स्वय वेलि को आठवें छद में एक शृ गारिक काव्य ग्रथ माना है [१] इतना होते हुए भी वेलि एक शुद्ध शृ गार ग्रथ न होकर भक्ति से आप्लावित मर्यादा काव्य है।

सच तो यह है कि वेलिकार ने भक्ति और रीति दोनो परम्पराओ का बडी दक्षता और सुदरता से निर्वाह कर उसे गीतगोविंद की भाति एक मिश्रित ग्रथ बनाने का प्रयत्न किया है,[२] पर मूलत है तो वह एक *भक्ति ग थ ही*

उपयु क्त सभी कारणो से भागवत की कथा और वेलि की कथा मे बीसियो स्थलो पर स्पष्ट अतर पड गया है वसे कथा मे वर्णित घटनाभेद तो भागवत,

---

१ श्रीवरणण पहिलो कीजै तिणि
   गूथियै जाणि सिणार ग्रन्थ

२ जयदेव कृत गीत गोविंद भी शृ गार का अन्यतम ग्रथ है पर स्थान स्थान पर भगवान के नामों को प्रयुक्त कर उसमें भक्ति का पुट दिया गया है

विष्णु पुराण व हरिवंश पुराण मे भी है, पर इन सब मे शृ गारिकता का सर्वथा अभाव कहे तो कोई अतिशयोक्ति न होगी

भागवत

भागवत मे वर्णित कथा का सक्षिप्त रूप इस प्रकार है —भीष्मक राजा के पाच पुत्र और एक पुत्री रुकमणी थी एक ओर कृष्णगुणगान श्रवण कर रुकमणी ने मन ही मन भगवान कृष्ण को पति के रूप मे वरण कर लिया था तो दूसरी ओर कृष्ण भी रुक्मणी के गुणो पर रीझ गये थे युवराज रुक्मी, रुक्मिणी का सम्बन्ध शिशुपाल से करना चाहते थे रुक्मिणी ने एक ब्राह्मण के साथ द्वारिका मे श्रीकृष्ण के पास अपना सदेश भेजा ब्राह्मण के भोजनादि से निवृत्त होने पर श्रीकृष्ण ने उसके आगमन का कारण पूछा ब्राह्मण ने मौखिक सदेश मे यह कहा कि आज से तीसरे दिन रुक्मिणी का विवाह तय हो गया है अम्बिका पूजन के समय राक्षस विधि से हरण करने का रुक्मिणी का प्रस्ताव भी उसने कह सुनाया श्रीकृष्ण बडे व्याकुल हुये ब्राह्मण को रथ मे साथ लेकर श्रीकृष्ण एक ही रात्रि मे कुण्डिनपुर जा पहुँचे उधर निमत्रण मिलने पर शिशुपाल भी बारात लेकर वहाँ आ पहुँचा नगर को खूब सजाया गया था और शिशुपाल के आगमन पर स्वय राजा भीष्मक उसकी अगवानी के लिये गया शिशुपाल को श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण की कुछ गध लग गई थी इसलिये उसने अपने साथ जरासध को भी ले लिया था भगवान कृष्ण को अकेला जानकर बलराम ससैन्य कृष्ण की सहायतार्थ आ पहुँचे उधर रुक्मिणी देर हो जाने से बडी व्याकुल हुई इतने मे शुभ शकुन के साथ ही उसे प्रसन्न वदन सदेशवाहक ब्राह्मण दिखाई पडा श्रीकृष्ण को आया जानकर रुक्मिणी बडी आनदित होकर सखियो, सैनिको राजकर्मचारियो वादको तथा वदीगणो के साथ अम्बिका पूजन के लिये भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए चली उधर भीष्मक और अन्य पुरवासियो ने बलराम का भी यथोचित सम्मान किया रुक्मिणी ने अनेक विधि से देवी की पूजा की उस समय साक्षात जगद्धात्री रुक्मिणी के सुन्दर स्वरूप को देख कर सैनिक मूछित हो गये इसी समय श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण कर लिया सैनिको की मूर्छा जब भग हुई तो उन्होने श्रीकृष्ण को घेर लिया रुक्मिणी को इससे बहुत चिंता हुई, पर श्रीकृष्ण के हाथो पराजित होकर सभी सैनिक नगर की ओर पलायन कर गये इस पर रुक्मी ने श्रीकृष्ण को हराने की प्रतिज्ञा कर उन पर आक्रमण किया पर वह भी हार गया और ज्योहि श्रीकृष्ण रुक्मी का वध करने लगे रुक्मिणी न उनके पैर पकड लिये इस पर श्रीकृष्ण ने उसे जीवनदान तो दिया, पर उसके सिर के केश काट लिये इस मुडन कार्य के लिये बलराम ने श्रीकृष्ण की निंदा की रुक्मी इस पराजय और अपमान के कारण कुण्डिनपुर नहीं गया उसने भोजकट नाम का नगर बसाया द्वारिका जाकर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी से विधिवत विवाह किया जनता आनन्दमग्न हो उठी

विष्णु पुराण

विष्णु पुराण मे यह कथा अपेक्षाकृत बहुत सक्षिप्त है व इसमे कई घटनाओ का सवथा अभाव है कथा का रूप इस प्रकार है — जब रुक्मी को पता लगा कि श्री कृष्ण रुक्मिणी का हरण कर जा रहे है तो कुण्डिनपुर छोडने के पूव वह प्रतिज्ञा करता है कि यदि मैं कृष्ण को पराजित कर रुक्मिणी को वापस न ला सका तो यहा लौट कर न आऊँगा रुक्मी युद्ध मे परास्त हो जाता है और कृष्ण रुक्मिणी से राक्षस विवाह कर लते हैं तत्पश्चात् उनके प्रद्युम्न नामक पुत्र उत्पन्न होता है

हरिवश पुराण

इस पुराण के ५९वे और ६०वें अध्याय मे कथा का वणन इस भाति किया गया है — श्रीकृष्ण व रुक्मिणी दोनो एक दूसरे के रूप व गुणो पर मोहित होकर एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं बलराम सहित श्रीकृष्ण रुक्मिणी के रूप व शिशुपाल के साथ हो रहे उसके विवाह को देखने के लिये कुण्डिनपुर आते हैं जब रुक्मिणी इद्राणी के मन्दिर म पूजा के लिये जाती है तो उसके सौंदय पर मोहित हो बलराम से अनुमति लेकर श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण कर लेते हैं शिशुपाल के सहयोगी जरासध आदि युद्ध म हार जाते हैं रुक्मी भी युद्ध मे हारकर भगवान से अभयदान मागता है भगवान से अभयदान प्राप्त होने के पश्चात् रुक्मी भोजकट नामक नगर स्थापित करता है श्रीकृष्ण द्वारिका पहुँच कर विधिवत विवाह करते हैं

वेलि क्रिसन रुकमणी री

मगलाचरण मे परमेश्वर, सरस्वती, गुरु और श्रीकृष्ण की वदना कर कवि रीतिकालीन परिपाटी के अनुसार यह स्वीकार करता है कि यह एक शृगार ग्रथ है उसके पश्चात् कथा के प्रारम्भ मे वेलिकार रुक्मिणी के माता पिता, भाइयो आदि का वणन कर रुक्मिणी (जो कि लक्ष्मी का अवतार है) बाल्यावस्था का त्याग कर यौवनावस्था म प्रवेश करते ही एक स्वाभाविक लज्जा व सकोच ने उसके शरीर म घर कर लिया है उसका विस्तृत वणन करते हैं चौदह विद्याओ व चौसठ कलाओ म प्रवीण रुक्मिणी श्रीकृष्ण के अनुपम गुणो की प्रशसा सुन उनकी ओर आकर्षित हुई भीष्मक भी कृष्ण के साथ रुक्मिणी का विवाह करना चाहते थे, पर रुक्मी ने विरोध कर अपने पुरोहित द्वारा शिशुपाल को बरात लाने का निमत्रण दिया नगर खूब सजाया गया स्त्रियाँ मगल गीत गाने लगी एक वृद्ध ब्राह्मण पथिक के साथ रुक्मिणी ने अपना पत्र व मौखिक सदेश द्वारिका भेजा थका पथिक सध्या होते ही रास्ते म सो गया पर भगवत् कृपा से प्रात काल उठने पर वह अपने आपको द्वारिका म पाकर विस्मित होता है ब्राह्मण को आते देख श्रीकृष्ण ने सम्मुख

जाकर उसका खूब स्वागत किया और रुक्मिणी के पत्र को हाथ मे लेते ही भगवान आनद विभोर हो गये अत उन्होने ब्राह्मण को ही पत्र लौटा कर पढने की आज्ञा दी सदश सुनकर भगवान ने शीघ्र रथ को जुडवाया और कुदनपुर के लिये प्रस्थान किया इधर रुक्मिणी चिंता कर ही रही थी कि ब्राह्मण आ पहुँचा और उसन परोक्ष रूप से श्रीकृष्ण के आने की सूचना दी उधर बलराम भी श्रीकृष्ण को अकेला गया जानकर पीछे से सेना सहित कुदनपुर पहुँचे भीष्मक ने दोना का स्वागत किया दूसरी ओर रुक्मिणी पूण शृगार कर, अपनी सखिया और अगरक्षको आदि के साथ अम्बिकापूजन को जाती है रुक्मिणी के अद्वितीय सौदय का देख माया के प्रभाव से सनिक अचेत हो जाते हैं और कृष्ण रुक्मिणी का रथ पर बिठला कर चल देते हैं श्रीकृष्ण के ही पुकार मचाने पर सेना जसे नीद से जागी हो, श्रीकृष्ण का पीछा किया घनघोर युद्ध मे शिशुपाल आदि के हार जाने पर रुक्मी ने श्रीकृष्ण को ललकारा रुक्मिणा का लिहाज रख कर श्रीकृष्ण ने रुक्मी को न मार, उसके केशा को काट कर उसे विद्रूप बना दिया इस पर बलराम ने जब उनकी खूब भत्सना की तो रुक्मी के सिर पर हाथ धर कर श्रीकृष्ण न केशो को पुन उगा दिया द्वारिका पहुँचने पर अनेक उत्सव हुये और वासुदेव देवकी ने विवाह की तयारियाँ शुरू की ब्राह्मणा के कहने पर पाणिग्रहण के अतिरिक्त सभी सस्कार विधिवत पूण किये गये रति व ऋतुओ के विस्तृत विवरण के पश्चात् वेलि मे रुक्मणी के गभ से प्रद्युम्न का जन्म लेना, बारह छदो मे वेलि के महात्म्य का वणन दो पदो म वेलिकार का विनय प्रदशन और निर्माणकाल आदि के छद आते हैं

इस प्रकार हम देखत हैं कि कथा सूत्र वस्तुत एक होते हुए भी भागवत, विष्णु पुराण, हरिवश पुराण तथा वेलि की कथावस्तु म गहरा वैषम्य है डॉ तैस्सितोरी को भागवत मे केवल चार ऐसे स्थल मिले हैं जहाँ थोडा बहुत भाव साम्य मिलता है शेष सारी घटनाएँ और कल्पनाएँ वेलिकार की उवर कल्पना-शक्ति की उपज है

कथा वषम्य

(१) भागवत, विष्णु पुराण, हरिवश पुराण आदि मे वलि की भाँति मगलाचरण ग्रथ का विषय (तुलसीदासजी के समान) सत असत की वदना, और निर्माणकाल विषयक छद नही हैं यह स्वाभाविक ही है क्योंकि वेलि की भाँति एक ही विषय को लेकर लिखे जाने वाले जसे ये स्वतत्र ग्रथ नहीं हैं

(२) भागवत विष्णु पुराण, हरिवश पुराण मे रुक्मिणी के लक्ष्मी का अवतार होने जन्म बाल्यावस्था वय सधि विद्याध्यन और यौवनागमन आदि का उल्लेख नहीं है जबकि वेलि मे इनका बहुत सुदर वणन किया गया है

(३) भागवत, विष्णुपुराण हरिवंशपुराण आदि म रुक्मी का पुरोहित भेज कर शिशुपाल को बरात लेकर आने का निमंत्रण देने की घटना का उल्लेख नहीं है

(४) भागवत म शिशुपाल की बरात म शाल्व, जरासंध दंतवक्त्र विदूरथ, पौड्रक आदि के आने का वर्णन है क्योंकि उसको आशंका थी कि कहीं श्रीकृष्ण रुक्मिणी का अपहरण न करलें वेलि, विष्णु पुराण और हरिवंश पुराण मे इसका कोई उल्लेख नही है

(५) शिशुपाल की बरात के आगमन पर नगर की सजावट, रुक्मिणी के संदेशवाहक ब्राह्मण का सो जाना और प्रात काल होते ही अपने आपको द्वारिका म पाना आदि वर्णन भागवत, विष्णु पुराण और हरिवंश पुराण मे नही है

(६) रुक्मिणी का पत्र भेजना वेलिकार की नई सूझ है भागवत मे रुक्मिणी द्वारा मौखिक संदेश भेजने का वर्णन है, पर हरिवंश पुराण मे तो श्रीकृष्ण बिना किसी संदेश के रुक्मिणी के लावण्य से आकर्षित हो बलराम के साथ अपने आप आ जाते है

(७) भागवत और वेलि म रुक्मिणी अंबिकापूजन के लिये जाती है जबकि हरिवंश पुराण म अंबिका के स्थान पर इंद्राणी के मंदिर म जाने का उल्लेख है

(८) वेलि और भागवत मे रुक्मिणी हरण के लिये श्रीकृष्ण बलराम से किसी प्रकार की अनुमति नही लेते जबकि हरिवंश पुराण मे बलराम से आज्ञा लेकर व रुक्मिणी का हरण करते है

(९) युद्ध वर्णन म चारो कथाओ मे किसी प्रकार का साम्य नही है युद्ध वर्षा रूपक वेलिकार की नई सूझ है

(१०) एक बार युद्ध मे पराजित होने पर भी भागवत मे जरासंध आदि अन्य राजागण शिशुपाल को भविष्य म विजय की आशा दिलवाते हैं जबकि वेलि, विष्णु पुराण और हरिवंश पुराण म इसका उल्लेख नही है

(११) भागवत और विष्णु पुराण मे युद्ध मे जाने के पूर्व रुक्मी की प्रतिज्ञा का उल्लेख है जबकि वेलि और हरिवंश पुराण म नही है

(१२) पराजित अवस्था मे रुक्मी का लौट कर वापस न आने का वर्णन तो विष्णु पुराण मे है पर भोजकट नामक नगर बसाने का उल्लेख भागवत और हरिवंश पुराण म ही है वेलि मे इसका उल्लेख नहीं है

(१३) भागवत म रुक्मिणी के विनय करने पर श्रीकृष्ण रुक्मी को जीवित छोड देते हैं वेलि म रुक्मिणी विनय नही करती, पर श्रीकृष्ण ही रुक्मिणी के मन का रख रुक्मी को नहीं मारते हैं हरिवंश पुराण म रुक्मी स्वयं भगवान से

अभयदान मांगता है और श्रीकृष्ण उसे क्षमा कर अभय कर देते हैं विष्णु पुराण मे इस घटना का उल्लेख नही है

(१४) रुक्मी को विरूप करने पर भागवत मे तथा वेलि मे बलराम श्रीकृष्ण की भत्सना करते हैं और उपालम्भ देते हैं विष्णुपुराण व हरिवशपुराण मे इसका उल्लेख नही है भागवत मे श्रीकृष्ण की भत्सना के उपरात बलराम रुक्मिणी को सात्वना भी देते हैं

(१५) भागवत, हरिवश पुराण और वेलि मे जहा श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के द्वारिका पहुचने पर विधिवत विवाह का उल्लेख है, विष्णु पुराण मे इसे राक्षस-विवाह घोषित किया है

(१६) भागवत व हरिवश पुराण में प्रद्युम्न के उत्पन्न होने का उल्लेख नहीं है जबकि वेलि व विष्णु पुराण मे इसका उल्लेख है

(१७) विवाहोपरात श्रीकृष्ण-रुक्मिणी का प्रथम मिलन, ऋतु वणन, और वेलि का माहात्म्य आदि वेलिकार द्वारा प्रस्तुत किये गये सवथा नये प्रसग उसके अपने मस्तिष्क की सूझ है

एक ही कथा मे घटना वैषम्य के कारण उत्पन्न विविध रूपो के अवलोकन करने पर लगता है कि वेलि मे सृजित अन्य प्रासगिक घटनाओ के कारण मूल कथा मे किसी प्रकार की अस्वाभाविकता नही आई है वरन् कथानक अधिक सुघड व सुगठित हो गया है तथा काव्यात्मक सौदय निखर उठा है

वेलिकार के समकालीन भक्त पद्मा तेली ने भी रुक्मणी-हरण के विषय को लेकर 'क्रिसन रुकमणी रो विवाहलो' वि स १६१६ के आस-पास लिखा है[1] वेलि जहां राजस्थान की साहित्यिक भाषा डिंगल मे लिखी गई है, 'विवाहलो' तत्कालीन जन भाषा मे लिखा गया ग्रथ है और यही कारण है कि जन साधारण म जो सम्मान व लोकप्रियता विवाहलो' को प्राप्त हुई, वह वेलि को न हो सकी साहित्य-ससार म वेलि का स्थान निर्विवाद बहुत ऊँचा है ही

वेलि की भांति विवाहलो भी वणन प्रधान काव्य है इसमें कुल मिला कर २७० छद व पद हैं विवाहलो म युद्ध के समय जरा राक्षसी का आना, विवाहोत्सव में राजस्थान की प्रथानुसार गाये जाने वाले 'बधावा-गीत' व 'गाली गीत आदि का समावेश जनकवि भक्त पद्मा तली की अपनी सूझ है भाषा की सरलता एव

---

१ द्रष्टव्य वरदा वर्ष ३ अंक २ पृ २२ श्री अगरचद नाहटा का 'रुकमणी मंगल' शीर्षक लेख और सं १६६६ के गुटका संग्रह में प्राप्त पदमा तेली कृत 'श्रीकृष्ण रुकमणी विवाहलो' की सम्पूर्ण प्रतिलिपि

सरसता, लोक-व्यवहार-चित्रण तथा राजस्थान की सस्कृति मूलक गुण कथन और उसकी वणन शली, इन सभी बातो ने उस लोक साहित्य का सिरमौर बना दिया है

वेलि और विवाहलो म उपयु क्त बातो के अतिरिक्त कथानक मे भी कई अय स्थानो पर वैषम्य है

पद्मा भक्त की ही भांति राजस्थान के रीति रिवाजों के आधार पर कोटपूतली के कवि सहसमल ने भी सवत् १७२८ पौष शु ३ गुरुवार का एक 'रुकमणी मगळ' विविध राग रागिनियो मे (गेय काव्य) बडी सुदर रचना की है, युद्ध, विवाह, डोरडो, सिर गूथी, राई लूण उतारना, गाली, भोजन आदि का वणन वेलि और विवाहलो से भिन्न प्रकार की स्थानीय विशेषताओ वाली छोटी पर महत्वपूण कृति है

पद्मा कृत विवाहलो व सहसमल रचित 'रुक्मणी मगळ' की ही भाँति इसी विषय पर महाराज पृथ्वीराज राठौड के समकालीन नरहरि दास और नददास ने ब्रजभाषा मे 'रुक्मणी मगळ' लिखे हैं जहाँ नददास ने कथा का प्रारम्भ शिशुपाल को विवाह के प्रस्ताव भेजे जाने वाली घटना से आरम्भ किया है वहाँ नरहरिदास ने वेली के समान ही भीष्मक के कुण्डिनपुर मे राज्य करने वाली घटना से किया है नददास कृत 'रुक्मणी मगळ' व वेलि दोनो उत्कृष्ट कोटि के काव्य हैं दोनो रचयिताओ ने अपनी प्रतिभा, काव्य कौशल व भाषा सौष्टव का सुदर परिचय दिया है- 'मगळ जहाँ भक्तिभावना से ओत-प्रोत सुदर सरल भाषा में लिखा हुआ समतल मैदान मे प्रवहमान सरिता के समान है तो वलि भक्ति और शृ गार प्रधान कठिन साहित्यिक भाषा भूमि पर बहने के कारण रसिको व साहित्यकारो के हृदय को ही जीत सकती है

नरहरिदास का 'मगल अपेक्षाकृत सरल भाषा में है और काव्यगत विशेषताओ की दृष्टि से भी उपयु क्त दोना ग्रथो की तुलना मे एक उत्कृष्ट ग्रथ नहीं बन पाया है

वेलि की भाषा व कला पक्ष

निश्चय ही वेलि की भाषा श्रोजमयी डिंगल है जो समग्र राजस्थान की साहित्यिक भाषा के सिंहासन पर निर्विवाद आसीन थी कई विद्वानो ने अनजाने ही इस भाषा को कृत्रिम व कणकटु आदि बतलाकर इसके साथ घोर अन्याय किया है इन विद्वानो ने ऐसा भी मान लिया था कि यह भाषा केवल वीर रस के ही उपयुक्त है शृ गार इत्यादि अन्यान्य रसो के लिये यह सर्वथा अनुपादेय है, परन्तु शृ गार और इतर रसो की सूक्ष्म से सूक्ष्म कल्पनायें भी जब वेलि मे अभिव्यंजित हुई तथा इसके दोहले गागर से सागर बन गये तो न केवल साहित्यक रसिक मुग्ध ही हुये पर अनेको ने तो दाँतो तले उगली भी दबाई हेय दृष्टि से देखा जाने वाला उपेक्षित डिंगल नाम और डिंगल साहित्य अब अधिकाधिक सम्मान व पठनपाठन ही नही शोध का साधन बनने लगा वस्तुत यह अति समुन्नत और सक्षम भाषा है, जिसमे प्रत्येक रस का सुदर व साधिकार निर्वाह हुआ है

वेलि की भाषा का रूप मूलत प्राचोन राजस्थानी है, पर इस पर मध्य-कालीन भाषा परिवतन की प्रवृत्तियो का प्रभाव स्पष्ट है—

१) रेफ का लोप और उसके स्थान पर या तो पूव व्यजन स सयुक्त होकर अथवा अकार सहित 'र' का प्रयोग यथा—

कम का क्रम, करम धम का ध्रम, धरम स्वग का स्रग, सरग निमल का नृमल अथवा निरमळ निजन का नृजण अथवा निरजन प्रायना का परायना

२) सयुक्त 'र' का लोप यथा—

प्रसाद का प्रसाय या पसाइ ब्राह्मण का बामण या बभण

३) 'ऋ' का स्थान 'र' 'रि' 'र' द्वारा लेना यथा—

ऋषि का रिषि, रिखि कृष्ण का क्रिसन, या क्रिस्न
नऋत्य का नरति, नरति अथवा नरिति
मृदग का म्रिदग या म्रदग कृश का क्रिग ग्रस
कृपा का क्रिपा अमृत का अम्रित इत्यादि

४) मध्य व अन्त्य 'न' के स्थान पर बहुधा 'ण' का प्रयोग[1] यथा–

गृद्धनी का ग्रीधणी, ग्रीधण ग्रीभण, ग्रीभणी, ग्रीभणि
गजगामिनी का गयगमणी, गगमणी
चन्द्रानन का चन्द्राणणि ज्वलन का जलण

५) वर्ण वर्गों के दूसरे और चौथे महाप्राण वर्णों का तथा ऊष्म 'ष' का 'ह' में परिवर्तन होना यथा–

माघ का माह मेघ का मेह, मुक्ताफल का मुताहळ या मोताहळ वसुधा का वसह, सघव का सुहव, गाथा का गाहा मुग्ध का मुह, पुष्प का पुहुप, पोष का पोह

६) मूर्धन्य 'ष' और संयुक्त व्यंजन 'क्ष' का 'ख' में परिवर्तन,[2] यथा–

षट का खट, चक्षु का चख, क्षीण का खीण क्षुधा का खुधा कर्षण का करखणि, ज्योतिषी का जोतिखी, क्षणान्तर का खिणतरि नक्षत्र का नखतर

७) मूर्धन्य 'ष' का 'स' और 'क्ष' का 'छ' में परिवर्तन यथा—

भाषा का भासा, क्षुधा का छुधा

यहाँ पर राजस्थानी भाषा के मुख्य अंग, जिनमे गठित होकर वह अपने स्वतन्त्र रूप में प्रस्थापित हुई उसके क्रिया स्वरूप, सर्वनाम, विशेषण और विभक्तियाँ आदि के कुछ शब्द संग्रथ दे रहे हैं, जिनसे संगठन का एक मोटा चित्र सामने उभर आता है–

क्रिया–

माडणो = आरंभ करना ओझडणो = प्रहार करना ठरणो = ठंडा होना
आणणा = लाना दीसणो = दिखाई देना आखणो = कहना
आवणो = देना आपडणो = पीछे भाग कर पकड़ लेना
भुणणो = कहना सांभळणो = सुनना कळकळणो = चमकना
हा = थे थयो = हुआ हुइय = होगा

---

१ शब्द के प्रारंभ का 'न' कभी 'ण' में परिवर्तित नहीं होता जैसा कि संत साहित्य के विद्वान श्री परशुराम चतुर्वेदी ने मीरांपदावली में बतलाया है यथा नंद का णंद नन का णण नैनन का णयण इत्यादि प्रत्येक स्थान पर न के ण में होने के चतुर्वेदीजी के नियम को मान कर हम अर्थ का अनर्थ कर बैठेंगे उदाहरण के लिये 'मन' और 'मण' राजस्थानी में 'मण' का अर्थ चालीस सेर के वजन से है श्री चतुर्वेदीजी ने मीरांपदावली के प्रथम पद में ही 'र मण परस हरि रे चरणां' पाठ देकर अर्थ का अनर्थ कर दिया है क्या चालीस सेर वाला वजन हरि के चरणों को स्पर्श करेगा?

२ राजस्थानी का यह परिवर्तन प्रभाव ब्रज और अवधी भाषाओं पर भी पाया जाता है

सर्वनाम

हू – मैं तूझ – तेरा मूझ – मेरा ग्रम्हा – हमारे
सो – वह सइ – उस, उसको तिणि – उस, उसने, उससे, उसमे
जिका – जो जासु – जिसका जिणि – जिस कुण – कौन
काई – क्या ग्रौ – यह ईए – इमने किहि – किसा इत्यादि

ग्रव्यय

म – मत नीठि – कठिनतासे वळे या वळि = फिर
नेडउ – निकट साम्हा – सामने प्रति – से ग्रोर, प्रत्येक
किरि – मानो हिव – ग्रब ग्रजे – ग्रभी तक इत्यादि

विभक्तिएँ

रा री, रे – का, की, के
ची, चे, चौ – की, के, का
तणा, तणी, तणै, तणो – का, की, के, को इत्यादि

शब्द भण्डार

वेलि मे डिंगल के ग्रतिरिक्त सस्कृत के तत्सम कुछ ठेठ प्राकृत व ग्रपभ्र श, कुछ विदेशी शब्द तथा देशज शब्दो का समुचित प्रयोग किया गया है यह इस बात का भी प्रत्यक्ष प्रमाण है कि कवि को न केवल ग्रनेक भापाग्रो का ज्ञान था, बल्कि इन शब्दों को ग्रपने भावानुकूल ग्रभिव्यक्ति का माध्यम बना कर कवि ने ग्रपनी प्रकाण्ड विद्वत्ता का परिचय दिया है

तत्सम शब्द

कस्मात्, कस्मिन, किल मित्र, किमथ किमत्र, केन, कार्य,
परियासि, कुत्र, गति, मति, नासिका, पयोधर, कुच, कपोल, सुर, भ्रमर इत्यादि

देशज शब्द

लाडो, बाकिया, ग्रधारी, ग्राडग, काठळ, निवाण
बाजोट, कोरण, वळे, ग्रनड, ढूलडी, पिण ग्रादि ।

तदभव शब्द

परमेसर, सरसति, वागेसरी, रिखेसर, प्रियाग, नयण ग्रादि ।

विदेशी शब्द

नासफरिम, गरकाब, सिलह हवाई ग्रादि ।

मराठी व गुजराती प्रत्यय ग्रौर ग्रव्यय

चा, चँ, चो, ची ग्रौर शू ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसगानुसार सस्कृत, राजस्थानी व विदेशी अनेक भाषाओ की शब्दावली लिये 'वेलि' का स्वरूप वस्तुत निखर आया है 'वेलि' की भाषा पर कवि का पूर्ण वचस्व था जिससे उसमे सरसता व रसाभिव्यक्ति की समयता के दर्शन होते हैं यह बात स्वय कवि ने छद स २९७ के प्रथम दुहाले में स्पष्ट की है—

भाषा, सस्कृत, प्राकृत भणता,
मूझ भारती ए मरम ।

वेलि मे सस्कृत का सर्वश्रेष्ट उदाहरण तो छद स ५५ मे है जब सदेशवाहक ब्राह्मण, रुक्मिणी का पत्र ले कर द्वारिका पहुचता है और वहाँ श्रीकृष्ण उससे उसका परिचय पूछते हैं —

कस्मात? कस्मिन ? किल मित्र ! किमथ ?
केन काय ? परियासि कुत्र ?
ब्रूहि जनेन येन भो ब्राह्मण !
पुरतो मे प्रेषित पत्र ॥५५॥

अलकार

जिस प्रकार सस्कृत का अनुसरण करते हुये भी राजस्थानी छदशास्त्र की अपनी मौलिकताएँ हैं उसी भाति इसका अपना अलकार शास्त्र है कवि मछ कृत रघुनाथ रूपक और किसना आढा प्रणीत रघुवर जस प्रकाश' आदि उसके अपने डिंगल रीति ग्रथ हैं वस्तुत डिंगल के छद व अलकार शास्त्र का स्वतत्र रूप से विकास हुआ है

वलि अलकारो का रत्नाकर है शब्दालकारो व अर्थालकारो के साठ से भी अधिक भेदोपभेदो का इसमे प्रयोग हुआ है जसा कई बार देखा जाता है कि कई कवियो के काव्य इनसे बोझिल बन जाते हैं पर पृथ्वीराज के काव्य मे एक साथ चार चार अलकारो के प्रयोग पर भी दुरूहता और कृत्रिमता का नाम मात्र नही है इसके विपरीत भाषा बडी सशक्त व सजीव बन गई है इनसे भावोत्तेजना मे बडी सहायता पहुँची है स्व श्री विपिनविहारी त्रिवेदी के शब्दो मे कह तो—

'पृथ्वीराज के अलकार काव्य की आत्मा रस — के साधक हैं न कि बाधक' और फिर पृथ्वीराज हिंदी के उस काल (रीतिकाल) मे हुये थे जहाँ अलकारविरहित कामिनी, कविता और मित्र शोभा नही पाते थे तया जहाँ इसी बल पर ताम्र पत्र, पट्टे इत्यादि प्राप्त होते थे प्रो स्वामी के शब्दों म वास्तव में वे कारीगर थे, जो उपयुक्त अलकारो को उपयुक्त अवसरो पर साहित्यिक श्रीवृद्धि के लिये प्रयुक्त करते थ ।

शब्दालंकार

शब्दालकारो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे हुआ है राजस्थानी के प्रमुख शब्दालकार वयणसगाई का तो अति कठोरता से पालन हुआ है वयणसगाई को डिंगल कवियो न काव्य का अपरिहाय अग माना है प्रो नरोत्तमदास स्वामी न ठीक ही लिखा है कि "ससार की किसी भी भाषा मे शायद ही किसी अलकार का निर्वाह इतनी कठोरता के साथ किया गया हो" वयणसगाई के अतिरिक्त अनुप्रास और उसके विभिन्न भेद छेकानुप्रास, वृत्यनुप्राम और लाटानुप्रास, यमक के दोनो भेद साथक और निरथक और श्लेष अलकारो का प्रयोग कवि ने साधिकार किया है इसके साथ कवि ने पुनरुक्तिप्रकाश अलकार का भी खुल कर प्रयोग किया है

अनुप्रास

रस, भाव आदि के अनुकूल वर्णों का बारबार प्रकषता से पास पास म रखने को अनुप्रास कहते हैं अनुप्रास के तीना भेदो का कवि ने अबाध रूप से प्रयोग किया है यह अतिशयोक्ति नही होगी, यदि हम यह कहे कि सारी वेलि अनुप्रासमय है

छेकानुप्रास

छेक का अथ है चतुर' चतुरजनो को प्रिय होने के कारण इसे छेकानुप्रास कहते हैं इसमे वर्णों का एक ही क्रम से प्रयोग होना चाहिये वेलि मे से उद्धरण द्रष्टव्य है —

लाज लोह लगरे लगाये,
गय जिमि आणी गय गमणि

वृत्यनुप्रास

जिसमे वृत्तिगत एक अथवा अनेक वर्णों की अधिक बार आवृति होती हो उसे वृत्यनुप्रास अलकार कहते हैं यथा—

बहु विलखी वीछडतइ बाळा
बाळ — सघाती बाळपण ।

लाटानुप्रास

एक या एक से अधिक शब्द एक ही अथ मे, पर तात्पयमात्र की भिन्नता से अधिक बार दुहराय जायें तो उसे लाटानुप्रास कहते हैं यथा—

जळनिधि ही समाइ नही जळ
जळबाळा न समाइ जळदि

और

घटि घटि घण घाउ, घाइ घाइ रत घण
ऊच छिछ ऊछळइ अति

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसगानुसार सस्कृत, राजस्थानी व विदेशी अनेक भाषाओं की शब्दावली लिये 'वेलि' का स्वरूप वस्तुत निखर आया है 'वेलि' की भाषा पर कवि का पूर्ण वर्चस्व था जिससे उसमे सरसता व रसाभिव्यक्ति की समर्थता के दर्शन होते हैं यह बात स्वय कवि ने छद स २९७ के प्रथम दुहाले में स्पष्ट की है—

भाषा, सस्कृत प्राकृत भणता,
मूझ भारती ए मरम ।

वेलि मे सस्कृत का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण तो छद स ५५ मे है जब सदेशवाहक ब्राह्मण, रुक्मिणी का पत्र ले कर द्वारिका पहुचता है और वहा श्रीकृष्ण उससे उसका परिचय पूछते हैं —

कस्मात? कस्मिन ? किल मित्र ! किमथ ?
　　केन काय ? परियासि कुत्र ?
ब्रूहि जनेन येन भो ब्राह्मण !
　　पुरतो म प्रेषित पत्र ॥५५॥

अलकार

जिस प्रकार सस्कृत का अनुसरण करते हुये भी राजस्थानी छदशास्त्र की अपनी मौलिकताएँ हैं उसी भाति इसका अपना अलकार शास्त्र है कवि मछ कृत रघुनाथ रूपक और किसना आढा प्रणीत 'रघुवर जस प्रकाश' आदि उसके अपने डिंगल रीति ग्रथ हैं वस्तुत डिंगल के छद व अलकार शास्त्र का स्वतत्र रूप से विकास हुआ है

वलि अलकारो का रत्नाकर है शब्दालकारो व अर्थालकारो के साठ से भी अधिक भेदोपभेदों का इसमे प्रयोग हुआ है जसा कई बार देखा जाता है कि कई कवियो के काव्य इनसे बोझिल बन जाते हैं पर पृथ्वीराज के काव्य म एक साथ चार चार अलकारो के प्रयोग पर भी दुरूहता और कृत्रिमता का नाम मात्र नहीं है इसके विपरीत भाषा बडी सशक्त व सजीव बन गई है इनसे भावोत्तेजना मे बडी सहायता पहुँची है स्व श्री विपिनबिहारी त्रिवेदी के शब्दो मे कहें तो—

'पृथ्वीराज के अलकार काव्य की आत्मा रस — के साधक हैं न कि बाधक' और फिर पृथ्वीराज हिंदी के उस काल (रीतिकाल) म हुये थे जहाँ अलकारविरहित कामिनी, कविता और मित्र शोभा नही पाते थे तथा जहाँ इसी बल पर ताम्र-पत्र, पट्टे इत्यादि प्राप्त होते थे प्रो स्वामी के शब्दों में वास्तव मे वे कारीगर थे, जो उपयुक्त अलकारो को उपयुक्त अवसरो पर साहित्यिक श्रीवृद्धि के लिये प्रयुक्त कर देते थे ।

(१) आदिमेल (२) मध्य मेल और (३) अंतमेल वैसे कवि ने अधिकांशत उत्तम वैण सगाई का ही प्रयोग किया है पर कही कही मध्यम या अधम वणसगाई के दृष्टांत भी दृष्टिगोचर होते हैं

आदि मेल

माखण चोरी न हुवै माहव ।
रुखमिणी कमोदणी रुख ।

उपर्युक्त उदाहरणो मे वैण सगाई को स्थापित करने वाला वण अंतिम शब्द के आदि मे आया है माहव का 'मा' और रुख का 'रु' ।

मध्य मेल

वरसि अचळ गुण अंगी ससी सवति ।
मकरध्वज वाहणि चढयौ अहिमकर ।

उपर्युक्त दोनों उदाहरणो मे वैण सगाई को स्थापित करने वाला वण अंतिम शब्द के मध्य मे आया है सवति म 'व' और अहिमकर 'म' की स्थिति दृष्टव्य है

अंतमेल

रस छूटी छुद्र घंटिका

इस दुहाले मे घंटिका शब्द मे 'का' अंतमेल का उदाहरण है
सामान्यत वण-मैत्री के नियम निम्नलिखित हैं—

(१) असमान स्वर परस्पर मित्र होते हैं जसे अ, उ, इ आदि
(२) अद्ध स्वर (य, व) मे भी मत्री होती है
(३) व और व मे भी मैत्री होती है
(४) सभी स्वरो और अद्ध स्वरो मे वर्ण मैत्री होती है
(५) अल्प प्राण वण अपने समयोगी महाप्राण का मित्र होता है
(६) त वग और ट वग के समयोगी वण मित्र होते हैं

अर्थालंकार

अर्थालंकारों म कवि ने दृष्टांत, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, सदेह विशेषोक्ति, अनन्वयोपमा, सार, परिकरांकुर, काव्यार्थापत्ति, निदशनामाला, लुप्तोतमा यथासख्य, उपमा, हेतु विभावना स्वाभावोक्ति, अत्युक्ति, रूपक, पूर्णोपमा, सहोक्ति, प्रतीप पदार्थावृत्तिदीपक, अतिशयोक्ति, उदात्त, व्याघात, दीपक, एकावलि परिकर, काकुवक्रोक्ति, हेतु समुच्चय, उल्लेख, व्यतिरेक, हेतुत्प्रेक्षा, गम्योत्प्रेक्षा, भ्रांतिमान, वक्रोक्ति श्लिष्ट रूपक मालोपमा, असम, अपह्नुति सागरूपक, उदाहरण प्रतिवस्तूपमा अप्रस्तुतप्रशसा, असगति, अनुमान, मीलित, काव्यलिंग, पर्यायोक्ति, अधिक, अल्प,

पुनरुक्तिप्रकाश

जहां शब्द की प्रावृति हो तथा प्रत्येक बार उस शब्द का अर्थ अभिन्न हो और साथ ही अन्वय प्रत्येक बार भिन्न हो, वहां पुनरुक्तिप्रकाश अलकार होता है यथा—

> जिणि सेस सहस फण, फणि फणि बि बि जीह
> जीह जीह नव नवो जस

एक ही साथ कवि ने चार शब्दालकारो (छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, वृत्यनुप्रास और यमक) को इस दोल म कितनी सुदरता से प्रयुक्त किया है—

> कळकळियो कुत किरण कळि ऊकळि
> वरजित विसिख विवरजित वाउ
> घडि घडि धवकि धार धारूजळ
> सिहरि सिहरि समख सिळाउ ॥११६॥

श्लेष

> पिंडि नीपनो कि खेत्र प्रवाळी
> सिरा हस नीसर सति ॥१२५॥

उपयु क्त दोहले के पिंडि, प्रवाळी और सिरा मे श्लेष अलकार है पिंडि—(१) वृक्ष का तना (२) धड प्रवाळी—(१) विद्रुम (२) किशलय सिरा—(१) ऊपर का भाग (२) रक्तनाडी (३) सिट्टे

वयणसगाई

वसे वयणसगाई अलकार को अनुप्रास अलकार कहा जा सकता है, पर यह उससे भिन्न और अधिक व्यापक है इसमे चरण के प्रथम शब्द के आदि वण को उसी चरण के अतिम शब्द के आदि मे लाकर सबध स्थापित किया जाता है—

> सरसती न सूझै, ताइ तू सोझ
> वाउवा हुओ कि वाउलो
> मन सरिसो धावतो मूढ मन
> पहि किम पूज पागुलो ॥४॥

उपर्युक्त छद के प्रथम चरण में स, दूसरे मे व, तीसरे मे म और चौथे चरण मे प वण सबध अर्थात वयण सगाई अलकार है वेलि म एक दो अपवादो को छोडकर वयणसगाई अलकार का सवत्र प्रयोग हुआ है, जो पृथ्वीराज की काव्य क्षमता का सूचक है वयणसगाई अलकार के भी अनेक भेद होते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम वणसगाई को स्थापित करने वाला वण कभी अतिम शब्द के आदि, और मत मे आता है—इस दृष्टि से भी वैणसगाई के तीन भाग माने गये हैं —

(१) आदिमेल (२) मध्य मेल और (३) अतमेल वसे कवि ने अधिकाशत उत्तम वैण सगाई का ही प्रयोग किया है पर कही कही मध्यम या अधम वणसगाई के दृष्टात भी दृष्टिगोचर होते हैं

आदि मेल

माखण चोरी न हुवै माहव ।
रुखमिणी कमोदणी रुख ।

उपयु क्त उदाहरणो मे वण सगाई को स्थापित करने वाला वण अतिम शब्द के आदि मे आया है माहव का 'मा' और रुख का 'रु' ।

मध्य मेल

वरसि अचळ गुण अगी ससी सवति ।
मकरध्वज वाहणि चढयौ अहिमकर ।

उपयु क्त दोनो उदाहरणो मे वैण सगाई को स्थापित करने वाला वण अतिम शब्द के मध्य मे आया है सवति म 'व' और अहिमकर 'म' की स्थिति दृष्टव्य है

अतमेल

कस छूटी छुद्र घटिका

इस दुहाले मे घटिका शब्द मे 'का' अतमेल का उदाहरण है

सामान्यत वण-मैत्री के नियम निम्नलिखित हैं—

(१) असमान स्वर परस्पर मित्र होते हैं जसे अ, उ, इ आदि
(२) अद्ध स्वर (य, व) मे भी मैत्री होती है
(३) व और व मे भी मत्री होती है
(४) सभी स्वरो और अद्ध स्वरों मे वर्ण मैत्री होती है
(५) अल्प प्राण वण अपने समयोगी महाप्राण का मित्र होता है
(६) त वग और ट वग के समयोगी वण मित्र होते हैं

अर्थालकार

अर्थालकारो मे कवि ने दृष्टात, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, सदेह विशेपोक्ति, अनन्वयोपमा, सार, परिकराकुर, काव्यार्थापत्ति, निदशनामाला, लुप्तोत्तमा, यथासख्य, उपमा, हेतु विभावना स्वाभावोक्ति, अत्युक्ति, रूपक, पूर्णोपमा, सहोक्ति, प्रतीप, पदार्थावृत्तिदीपक, अतिशयोक्ति, उदात्त, व्याघात, दीपक, एकावलि, परिवर, काकुवक्रोक्ति, हेतु समुच्चय, उल्लेख, व्यतिरेक हेतूत्प्रेक्षा, गम्योत्प्रेक्षा भ्रांतिमान, वक्रोक्ति श्लिष्ट रूपक, मालोपमा असम, अपह्नुति सागरूपक, उदाहरण, प्रतिवस्तूपमा अप्रस्तुतप्रशसा, असगति, अनुमान, मीलित, काव्यलिग, पर्यायोक्ति, अधिक, अल्प,

कारणमाला, अर्थान्तरन्यास, स्मरण, समासोक्ति, विशेष, अन्योन्य आदि का प्रयोग किया है उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा तो बहुतायत से प्रयुक्त हुये हैं

छद

डिंगल का अपना छद शास्त्र है इसके अनुसार छोटा साणोर छद के मुख्य चार भेदो मे से वेलियो और खुडद साणोर दो भेद हैं वेलि मे इन दानो छदो का समुचित रूप से प्रयोग हुआ है अतएव यह कहना गलत होगा कि क्रिसन रुकमणी री वेलि' केवल वेलियो छद मे ही लिखी गई है और इसी कारण इसका नाम वेलि पडा

वेलियो छद मे सामान्यत विषम चरणो मे १६ व सम चरणों म १५ मात्रायें होती हैं तथा अत मे ऽ। होना चाहिये। प्रथम दोहले के प्रथम चरण म १८ मात्रायें भी हो सकती हैं यथा—

ऽऽ ।। ।। ।। ऽ। ।ऽऽ
वीणा डफ महुयरि बस वजाग — १८
ऽऽ ।। ।। ऽ।। ऽ।
रोरी करि मुख पचम राग — १५

वेलि मे वेलिकार न वेलियो छद की मात्राओ का तो ध्यान रखा है, पर अपनी सुविधानुसार स्वतत्रता से काम लेकर ऽ। के स्थान पर लघु लघु, लघु गुरु व गुरु गुरु का भी प्रयोग किया है

खुडद–साणोर मे सामान्यत विषम चरणो म १६ व सम चरणो मे १३ मात्रायें होती हैं और अत मे लघु लघु या लघु गुरु आना चाहिय इसमे भी प्रथम दोहले के प्रथम चरण मे १८ मात्रायें हो सकती हैं यथा—

ऽ ।।। ऽ।ऽ ।। ऽ।।ऽ
श्री-वर्दनि पीतता, चिंति व्याकुलता — १८

।।। ।।।ऽ ऽ। ।।
हियइ घगघगी खेद हुइ — १३

।। ।। ऽ। ।ऽ ऽ।।।।
घरि घसि लाज पगे नउर धुनि — १६

।ऽ ।ऽ।। ऽ। ।।
करे निवारण करु कुह ॥ — १३

उपयुक्त विवरण से यह अधिक समुचित रहेगा कि वेलि के छद को हम साणोर ही मानें

मुहावरा

सुदर शब्द चयन के साथ साथ कवि ने अपनी कृति मे प्रचलित मुहावरों का भी यथास्थान स्वाभाविक प्रयोग किया है इससे भाषा लावण्यमयी हो गई है यथा—

वाद माडणो – हठ ठानना ।	पग माडणो – भागना बद कर मुकाबला करना ।
वाहर चढणो – आत की सहाय-ताथ आक्रमण करना	मिस करणो – बहाना बनाना ।
	लोह साहणो – लोहा लेना ।
दीपक देवणो – दीपक जलाना ।	मन राखणो – मन की बात करना ।
कहणौ आवणो – कहते बनना ।	नींद लागणी – नींद की झपकी आना ।
कठ करणो – मुखाग्र करना ।	

साधारणत मुहावरो के अस्वाभाविक प्रयोग से भाषा बोझिल बन जाती है, पर वेलि म एसा सभव नही हो पाया है उपर्युक्त सारे मुहावरे वास्तव मे इतने एक रस हो गय हैं कि इन्हे ढूढने मे यथेष्ट परिश्रम की आवश्यकता पडती है

वयणसगाई के सतत श्रेष्ठ प्रयोग, से युक्त तथा अन्य पचास से भी अधिक विविध अलकारो का प्रवहमान शैली मे विना किसी गत्यावरोध के जो उत्कृष्ट रचना वेलि के रूप मे हमे आज उपलब्ध है, उसका डिगल साहित्य म तो अद्वितीय स्थान है ही, पर जसे जसे इसका अध्ययन और अध्यापन विस्तृत बनता जायेगा, ससार की विद्वद्मडली का यह केन्द्र बिन्दु बनेगी और इस प्रकार ससार के गौरव ग्रथो मे समुचित स्थान प्राप्त कर सकेगी

वेलि के पात्र

आकार मे लघु होते हुए भी वेलि एक महाकाव्य है वर्णन प्रधान होने के कारण इस काव्य म चरित्र प्रधान काव्यो की भाँति चरित्र-चित्रण का अवकाश अपेक्षाकृत कम रहा है फिर भी काव्याकार की मर्यादा मे रहकर कवि ने चरित्रो को उभारने का जितना प्रयास किया है वह सफल रहा है एक बात और भी है कथानक के नायक (श्रीकृष्ण) और नायिका (रुक्मिणी) दोनो इतने लोकप्रिय व प्रसिद्ध पौराणिक देवी पात्र रहे हैं कि इस देश की धर्मप्राण जनता के लिये उनके चरित्र की विशद व्याख्या की आवश्यकता नहीं है सर्वपूज्य और सर्वशक्तिमान होने के कारण भी कदाचित कवि ने इस ओर कम ध्यान दिया है

शास्त्र-सम्मत चार प्रकार के (धीरोदात्त, धीरोद्धत्त, धीरललित और धीर प्रशांत) नायको मे से धीरोदात्त नायक सर्वोपरि है भगवान श्रीकृष्ण इस कथा के नायक हैं उनसे श्रेष्ठ धीरोदात्त नायक और कौन हो सकता है? वेलि मे प्रमुख पुरुष-पात्रों म कृष्ण रुक्मकुमार बलराम व दूत के रूप मे ब्राह्मण आते हैं स्त्री पात्रो मे प्रमुख पात्र रुक्मिणी ही है गौण पुरुष-पात्रो के अन्तर्गत रुक्मिणी के पिता भीष्मक, शिशुपाल उसके सुभट, कुन्दनपुर के नागरिक, गौरी पूजन के समय रुक्मिणी के साथ चलने वाले सैनिक तथा द्वारिका के नागरिको का समावेश है, जबकि गौण स्त्री-पात्रो म रुक्मिणी की माता उसकी सखियाँ, द्वारिका तथा कुन्दनपुर की स्त्रियाँ हैं प्रति नायक के रूप म शिशुपाल के पात्र को उभारने की आवश्यकता लगती है, पर वास्तव मे कथा की वर्णनात्मकता मे काव्य को सुगठित बनाये रखने के लिये जितना अपेक्षित था, उतने ही चरित्र चित्रण को वेलिकार ने महत्व दिया है उससे अधिक तिल भर भी नहीं

यो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के दो पक्ष होते हैं—एक व्यक्तिगत व दूसरा सामाजिक साहित्य मे पात्रों के इन दोनो पक्षों पर बराबर विचार होता रहता है पर वेलि मे श्रीकृष्ण और रुक्मिणी दोनों अवतारी हैं अतएव उनसे कई अलौकिक कार्य हो जाते हैं

रुक्मिणी

जैसा कि 'वेलि का काव्यरूप' मे हमने निर्देश किया है रुक्मिणी वेलि क्रिसन ... री की न केवल नायिका ही है बल्कि उसका सब प्र... कवि ने

रुक्मिणी के जन्म से लेकर प्रपौत्र अनिरुद्ध के उत्पन्न होने तक की कथा का इसमे समावेश कर, रुक्मिणी के सुदीर्घ जीवन की अनेक झाँकियों का उत्तम चित्रण किया है काव्य के प्रारभ म ही रुक्मिणी को जगद्धात्री और लक्ष्मी का अवतार आदि बता कर कवि ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह एक सामान्य राजकुमारी न होकर, अलौकिक पात्री है —

'रामा अवतार नाम ताइ रुखमणि

विदर्भ देश के राजा भीष्मक की प्राणप्यारी पुत्री रुक्मिणी अनिद्य सुन्दरी थी बचपन म ही वह बालक्रीडा करती हुई एसी लगती थी जसे मानसरोवर मे क्रीडा करता हुआ हस का बच्चा बत्तीस लक्षणो से युक्त रुक्मिणी राज्यप्रासाद मे सखिया सहित इस प्रकार लगती है मानो निमल आकाश म चद्रमा तारागणो के साथ शोभित हो रहा हो —

रामा अवतार नाम ताइ रुक्मिणि
मान सरोवरि मेरुगिरि
बाळकति करि हस चो बालक
कनकवेलि विहुँ पान किरि ॥

× × ×

राजति राजकुँअरि राय अगण
उडीयण वीरज अम्ब हरि ।

शैशवास्था मे ही उसने अपनी अप्रतिम प्रतिभा के बल पर अनेक शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त कर लिया था तथा चौसठ कलाओ को भी सीख लिया था —

व्याकरण पुराण, समृति सासत्र विधि,
वेद च्यारि, खट अग विचार ।
जाणि चतुरदस, चौसठि जाणि,
अनत अनत तसु भेद अविकार ॥२८॥

यौवनागम के साथ ही स्त्री सहज जो लज्जा उसे होती है तथा अपने माता पिता के सामने उसे अपने अगो को छिपाने मे भी जो लज्जा अनुभव होती है, उसका वणन कवि ने बडे सुन्दर ढग से किया है, द्रष्टव्य है —

आगळि पित मात रमती अगणि,
काम विराम छिपाडण काज ।
लाजवती अगि एह लाज विधि,
लाज करन्ती आव लाज ॥१८॥

श्रीकृष्ण के गुणो का श्रवण कर रुक्मिणी उनकी ओर आकर्षित होती है और उन्हे पति रूप मे प्राप्त करने के लिये हर गौरी की पूजा करती है पूर्वराग का यह सुदर उदाहरण है—

साभळि अनुराग थयो मन स्यामा,
वर प्रापति वछती वर ।
हरि गुण भणि, ऊपनी जिका हर,
हर तिणि वदे गावरि हर ॥२६॥

वाछित पति प्राप्ति के लिय इसी परम्परा के अनुकरण मे हमारे देश म आज भी कुमारिकाएँ इस व्रत का बडे सयम से पालन करती हैं भीष्मक और उनकी पत्नी यही चाहते थ कि रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण से ही हो, पर रुक्मी अपनी बहिन का विवाह गुण, शील वश आदि मे उनके ही समान शिशुपाल से करना चाहता था यही रुक्मिणी के धय की परीक्षा थी उसे भगवान मे अपार श्रद्धा थी वह उन्हें सादर स्मरण कर ब्राह्मण के द्वारा सन्देश प्रेषित करती है जो उसकी विनय और बुद्धिमता का द्योतक है रीतिकालीन विरहिणी नायिका की भाँति पर उसको भाति अतिशयोक्ति पूर्ण व ऊहात्मक न होकर भी उसने यह कागज अपन काजल मिले अश्रुओ की स्याही और नखो को लेखनी बना कर लिखा था—

× × ×
लिखि राखे कागळ नख लेखणि
मसि काजळ आँसू मिळित ॥४२॥

यक्षिणी का मघ द्वारा और मारवणी का क्रौंच (कुरझा) पक्षी के द्वारा और लोकगीतो की नायकिओ का सुए द्वारा सदेश सप्रेषण-विधि हमारे साहित्य की प्रियतम धरोहर है रुक्मिणी न अपने इस पत्र मे एक सच्चे भक्त की भाँति, अपना सवस्व अपण कर दिया था, तथा अशरणशरण को उनके विरद और जन्म ज मान्तर के सबध का स्मरण करवाया था कि तीन तीन बार आपने मेरी रक्षा की थी, चौथी बार क्या आप मेरी रक्षा के लिय चढ कर नही आयेंगे —

चौथीआ वार वाहर करि चत्रभुज,
सग चक्र धर गदा सरोज ।

एक अभिसारिका नायिका की भाँति रुक्मिणी न अपने पत्र मे मिलन स्थल हर गौरी के मन्दिर का बडी सूझ बूझ से सकेत कर दिया था—

पूजा मिसि आविसि पुरखोत्तम
अबिकालय नयर आरात ॥६६॥

अपन इस चातुयपूण पत्र लेखन म रुक्मिणी पूणतया सफल हुई उसके इस मनोवज्ञानिक व ममस्पर्शी पत्र न अचूक काय किया श्रीकृष्ण पर इसका अनुकूल प्रभाव पडा और वे द्रवित होकर तुरत रुक्मिणी का हरण करने चल पडे

ब्राह्मण का विलब से लौटना और भगवान के आगमन के किसी समाचार के अभाव मे रुक्मिणी का चिंतातुर होना स्वाभाविक था, फिर भी उसे दृढ़ विश्वास था कि श्रीकृष्ण चाहें तो निमिष मात्र म यहा उपस्थित हो सकते हैं ब्राह्मण को देखते ही रुक्मिणी उसके चेहरे के भावो से समझ जाती है कि परिस्थिति अनुकूल है

शृंगार स्त्रियो का सदव से ही प्रिय विषय रहा है रुक्मिणी ने भी [illegible] पश्चात् अपना अन्यतम शृंगार किया और जब देवी पूजा के पश्चात् वह मंदिर से बाहर आई तो उसके अपूर्व सौंदय और अग भगिमा तथा [illegible] के फलस्वरूप सारी सेना सम्मोहित हो गई इसी बीच श्रीकृष्ण रथ लेकर आ पहुँचे और रुक्मिणी का हाथ पकड उसे रथ म चढ़ा, रथ हाक दिया रुक्मिणी का [illegible] हरण कर चले गये —

वाहर रे वाहर कोई छै वर,
हरि हरिणाखी जाइ हरि ॥

रुक्मिणी को अपने भाई से अपार प्रेम था युद्ध के [illegible] रुक्मी ने भगवान कृष्ण को ललकारा तो भगवान ने अपनी [illegible] समझ उसका वध न कर केवल उसके केश काट दिये [illegible] रुक्मिणी के हृदय को पुन आघात-सा लगा कृष्ण के [illegible] और बलराम की प्रताडना पर रुक्मी के [illegible] के बीच युद्ध से उत्पन्न रुक्मिणी के [illegible] किया है,

प्रथम मिलन रात्रि के समय [illegible] व्यभिचारी भावो यथा स्वेद, लज्जा [illegible] प्राकृतिक वर्णन कवि ने किया है, वह [illegible] है —

स्वेद—

कृष्ण

कथा नायक कृष्ण, जो कुल से उच्च, गरिमा से मंडित, शौर्य और साहस की प्रतिमूर्ति तथा आदर्श प्रेमी के रूप में अंकित किये गये हैं, एक सामान्य पुरुष न होकर अवतारी पुरुष हैं कवि इस तथ्य को भूलता नहीं है कि वे श्री पति हैं ऐसे भगवान का पात्रांकन करना कोई सहज कार्य नहीं है फिर भी कवि एक सद्प्रयत्न करता है क्योंकि ऐसा किये बिना जीवन का साफल्य कहाँ ?

श्रीकृष्ण एक आदर्श प्रेमी हैं रुक्मिणी के पत्र की प्राप्ति पर वे एक क्षण भी व्यर्थ न गँवा कर, यहा तक कि बलराम को भी सूचित किये बिना अकेले ही तुरत रवाना हो जाते हैं उन्हे एक प्रेमी भक्त पुकार रहा है वे विलम्ब कैसे सह सकते ?

सारग सिळीमुख साथि सारथी,
प्रोहित जाणणहार पथ ।
कागळ चड ततकाल क्रिपानिधि,
रथि बइठा साभळि अरथ ।।६७।।

जब भीष्मक की सेना द्वारा मन्दिर का सारा प्रागण खचाखच भरा हुआ था, ऐसे समय मे भगवान श्रीकृष्ण का रथ पर अकेले आना और रुक्मिणी का हरण करना उनके अतुलित साहस, अनुपम शौर्य, अनूठी निर्भीकता तथा विद्युत सम क्षिप्रता का भव्य परिचय है वे किसी चोर की भाँति नहीं आये थे रुक्मिणी को ले जाते समय उन्होने उपस्थित समुदाय को ललकारा था कि हरि हरिणाक्षी को लिये जा रहा है, यदि उसका कोई वर हो तो छुडाने के लिये आ जाय

ऐसे श्रीकृष्ण तो पूर्णकाम योगेश्वर थे, फिर भी रुक्मिणी के रूप सौंदर्य द्वारा प्रेरित उनकी आखें अतृप्त हैं वे बार बार अपनी प्रियतमा की ओर इस भांति देखते हैं जैसे कोई निर्धन धन को लालायित दृष्टि से देखता है—

अति प्रेरित रूप आँखियाँ अत्रिपत
माहव जद्यपि त्रिपत मन ।
वार वार तिम कर विलोकन,
धण मुख, जेहो रक धन ।।१७०।।

द्वारकाधीश होते हुये भी, जैसे ही वे सदेशवाहक ब्राह्मण को आते देखते हैं उठ कर उसका स्वागत करते है व प्रणाम करके सत्कार करते है भगवान के विनय शीलता की यह पराकाष्ठा है

प्रणयोत्सुक श्रीकृष्ण की उत्कठा, सचमुच एक नव परिणीत वर की भाँति है भगवान का वर्णन करते हुये भी कवि ने एक साधारण वर (मनुष्य) की मनोदशा का तादृश्य चित्रण प्रस्तुत किया है वे अधीर हैं अपनी प्रेयसी का रूप पान करने के

लिये और इसीलिये वे एक क्षण भर भी स्थिर नही बैठ सकते शय्या से द्वार तक और द्वार से शय्या तक लौटना, पैरो की आहट व नूपुर ध्वनि सुनने के लिये दरवाजे पर कान लगाना, मन मे एक स्वर्गीय रोमाच उत्पन्न होना आदि आतुर प्रियतम के मनोभावो का कवि ने बडा मनोहारी वर्णन किया है—

पति आतुर निया मुख पेखण
निसा तणौ मुख दीठ निठ।

× × ×

अटत सेज द्वार बिच आहुटि,
स्तुति दे हरि घरि समाश्रित ॥

वे एक कुशल शासक, व्यवस्थापक व आदर्श पति हैं, जिनके राज्य मे सारी प्रजा सानद व निभय है अब तो जगत मे निर्माणकर्ता स्वय जगत मे बसने लगे हैं और अनत लीलामय भगवान स्वय मानवी लीला करने मे लगे हैं तो फिर भय कैसा ? उन्ही के प्रताप से क्रोध, निंदा, हिंसा, नशा और दुवचन आदि अस्पृश्यो की भाँति सदा के लिये दूर हो गये हैं—

ससार सुपहु करता ग्रह सग्रह,
गिणि तिणि हीज पचमी गाळि।
मदिरा रीस हिंसा निंदा मति,
च्यारे करि मूकिया चडाळि ॥२७७॥

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, भगवान के चरित्र का विस्तृत वर्णन कवि को अभीष्ट न था फिर भी, जितने भी अश का वर्णन किया गया है, वह प्राकृतिक व उत्तम है

रुक्मकुमार

वाचाल, विवेकहीन व अधीरता के कारण अस्थिर रहने वाला रुक्मकुमार, विदर्भ पति भीष्मक का ज्येष्ठ पुत्र और रुक्मिणी का बडा भाई था श्रीकृष्ण से द्वेष करने के कारण, वह धृष्ट होकर अपने पिता की अवज्ञा कर बैठता है उनको अपमानित करता हुआ कहता है कि वे बुद्धिहीन हो गये हैं कोई उनका विश्वास न करे —

त्रिघपणै मति कोइ वेसासौ
पातरिया माता इ पिता ॥

× × ×

मावीत्र मजाद मेटि बोले मुखि।

एक स्वच्छद पुरुष की भाँति व्यवहार करके वह शिशुपाल को निमन्त्रित करता है अहं भावना से पीडित वह यह नही चाहता कि उसकी बहिन का विवाह एक

ऐसे व्यक्ति के साथ हो जाय जो कुल, शील और राज्य आदि में उसके समान ही उच्च न हो कृष्ण तो ग्वाला है राजाओ से उसका कैसा सबंध ?

ग्याति किसी राजवियां ग्वाळां,
किसी जाति कुळ पाँति किसी ।

उपर्युक्त अवगुणो के होते हुए भी रुक्मकुमार एक साहसी व दृढ पुरुष था एक ओर जब बलराम सारी सेना को रोके हुए संहार रत थे और कृष्ण रुक्मिणी को भगा कर लिये जा रहे थे, रुक्मी ही कृष्ण को ललकार कर युद्ध करने के लिये निमत्रित करता है वह आयुध पर आयुध चला कर कृष्ण का वध करना चाहता है पर इस दु साहस मे वह स्वय बुरी तरह पराजित और अपमानित होता है श्रीकृष्ण रुक्मिणी के हृदयगत भावो को समझ, उसे क्षमा कर देते हैं और इस तरह उसकी जान बच जाती है

यद्यपि प्रतिस्पर्धी और प्रतिनायक की दृष्टि से, रुक्मकुमार का कोई महत्व नही है, फिर भी समग्र काव्य म दो बार पाठको के समक्ष उपस्थित होकर, अपनी कुल की मर्यादा और बहिन के प्रति स्नेह जतला कर फिर अदृश्य हो जाता है यह उसका अज्ञान ही था कि आवेश के कारण वह कृष्ण के वास्तविक स्वरूप को नहीं जान सका

बलराम

हलायुधधारी बलराम श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता हैं वीरता और साहस में वे श्रीकृष्ण के समान अद्वितीय थे अपने भाई के प्रति उनके हृदय मे अपार प्रेम था श्रीकृष्ण का हिताहित उनका हित अनहित था इस समाचार पर कि श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण करने चल पडे हैं वे भावी आपत्ति का ध्यान कर, सेना सहित कुन्दनपुर के लिए प्रस्थान कर देते हैं इसके पश्चात् तो बलराम ही एक कुशल रणनीतिज्ञ की भाँति सैन्य सचालन कर भीष्मक, शिशुपाल आदि की सम्मिलित सेना का सहार कर देते हैं उनकी विजय का समाचार द्वारकावासियो मे उल्लास और आनद का वातावरण उत्पन्न कर देता है

स्नेह सिंचित व्यग्य बाण कसने मे भी वे बडे प्रवीण हैं जब उन्होने देखा कि श्रीकृष्ण ने रुक्मकुमार को विद्रूप कर दिया है, तो उन्हें यह काय अरुचिकर लगा उन्होने कहा कि हे भाई ! तुमने बहुत अच्छा किया जिसकी बहिन को अपने पास बिठाया—ब्याहा, उसे उचित दण्ड दिया —

अनुज ! अ उचित, अग्रज इम आखइ,
दुसट मासना भली दयो,
बहिनि जासु पास बइसाणी,
भलउ काम किउ, भला भई ॥१३८॥

उनके इस उपालम्भ का उचित प्रभाव पड़ा और श्रीकृष्ण ने रुक्मकुमार के केशों को पुनः उत्पन्न कर दिया।

संदेशवाहक ब्राह्मण

पत्र प्रेषण फिर वह किसी के माध्यम से क्यों न हो भारतीय साहित्य की प्राचीन धरोहर रहा है। महल रुक्मिणी महल पर चढ़ कर किसी पथिक को देखने लगी। इतने में उसे एक यज्ञोपवीतधारी वृद्ध ब्राह्मण दिखाई पड़ा। उसको बुलवा कर रुक्मिणी ने प्रणाम किया और द्वारिका तक संदेश पहुँचाने की विनती की। ब्राह्मण को अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण ख्याल था और इसीलिये बड़ा चिंतित भी था। वह जानता था कि रातभर चलने पर भी वह गन्तव्य स्थान पर समय पर नहीं पहुँच सकेगा। फिर वह एक भी क्षण था इसलिये नगर के बाहर निकल कर चिंतित ब्राह्मण सो गया। प्रातःकाल जगा तो उसने अपने आपको द्वारिका में पाया। उसका विस्मित होना स्वाभाविक था। उसको सारी घटना स्वप्नवत लगी। अपार हर्ष के साथ साथ भगवान श्रीकृष्ण में उसकी भक्ति और प्रगाढ़ हुई।

संदेश कहना भी एक कला है। वृद्ध ब्राह्मण बड़ी चतुराई और मार्मिकता से पत्र पढ़ने लगा, जिससे भगवान पर उसका अनुकूल प्रभाव पड़ा। श्रीकृष्ण तुरंत ब्राह्मण को साथ लेकर कुंदनपुर की ओर चल दिये।

पीपल के पत्ते की भांति कंपित रुक्मिणी का मन बड़ी दुविधा में था। इधर ब्राह्मण ने भी देखा कि सबके बीच में उसे संदेश दिया भी कैसे जाय? वह पर्यायोक्ति के द्वारा, श्रीकृष्ण के कुंदनपुर आने का समाचार कह देता है। यहाँ एक बार और ब्राह्मण की चतुरता और बुद्धि का पता हमें चलता है।

शिशुपाल

प्रतिनायक के रूप में शिशुपाल का प्रभावन महत्वपूर्ण है। रुक्मकुमार का संदेश पाकर जिस जोर शोर से शिशुपाल बारात लेकर चलता है, उससे तो ऐसा लगता है कि आगे चल कर कवि, शिशुपाल के पात्र को अपनी विविध रंगों भरी तूलिकाओं से उभारेगा, पर वैसा नहीं देख कर एक निराशा-सी हाथ लगती है।

शिशुपाल चंदेरी का राजा था। उसकी बारात में अनेक राजागण थे। शौर्य में शिशुपाल भी कम न था। वेलिकार ने वर्णन किया है कि शिशुपाल का मुख सूर्य के समान तेजस्वी था, जिसको देखकर मानस प्रीत जागी हुई कुंदनपुर की नारियों के मुख कमल के समान खिल गये, पर रुक्मिणी कमोदिनी के समान कुम्हला गई—

> गावइ करि मंगल चरि चरि गहगह
> मनइ सूर सिसुपाल मुख।

पदमणि अनि फूलइ परि पदमणि,
रुकमणी क्मादणी रुख ।।४२।।

राग रग मे मस्त शिशुपाल व उसके वीरो ने जब रुक्मिणी हरण की बात सुनी तो मागलिक वस्त्रो पर कवच कसे और यादवो की सेना का पीछा किया भयकर युद्ध मे शिशुपाल और जरासघ सहित उसके साथी हार जाते हैं और सा-मुह् लौट जाते हैं इस युद्ध मे शिशुपाल ने अपना युद्ध कौशल्य का सुदर परिचय दिया भगवान श्रीकृष्ण से आमने-सामने के युद्ध में शस्त्रो की झडी लग गई—

अनत अनइ सिसुपाल अउभडइ
झड मातउ माडियउ झड ।।

शिशुपाल के हार कर चले जाने के पश्चात् वेलि मे अत तक उसका वर्णन कही नहीं आता

वेलि का काव्य रूप

सर्वप्रथम वेलि के सम्पादक द्वय—सर्वश्री सूर्यकरण पारीक और ठाकुर रामसिंह ने वेलि के काव्य रूप पर अपनी भूमिका (पृ १०५ से १०६) मे प्रकाश डाला था स्व श्री पारीकजी ने इसे खण्ड-काव्य घोषित किया तब से अद्यावधि विभिन्न विद्वानो द्वारा संपादित छ अन्य संस्करण निकल आये हैं, पर वेलि के काव्य रूप की चर्चा किसी भी विद्वान सम्पादक ने नही उठाई है इसका एक प्रमुख कारण यह हो सकता है कि स्व० पारीकजी की भाँति सबने इसको खड काव्य स्वीकार कर लिया हो और इस प्रकार विवाद का कोई स्थान ही शेष न रहा हो 'हिंदी के मध्यकालीन खड काव्य' नामक शोध प्रबन्ध के लेखक डॉ० सियाराम तिवारी ने भी कृष्णभक्ति शाखा के खड काव्यो के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया है, पर निरतर परिवतनशील परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य म समूचे प्रश्न का पुन मूल्याकन करना अति आवश्यक हो गया है

वसे महाकाव्य और खण्डकाव्य मे कोई तात्विक अन्तर नही है इन दानो म मात्राभेद है, प्रकार का नही इनका भेदक तत्व आकारजनित है अतएव बाह्य व स्थूल है आतरिक अथवा मूल आत्मा सबधी भेद नहीवत है फिर भी सस्कृत के आचार्यों ने महाकाव्य और खण्डकाव्य मे जो भेद निश्चित किये हैं[1], विचारणीय होते हुए भी युगानुकूल परिवतना की अपेक्षा रखते हैं

यहाँ एक अत्यन्त महत्वपूण तथ्य की ओर हमारा ध्यान बरबस आकर्षित होता है कि हिंदी की उत्पत्ति सीधे सस्कृत से न होकर प्राकृत अपभ्र श मे हुई है अतएव हिंदी के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए अपभ्र श की शब्दावली, उसके व्याकरणिक गठन और उसके लक्षण ग्र थ अपरिहाय हैं इसके विपरीत हुआ यह है कि हिंदी के विवेचको ने हिंदी साहित्य शास्त्र के क्षेत्र म सवथा सस्कृत साहित्य शास्त्र का अनुकरण किया है, जिससे कई भ्रम व विसगतियाँ उत्पन्न हुई हैं अपभ्र श एक समय समस्त उत्तर भारत मे ही नही सुदूर कर्नाटक प्रदश तक साहित्याकाश मे

---

1 कविराज विश्वनाथ के अतिरिक्त अन्य किसी आचाय ने खड काव्य की परिभाषा नहीं दी है उन्होंने भी एक पक्ति मे इसकी इतिश्री कर दी है जो अपर्याप्त है—

'खण्डकाव्य भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च। (साहित्य दपण)

आच्छादित थी[१] उसका साहित्य अत्यन्त प्रौढ, वैविध्यपूर्ण और विशिष्ट परम्पराओ से युक्त था

इससे भी अधिक एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वेलि एक डिंगल ग्रथ है, उसके अपने छद व अलकार शास्त्र हैं, उसकी अपनी शलीगत परम्परा है, अतएव वेलि के महाकाव्यत्व को समझने के लिए डिंगल की भव्य परपरा को समझना भी नितात आवश्यक है

ऐसी दशा म हमारी इस भव्य वसियत से मुह मोड कर मात्र सस्कृत की ओर मुखापक्षी होना कहाँ तक उचित है ? हिंदी महाकाव्य का स्वरूप विकास' नामक शोध प्रबन्ध के लेखक डॉ० शम्भुनाथसिंह ने भी इसी प्रकार के विचार अपने उपयुक्त ग्रथ मे प्रस्तुत किये हैं—"यह हिंदी का दुर्भाग्य रहा है कि यद्यपि उसके अधिकाश मूल्यवान साहित्य का मूल-स्रोत प्राय प्राकृत, अपभ्रश का साहित्य था, पर उसका साहित्य शास्त्र प्रारम्भ से ही सस्कृत साहित्य का अनुसरण करता रहा है हिंदी के काव्य रूपो का विवेचन प्राकृत अपभ्रश के आधार पर विशेष रूप से होना चाहिये केवल सस्कृत के अलकार शास्त्रो के आधार पर नहीं महाकाव्य की जो परिभाषा सस्कृत के आचार्यों ने दी है, वह मूलत सस्कृत काव्यो को देख कर बनाई गई है '

सस्कृत काव्यो के लक्षण निश्चय ही तत्कालीन प्रचलित ग्रथो पर आधारित थे। अतएव उनका सवयुगीन रूप नही हो सकता। प्राय सभी आचार्यों ने महाकाव्य सबधी परिभाषाओ म महाकाव्यो के बाह्य की ओर ही सविशेष भार दिया है यह सही है कि इन आचार्यों द्वारा निर्धारित लक्षणो का उपयोग आज के कवि अपने महाकाव्यो मे कर रहे हैं, पर इनमे से कई लक्षण तो ऐसे हैं जिनका निर्वाह आधुनिक युग म कठोरता स नहीं होरहा है फिर भी हम उन्ह महाकाव्यो की सज्ञा स अभिहित करते आरहे ह मगलाचरण धीरोदात्त सद्वशोत्पन्न नायक सग सख्या सर्गान्त छद परिवतन, भिन्न भिन्न सर्गों मे भिन्न भिन्न छदो का प्रयोग आदि कुछ ऐसे लक्षण हैं जो आज अदृश्य जस हो गये हैं यथा कामायनी' मे न तो मगलाचरण ही है और न सर्गान्त छन्द परिवतन ही डॉ० रामकुमार वर्मा कृत 'एकलव्य का नायक सद्वशीय न हो कर निषाद पुत्र एकलव्य है

---

१ अपभ्रश के महाकवि चतुर्मुख स्वयभू त्रिभुवन स्वयभू और पुष्पदंत की रचनाएँ कर्नाटक म रची गई सिद्ध सम्प्रदाय के सरहपाद और कण्हपाद ने अपने अपभ्रश ग्रथ दोहाकोश क्रमानुसार आसाम और पूर्वबगाल मे रचे हैं बौद्धगान का 'डाकार्णव बगाल में रचा गया अपभ्रश का सबसे प्रामाणिक व्याकरण आचार्य हेमचन्द्र ने सिद्धहेम शब्दानुशासन के आठवें अध्याय म दिया है जो गुजरात में रचा गया है प्रांतीय बोलियों का काफी प्रभाव होते हुये भी भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों मे लिखा हुआ जो अपभ्रश साहित्य उपलब्ध है उसकी भाषा एक है' डॉ भा ।।राम गाडमरा का एक निबध गर्जर इतिहास एव सस्कृति कुछ विचार, जिसका हिन्दी अनुवाद इस लेखक ने मरु भारती जनवरी १९६७ म प्रकाशित करवाया है

प्रगति व सुधारो के सदभ मे आज जब कि सभी प्रकार के और सभी क्षेत्रो मे वर्गों और वर्णों के बवन धराशायी हो रहे हैं और मानवता उभर रही है, तब अधानुकरण कर केवल लकीर के फकीर बने रहना कोई याग्य आधार नही है समयानुसार परिवतन आवश्यक है आज जब कि शताब्दियो से पद दमित और शोषित वग हमारी सहानुभूति के पात्र बन रहे हैं तब सद्वशो पन्न नायक की बात बेईमानी होगी मगलाचरण के कोई माने नही है छन्द बध निर्बंध होगये हैं तथा शलीगत परिवतन स्पष्ट दृष्टिगोचर होते है हमे महाकाव्या के लक्षणो का नव मूल्याकन करना ही पडेगा

स्वयभू के पउमचरिय से लगा कर जयमित्र हल्ल कृत 'बहुमाणचरिउ तक अपभ्र श के कुल पच्चीस महाकाव्यो की रचना हुइ है, जिनसे एक सुदीघ परम्परा का पता चलता है आचाय हेमचन्द्र के 'काव्य नुशासन से यह भी अत्य त स्पष्ट है कि इन सारे महाकाव्या म सस्कृत आचार्यों द्वारा निर्धारित लक्षणो का यथावत् पालन नही हुआ है सच तो यह है कि इनका परिपालन आवश्यक भी नही था स्वय सस्कृत के आचार्यों ने महाकाव्य की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं भामह, दण्डी, रुद्रट और विश्वनाथ ने अपने ग्रथो क्रमश —'काव्यालकार', का यादश , काव्यालकार' तथा साहित्यदपण' म महाकाव्य की जो परिभाषाएँ दी हैं इन परिभाषाओ मे उत्तरोत्तर परिष्कार की भावना परिलक्षित होती है। आचाय विश्वनाथ ने तो पूव-वर्ती सभी लक्षणो का समाहार कर दिया है इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकाव्य की परिभाषा सतत परिवतनशील रही है।

काव्यानुशासन मे हेमचन्द्र ने महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—पद्य प्राय सस्कृतप्राकृतापभ्र श ग्राम्यभाषानिबद्धभिन्नान्त्यवृत्त-सर्गाश्वाससध्यावस्कधक-बध सतसधि शब्दाथ वचित्र्योपेत महाकाव्य—यहाँ प्राय शब्द बडा लाक्षणिक है इसका प्रयोग यहाँ अधिकारसूत्र के रूप म हुआ है इससे यह स्पष्ट है कि महाकाव्य मे प्राय सग सधि और अथवचित्र्य आवश्यक हैं अनिवाय नहीं। इस व्याख्या से, वे काव्य जिनमे सर्गाभाव प्राप्ति है, महाकाव्य के अन्तगत ही रखे जायेंगे इससे यह भी स्पष्ट है कि महाकाव्य के ये लक्षण न केवल सस्कृत अपभ्र श आदि पर लागू हैं, बल्कि ग्राम्यभाषा के काव्यो पर भी लागू हैं हेमचद्र न इस प्रकार एक बडी विशद व्याख्या कर दी है, जिसे परवर्ती सस्कृत आचार्यों न परिमार्जित कर, उसे सीमित व सुनिश्चित बना दिया है

ऐसी दशा मे बहुमुखी प्रतिभा के धनी क्रान्तिदृष्टा वीरवर पृथ्वीराज राठौड़ अपने अत्यन्त प्रख्यात ग्रथ वेलि मे एक ओर परम्परागत काव्य परिपाटियो का निर्वाह करें और दूसरी ओर शलीगत नये प्रयोग करें तो आश्चय की बात नहीं वास्तव में वेलि तो तत्कालीन युग की काव्य परम्परा का एक क्रान्तिकारी सीमा चिन्ह है

स्व० श्री पारीकजी ने लिखा है कि 'शास्त्रानुमत महाकाव्य के प्राय समस्त लक्षण विद्यमान होते हुए भी कुछ की अविद्यमानता के कारण कालिदास के मेघदूत की भांति वेलि एक खण्डकाव्य कहा जा सकता है सग बधाशरूपत्वाद (दण्डी) महाकाव्य का यह एक उपभेद कई एक रीतिग्रथो मे 'सघात काव्य' नाम से भी कहा जा सकता है विश्वनाथ कविराज ने खण्डकाव्य की परिभाषा यो की है—खण्डकाव्य भवेत् काव्यस्यैकदेशानुचारि च अर्थात काव्य के एक अश का अनुसरण करने वाला खण्डकाव्य होता है महाकाव्य के लक्षणा का अन्वषण करते हुये आशिक रूप मे प्राय महाकाव्य के सभी गुण इस खण्डकाव्य मे मिलते हैं'

महाकाव्य की दृष्टि से यहा सक्षेप मे महाकाव्य मे अपेक्षित लक्षणो की चर्चा तथा वेलि मे इनके उपयोग का वणन करना समीचीन होगा—

बाह्य उपकरण

(१) मगलाचरण —'आदौ नमस्क्रियाशीर्वाद वस्तुनिर्देश एव वा'—विश्वनाथ के अनुसार वेलि के प्रथम छद को परमेश्वर, सरस्वती और गुरु को प्रणाम करते हुये मगलाचरण लिखा गया है—

——परमेसर प्रणवि सरसति पुणि
——सदगुरु प्रणवि त्रिण्हे ततसार।

(२) कथानक व कल्पनाशक्ति —महाकाव्य का यह द्वितीय लक्षण असक्षिप्त (अर्थात न बडा हो और न छोटा हो) तथा इतिहास अथवा पुराण से सबधित होना चाहिये। साथ ही कथानक का प्रख्यात व लोकप्रिय होना आवश्यक है।

वेलि का कथानक हमारे महान सास्कृतिक ग्रथ महाभारत पर आधारित है इसकी लोकप्रियता इसी से स्पष्ट है कि इस कथानक के आधार पर विभिन्न भारतीय भाषाओ (हिंदी, व्रज, राजस्थानी मराठी, बगला, गुजराती) में शताधिक ग्रथ लिखे गये हैं इसका कथानक अत्यन्त सुसगठित है, जिसमे शिथिलता का अवकाश तक नही रहा है वास्तव मे महाकाव्यकार पृथ्वीराज ने अपनी कल्पनाशक्ति से कई नये प्रसगो की उद्भावना कर इस प्राचीन धार्मिक कथानक को अत्यन्त प्राणवान व रोचक बना दिया है वेलि मे ऐसे सोलह स्थल हैं जो महाकाव्यकार की अपनी मौलिक उवर कल्पना के चमत्कार हैं

(३) सगबद्धता —सग योजना का मूल उद्देश्य कथानक के समन्वित प्रभाव को उत्पन्न करना है यह कथावस्तु के सयोजन और विभाजन दोनों के लिये आवश्यक है जिससे कि कथानक की विभाजनता का नियोजन किया जा सके पर इसका अर्थ यह नहीं है कि असाधारण प्रतिभाशाली कवि अपने काव्यकौशल के बल पर सगहीन —य का निर्माण नही कर सक डॉ० सियाराम तिवारी ने लिखा है

कि— महाकाव्य की कथा का सगबद्ध होना इसलिये आवश्यक है कि उसकी कथा की विशालता होती है सर्गीकृत किये बिना उसम सगठन नही लाया जा सकता अगर कवि अपनी असाधारण दक्षता के बल पर कथा को बिना अध्यायो मे विभक्त किये हुए कथा-योजना की सारी कला को उसमे समाविष्ट भी कर दे तो अनवरत चलने वाली इस कथा को पढ़ने का धय पाठक मे नही रह सकता [1]

वेलि मे सगबद्धता का अभाव है यह सत्य है पर यदि इसी मात्र लक्षण के अभाव मे हम वेलि को महाकाव्य स्वीकार न करें तो इसे हमारी हठधर्मिता के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? जैसा कि ऊपर के उद्धृत अश से स्पष्ट है— महाकाव्य मे सगबद्धता की आवश्यकता केवल कथानक की सुसगठितता के लिये ही है और यदि कोई कवि अपनी असाधारण प्रतिभा के बल पर कथा को सुनियोजित स्वरूप प्रदान कर दे और उसमे कहीं भी कथाशथिल्य के दशन न हो तो हमे उसे महाकाव्य मानने मे हिचक क्यो होनी चाहिये ? यदि कवि की कृति मे महाकाव्य की आत्मा सुरक्षित हो तो काव्य के बाह्य स्थूल नियमो का परिपालन कवि के लिये बधनरूप क्यो कर हो सकते हैं ? जहाँ तक पाठक के धैय का प्रश्न है, महाकाव्यकार की सच्ची कसौटी भी यही है कि यदि वह अपने जिज्ञासु पाठको की उत्सुकता व सरसता को सतत नही बनाए रख सकता तो उसके अशक्त महाकाव्य के माध्यम से जिस जीवन दशन को वह अपने पाठको को सप्रेषित करना चाहता है, सवथा असफल रहेगा और उसकी कृति अप्रभावोत्पादक कही जायगी ।

वेलि के कथानक मे न तो ऐसा शथिल्य ही दिखाई पडता है और न पाठको के धैय का अन्त ही विपरीत इसके वह तो भक्ति और साहित्य दोना दृष्टियो से निरतर पारायण व अध्ययन की वस्तु है ।

(४) चरित्र —महाकाव्य का नायक स्वभाव से धीरोदात्त तथा वश से सद्वशोत्पन्न (ब्राह्मण/क्षत्रिय) होना चाहिये । पौराणिक देवता भी कथा के नायक हो सकते हैं । नायक के व्यक्तित्व एव कृतित्व मे जातीय जीवन के आदर्शों की प्रस्थापना के लिये सघपरत रहने की क्षमता होनी चाहिये ।

वेलि के नायक स्वय भगवान श्रीकृष्ण हैं । उनसे बढकर और कौनसा नायक महाकाव्य के नायक होन की क्षमता रखता है ? यादवेन्द्र श्रीकृष्ण के मनुष्य देह धारण का कारण स्वय ही महान था ।

प्रतिनायक के रूप म शिशुपाल भी गुण वश तथा बल मे लगभग समान या शिशुपाल की पराजय द्वारा महाकाव्यकार असद्पात्रो पर सद्पात्रो की विजय बतलाता

---

१ मध्यकालीन खड काव्य (शोध प्रबन्ध) प्रथम अध्याय

है और इस प्रकार उदात्त चरित्र की सृष्टि कर, महाकाव्य की चरित्र सबधी विशेषताओं को सवाग दृष्टि स पूर्ण करता है

महाकाव्य का मुख्य पात्र पुरुष ही क्या हो ? क्या कोई धीरोदात्त सद्वशोत्पन्न स्त्री महाकाव्य का मुख्यपात्र नही हो सकती ? क्या तत्कालीन युग मे पुरुष-वचस्व के कारण ही तो कही इस प्रकार के नियम नही बने जो पुरुष दाक्षिण्य को प्रकट करते रहे? इस अरुचिकर पर अभिनव विचार को ध्यान म रख कर विचार करें तो वलि की मुख्य पात्री रुक्मिणी सभी दृष्टियो से सवथा उपयुक्त पात्र है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्य—पावती, दमयन्ती उर्मिला और उवशी आदि इसी ओर इगित करते ही हैं फिर वलि मे रुक्मिणि की कथा उसके जन्म से लेकर पौत्र प्राप्ति तक ली गई है, जो उसके महाकाव्यत्व की द्योतक है वास्तव म देखा जाय तो खडकाव्य के रूप म इसका अत रुक्मिणी के विवाह के साथ ही समाप्त हो जाना चाहिये था, पर ऐसा न होकर काव्य का आगे चलता रहना भी उसके महाकाव्यत्व का परिचायक है।

(५) वस्तु व्यापार व परिस्थिति चित्रण—इस पर आचार्यों न अधिक जोर दिया है उनका मानना है कि घटना का प्रवाह चाहे क्षीण हो, पर अलकृत वणनो की प्रधानता होनी चाहिए वेलि मे घटनाओ का प्रवाह कहीं भी क्षीण नही हुआ है और अलकृत वणनो की प्रधानता तो उसकी एक प्रमुख विशेषता है इस काव्य म आये हुये लबे वणन महाकाव्य के ही उपयुक्त हैं, खण्डकाव्य के नही

(क) प्रकृति चित्रण

प्रकृति के विविध रूपो का कलात्मक वणन महाकाव्यकार का इष्ट होना चाहिए सध्या, प्रभात, मध्याह्न, रात्रि, सूय, चन्द्र, वन, पवत नदी, मरु समुद्र, नगर आदि का यथायोग सागोपाग व अलकृत वणन होता चाहिए वेलिकार ने वेलि म इन सभी का समुचित वणन किया है एक दो उदाहरण दृष्टव्य हैं—

(i) सध्या वणन—

सकुडित समसमा सध्या समय
रति वछित रुयमणि रमणि।
पथिक वधू द्रिठि पख पखिया
कमळ पत्र सूरिज किरण ॥१६२॥

(ii) वन व नगर वणन—

प्रात काल द्वारिका नगरी का वर्णन कितना भव्य है—

पणिहारी पटळ दळ वरण चपक दळ
कळस सीस करि कर कमळ।

तीरथि तीरथि जगम तीरथि,
विमळ ब्राह्मण जळ विमळ ।।४६।।
जोव जा, गृहि गृहि जगन जगावै,
जगनि जगनि कीजै जप जाप।
मारगि मारगि अम्ब मोरिया,
अम्बि अम्बि कोकिल आळाप ।।५०।।

रुक्मिणी के साथ द्वारिका लौटने पर नगर वासियो ने जो भव्य सजावट की उसका वर्णन छद स० १४३ से १४५ मे द्रष्टव्य है।

(iii) वर्षा वणन

वरसतै दहड नड अनड वाजिया,
सघण गाजियो गुहिर सदि ।
जलनिधि ही सामाइ नही जळ,
जळबाळा न समाई जळदि ।।१६६।।

(ख) जीवन के विभिन्न व्यापारों एव परिस्थितियो का वणन—

प्रेम, विवाह, मिलन कुमारोदय, राजकाज, मत्रणा दूत प्रेषण, यन, सनिक अभियान, युद्ध तथा नायक को विजय आदि का भी सुदर वणन महाकाव्य का आवश्यक अग है वेलि म उपयुक्त सारे प्रसगो का सुदर चित्रण हुआ है—

(i) युद्ध वणन—

कळकळिया कुत किरण कळि ऊकळि,
वरजित विसिख विवरोजत वाउ।
धडि धडि धवकि धार धाराजळ
सिहरि सिहरि समरवै सिळाउ ।।११७।।

(ii) कुमारोदय—

प्रनि वरिस वधै ताइ मास वधै ए,
वधै मास ताइ पहर वधन्ति ।
लखण बत्रीस बाळ लीला मैं,
राजकुंअरि दूलही रमन्ति ।।१३।।
सैसव तनि सुखपति जोवण न जाग्रति
वेस सधि सुहिणा सु वरि
हिव पस पन घडनो जि होत्य,
प्रथम पान एहवी परि ।।१४।।

(iii) दूत प्रेषण—

तितर हेक दीठ पवित्र गळिआगी,
करि प्रणपति लागी कहण ।
देहि सदेश लगी दुवारिका,
वीर वटाऊ ब्राह्मण ।।४४।।
म म करिसि ढील, हिव हुए हेकमन,
जाइ जादवाइद्र जत्र ।
माहरै मुख हुता, ताहरै मुख
पग वदण करि देइ पत्र ।।४५।।

(६) छद और अलकार विधान —

छदबद्धता महाकाव्य के लिय अनिवाय है । वलिकार ने भी छदोबद्ध काव्य का निर्माण किया हैं पर कवि ने सस्कृति छद शास्त्र का अनुकरण न कर डिंगल छद शास्त्र को अपनाया है इमी प्रकार डिंगल के अलकार शास्त्रानुसार, जो सस्कृत व हिंदी रीति शास्त्रो से भिन्न है, कई नये अलकारो के प्रयोग से वेलि ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया हैं, वेलिकार ने वेलि मे सवत्र 'वयण सगाइ' अलकार का प्रयोग किया है ।

अतरग पक्ष

(i) रसात्मकता —

'वाक्य रसात्मक काव्य'—रस को काव्य की आत्मा माना गया है रसात्मकता महाकाव्य के अतरग का निर्माण करती है प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्यो मे वीर, शृ गार और शात रसो मे से किसी एक की प्रधानता तथा अन्य रसो की सम्यक योजना का उल्लेख किया है आधुनिक काल को यह बधन स्वीकाय नही ह और इस युग के अनेक महाकाव्यो मे करुण रस प्रधान है वेलि म शृ गार रस प्रमुख है कविराज विश्वनाथ ने साहित्य दपण म शृ गार के तीन भेद दिये हैं —

धर्माथकामैस्त्रिविध शृ गार

वेलि मे धमशृ गार का प्रयोग हुआ है अतएव जो लोग वेलि पर शुद्ध शृ गार का आक्षेप करते हैं, वह न्यायसगत नही है

(ii) महत् उद्देश्य व जीवन दशन—

महाकाव्य जीवन-दशन और महान उद्देश्य से अनुप्राणित रहता है और इसका उद्देश्य चतुवग फल प्राप्ति अर्थात् धम अथ काम, मोक्ष की प्राप्ति है किंतु वर्तमान जीवन के सघष और वैज्ञानिकता के सदम मे यह लक्षण स्वीकार नही किया

जा सकता है—वेलिकार वेलि के द्वारा आध्यात्मिक सदेश देना चाहता है, जिसका उल्लेख उसने बार बार किया है—जिन भगवान ने हम जन्म दकर, मुख मे जिह्वा दी है तथा हमारा भरण पोषण किया है, उसके कीतन के बिना ससार म कसे चन सकता है—

> जिण दीध जनम जगि, मुख दे जीहा,
> त्रिसन जु पोखण भरण करै।
> कहण तणौ तिणि तणौ कीरतन
> स्रम कीधा विणु केम सरै ।।७।।

छद सख्या २७८ से २९५ तक कवि ने वेलि के नित्य प्रति पारायण से होने वाले लाभो को समझाया है और साथ ही कहा है कि वेलि तो स्वग प्राप्ति की सीढी है—

> मुगति तणी नीसरणि मडी
> सरग लोक सोपान इळ ।।२९४।।

वेलि के पठन पाठन से इहलोक मे ऐश्वय सुख व समृद्धि मिलती है तो परलोक मे मोक्ष की प्राप्ति होती है —

> मधुकर रसिक सुभगति मजरी
> मुगति फूळ फळ भुगति मिसि ।।२९२।।

उपयुक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक दृष्टि से वेलि एक महाकाव्य है जहा स्थूल भेद का अवकाश है, वह दो भिन्न परम्पराओ (सस्कृत साहित्य शास्त्र और अपभ्र श साहित्य शास्त्र) के कारण है, जो आगे चल कर डिंगल साहित्य शास्त्र के कारण और अधिक गहरा होता जाता है अतएव वेलि के काव्यरूप को समझने के लिये सस्कृत साहित्य शास्त्र ही यथेष्ट न होगा। इसको पूर्णरूपण समझने के लिये अपभ्र श की परम्परा और उससे प्रसूत पर स्वतत्र रूप से विकसित डिंगल परम्परा को समझने की भी अत्यन्त आवश्यकता है

पृथ्वीराज की भक्तिभावना

विश्व के इतिहास मे राजस्थान का यह सुदर सौभाग्य रहा है कि वीरता की अखूट धारा के साथ साथ यहाँ भक्ति रस की धारा भी निरतर प्रवहमान रही है एक ओर जहाँ महाराणा प्रताप अपने असख्य रणबाकुरा के साथ स्वतत्रता के अमर दीप के ज्योतिपुज की रक्षा मे रत थे तो दूसरी ओर धम रक्षाथ भक्ति की पीठिका पर एक शात शीतल ज्वाला प्रज्वलित थी, जिसम मीरा, दादू आदि अगणित सत भक्तो न अपने स्नह कणो का अक्षय योगदान दे रखा था

एक ही युग मे वीरता और भक्ति के इस सुदर और अद्भुत समन्वय पर सहज ही गौरवान्वित हुआ जा सकता है विशेषत ऐसे व्यक्तित्व पर जिसम उपयुक्त दोनो गुण अपनी सर्वोच्चता के साथ समन्वित हुये हो पृथ्वीराज राठौड ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी है जिन्होने अपनी खड्ग से विकट शत्रुओ को परास्त कर विजय श्री का वरण किया है तो दूसरी ओर भक्ति रस मे आकठ प्लावित हो, अपने साहित्य से अगणित मानवो को भक्ति-सलिला मे निम्मजित करवाया है

सगुणोपासक पृथ्वीराज राठौड अपने समकालीन तुलसी सूर, मीरा आदि भक्त प्रवरो से अनेक दृष्टियों से भिन्न थे तुलसी और सूर राजपुरुष न थे और न ही उन्हे स्वाभिमान के रक्षाथ अथवा बादशाही आज्ञावश सुदूर प्रदेशो मे युद्ध करने पडे थे सूर ने सगुणधारा के अतगत केवल सख्यभाव से कृष्णोपासना की थी जब कि पृथ्वीराज राठौड ने इसी धारा के अतगत राम और कृष्ण दोनो की उपासना की है इस दृष्टि से तुलसी और पृथ्वीराज मे साम्य है तुलसी ने रामभक्ति के ग्रथो के प्रणयन के साथ साथ 'कृष्णगीतावली की रचना कर अपनी कृष्ण भक्ति का परिचय दिया है तो पृथ्वीराज ने दसरथ राव उतरा दूहा' के माध्यम से अपनी रामभक्ति का परिचय भी दिया है फिर भी जैसे तुलसी का मन रामभक्ति मे अधिक रमा है पृथ्वीराज का मन कृष्ण भक्ति मे अधिक लवलीन हुआ है सूर ने जबकि केवल व्रज भाषा का प्रयोग किया है, तुलसी ने मुख्य रूप से अवधी और गौण रूप से ब्रजभाषा का प्रयोग किया है परन्तु पृथ्वीराज की प्रधान भाषा डिंगल थी और उन्होने पिंगल (व्रज मिश्रित राजस्थानी) मे भी कई रचनाएँ की हैं पाडित्य व कला प्रदशन में वे केशव के अधिक समीप हैं, पर केशव सी बोझिलता के दशन उनमे नहीं होते पृथ्वीराज की इतनी विशेषताओ के होते हुये भी तुलसी के दैन्य अ[illegible] सहज [illegible]ल भावना की तीव्रता के दशन पृथ्वीराज मे [illegible] कम हैं।

मीरां और पृथ्वीराज एक ही कुल के राजपुरुष थे लिंगभेद व तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ मीरा के मार्ग की घोर अवरोधक थी मीरां को जीवन पर्यन्त उनसे तुमुल संघर्ष करना पड़ा, जबकि पृथ्वीराज इनसे मुक्त थे दोनों कृष्णोपासक भक्त थे, पर मीरां सी तीव्र संवेदनशीलता के दर्शन पृथ्वीराज मे नहीं होते मीरां की भाषा जन मन के गले की हार थी तो पृथ्वीराज ने इस क्षेत्र में डिंगल का प्रयोग कर कई विद्वानों के इस भ्रम का सर्वथा परिहार कर दिया कि डिंगल केवल वीर रसोपयोगी ही है

अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य दोनों से यह प्रमाणित हो चुका है कि पृथ्वीराज मूलत एक भक्त कवि थे 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार वे पुष्टि सम्प्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्यजी के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथजी के शिष्य थे पृथ्वीराज स्वयं गोकुल म ठकुरानी घाट पर उनके दर्शनार्थ गये थे और वहीं पर उनसे दीक्षा ली थी गोसाईं विट्ठलनाथजी का उनको आशीर्वाद था कि तुमको काल कबहू बाधा न करेंगो तथा तुम श्री ठाकुरजी के सदा सनमुख रहोगे ' स्वयं पृथ्वीराज ने अपने एक दोहे मे अपने तीन गुरुओ के संबंध मे कहा है कि —

> दीक्षा गुरु विठलेश हैं, गुरु गदाधर व्यास ।
> चतुराई गुरु रामसिंह, तीन गुरु पृथिदास ।।

(विट्ठलनाथजी भक्ति के द्वारा परलोक मार्ग के, गदाधर व्यास विद्या और शिक्षा के द्वारा काव्य मार्ग के और रामसिंह अपने चातुर्य द्वारा राजनीति और युद्ध कला आदि लोक व्यवहार के मार्ग के——ये तीन इनके विशिष्ट गुरु रहे हैं अपने दीक्षा गुरु विट्ठलनाथजी से वे अत्यन्त प्रभावित थे 'विट्ठल रा दूहा' मे कवि ने इन्हें भव्य भावांजली अर्पित की है—

> आनि त्रिलोक त वाह सोभता सूझ नही ।
> आरीसो आपाह दीठो वल्लभदेव सुत ।।

पुष्टि सम्प्रदाय मे दीक्षित होने से स्वभावत उनका काव्य इस सम्प्रदाय के सिद्धातो मे ओत प्रोत है ब्रह्मवाद संबंधी सिद्धात पक्ष को छोड कर यदि हम वल्लभाचार्य के साधना पक्ष का विचार करें तो वैष्णव सम्प्रदाय मे यही साधना पक्ष पुष्टि मार्ग कहलाया है भगवान के अनुग्रह ही को पोषण (पुष्टि) कहते हैं [1] 'कृष्णानुग्रहरूपाहि पुष्टि कालादि बाधिका' अर्थात कालादि के प्रभाव को रोकने वाली श्रीकृष्ण की कृपा ही पुष्टि है भगवान का यह अनुग्रह लौकिक व अलौकिक दोनों ही फलों का दाता है

---

[1] श्रीमद्भागवत द्वितीय स्कंध, दशम अध्याय चौथा श्लोक— पोषणं तदनुग्रह भागवतार्थ प्रकरण, निबंधकार ।

गोसाई विट्ठलनाथजी के पुत्र श्री हरिरायजी ने पुष्टिमाग के लक्षण इस प्रकार दिये हैं—[२]

सवसाधनराहित्य फलाप्तौ यत्र साधनम् ।
फल व साधन यत्र पुष्टिमाग स कथ्यते ॥१॥
अनुग्रहेणैव सिद्धि लौकिकी यत्र वदिकी ।
नयत्नद यथा विघ्न पुष्टिमाग स कथ्यते ॥२॥
सम्ब ध साधन यत्र फल सम्ब ध एव हि ।
सोऽपि कृष्णेच्छया जात पुष्टिमाग स कथ्यते ॥३॥
यत्र वा सुख सम्ब धो वियोगे सगमादपि ।
सवलीलानुभवन पुष्टिमाग स कथ्यते ॥४॥
समस्त विषय त्याग सव भावेन यत्र च ।
समपण च देहादे पुष्टिमाग स कथ्यते ॥५॥

(भावाथ —जिस माग मे लौकिक तथा अलौकिक, सकाम अथवा निष्काम, सब साधनो का अभाव ही श्रीकृष्ण की स्वरूप प्राप्ति मे साधन है, अथवा जहाँ जो फल है, वही साधन है उसे पुष्टिमाग कहते हैं ॥१॥ जिस माग म सवसिद्धिया का हेतु भगवान का अनुग्रह ही है अ य किसी यत्न से नही (यदि ऐसा अवलबन न हो तो विघ्न होत है) उसे पुष्टिमाग कहते हैं ॥२॥ जिस माग मे देह के अनेक सबध ही साधन रूप बन कर भगवान कृष्ण की इच्छा के वलपर फलरूप मबध बनत हैं, उसे पुष्टि माग कहते हैं ॥३॥

जिस माग म भगवत विरह अवस्था मे भगवान की लीला के अनुभव मात्र स सयोगावस्था का सुख अनुभूत होता है उसे पुष्टिमाग कहते हैं ॥४॥

जिस माग मे सवभावो मे लौकिक विषय का त्याग है और उन भावा के सहित देहादि का समपण है, उसे पुष्टिमाग कहते हैं ॥५॥

पुष्टिमाग मे प्रभुसेवा को ही लक्ष्य माना गया है इस माग मे पूजा का अथ वेदोक्त व तत्रोक्त पूजा न होकर पुष्टिमार्गीय सेवा विधि है, जिसके दो रूप हैं—क्रियात्मक और भावनात्मक भगवान के प्रति माहात्म्य ज्ञान पूवक सावाधिक दृढ स्नेह भी भक्ति है, उसी से मुक्ति उपलब्ध हो सकती है यह भक्ति केवल प्रभु के अनुग्रह से प्राप्त होती है इस भक्ति मे आत्मनिवेदन का सर्वाधिक महत्व है जिससे भगवान का अनुग्रह प्राप्त हाता है और इसी से ससार की अहता व ममता छूट जाती है इस भक्ति मे नवधाभक्ति का भी बडा महत्त्व है पर तु प्रभु कृपा की प्राप्ति क पुव ही नवधा भक्ति म भी आत्मनिवदन सर्वोपरि है सेवाओ मे मानसिक सेवा ही श्रेष्ठ है

२ हरिराय वाङ्मुक्तावली, भाग १

'कृष्ण सेवा सदा कार्या मानसी सा परामता।'

श्री हरिरायजी ने लिखा है कि तीन प्रकार की सेवा मे मानसी सेवा ही फल-रूपिणी है यह निरोध रूपा भी है तथा भावात्मक भी।

इसके अतिरिक्त, पर पुष्टिमार्गीय भक्ति सबधी थोडा विस्तृत वर्णन हम श्री रघुनाथजी शिवजी मुखिया रचित 'श्री वल्लभ पुष्टि प्रकाश से प्राप्त होता है—

(१) पुष्टि मार्ग के अनुसार सेवा के दो प्रकार हैं—नाम सेवा और स्वरूप सेवा स्वरूप सेवा तीन प्रकार की है—तनुजा, वित्तजा और मानसी। मानसी सेवा भी दो प्रकार की है—मर्यादा मार्गीय व पुष्टि मार्गीय मर्यादा मार्गीय सेवा मे शास्त्रानुकूल मर्यादा मार्ग पर चलते हुए भक्त अपनी अहता और ममता को दूर करता है, पर इसमे पहले आत्म ज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है पुष्टि मार्गीय मानसी सेवा करने वाला प्रारम्भ से ही श्रीकृष्ण के अनुग्रह की इच्छा करता है और अपने शुद्ध प्रेम के द्वारा भगवान की भक्ति करता हुआ भगवान के अनुग्रह से सहज ही अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है
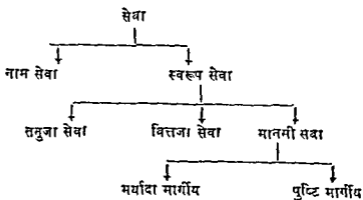
(२) जबकि सामान्य पूजा में कर्मकाण्ड का प्राधान्य होता है पुष्टि मार्गीय पूजा मे भावना का

(३) पुष्टि मार्गीय सेवा विधि के दो क्रम हैं—नित्य सेवा विधि तथा वर्षोत्सव सेवा विधि प्रातःकाल से शयन पर्यन्त सेवा विधि नित्य सेवा विधि है जिसमे वात्सल्य की प्रधानता है वर्षोत्सव की सेवा विधि म छः ऋतुओ के उत्सव, वदिक पर्वों के उत्सव तथा जयतियों का समावेश है

(४) नित्य और वर्षोत्सव सेवा विधियों के तीन मुख्य अग है—शृगार, राग और भोग मनुष्य इन्ही तीनों विषयों में फँसा रहता है उनसे मुक्ति पाने के लिये ही श्री वल्लभाचार्य ने इन विषयो को भगवान श्रीकृष्ण मे लगाने का उपदेश दिया, जिससे वे भगवान स्वरूप हो जायें

एक सच्चे भक्त की भाँति उन्होंने अपने इष्ट की सेवा की है, जिसको हम नवधा भक्ति के 'नाम स्मरण' के अतगत रख सकते हैं पुष्टि माग मे नवधा भक्ति का बड़ा महत्व है

पुष्टिमाग मे निहित नित्य और वर्षोत्सव सेवा विधि, दोनो ही प्रकार की सेवा विधियो का चुस्तता से परिपालन किया जाता है इन सेवा विधियो के मुख्य तीन अग हैं—शृ गार राग और भोग श्री वल्लभाचाय इन तीन अति सशक्त शक्तियो से भक्त के जीवन मे होने वाली हानि का ध्यान रख इनको भगवदभक्ति मे ढालन के लिये ही उपदेश दिया कि इनको श्रीकृष्णापण कर दिया जाना चाहिये, जिससे ये भगवानमय हो जायें वास्तव म आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से यही (sublimation) उर्ध्वीकरण (प्रतिशोधन) है काम की इस असाधारण शक्ति को जैसे ही (channalisation) रचनात्मक प्रवृत्तियो की ओर ढाल दिया जाता है, यह मारक शक्ति अत्यत वेगयुक्त व अत्यन्त बलशाली बन जाती है, जिससे सफलता प्राप्ति के साथ साथ मनुष्य मे दृढता और आत्मविश्वास की भावना बलवती बन जाती है वेलि मे जो शृ गार वणन हुआ है, और जिस पर से उन पर घोर शृ गारिकता का आरोपण किया जाता है, वह उनकी इसी उर्ध्वीकरण का सवश्रेष्ठ उदाहरण है

पृथ्वीराज ने 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' म जिस मर्यादित रूप मे भगवान श्री कृष्ण के सयोग शृ गार का वणन किया है, सभवत उसके पीछे उनको अपने सम्प्रदाय की इसी विशेपता को परिपुष्ट करने का उद्देश्य रहा हो

यमुनाजी का पुष्टि सम्प्रदाय मे बडा महत्व है इनको श्रीकृष्ण म रति (भक्ति) बढ़ाने वाला माना गया है इस सम्प्रदा के प्रत्येक व्यक्ति की सदव यही इच्छा बनी रहती है कि भगवान के परमलीलाधाम, गोकुल, मथुरा, वृ दावन आदि की यात्रा करू और यमुनाजी मे निमज्जन यही नही, कई लोग तो आज भी अपनी अतिम अवस्था में वही जाकर निवास करते हैं जिससे कि उनका दहात भी उस पुण्य सलिला के किनारे पर हो जो भगवान की परमप्रिया हैं 'दो सौ बावन वष्णवन की वार्ता मे तथा अन्यत्र उनकी मृत्यु का जो प्रसग दिया गया है, वह पृथ्वीराज की इस उत्कट इच्छा का प्रबल प्रमाण है कि उनका देहात किसी अन्य स्थान पर न होकर मथुरा के प्रसिद्ध विश्रात घाट पर ही होगा वे काबुल विजयाथ गये थे जहाँ से शीघ्र आना सभव न था पर उन्होंने काबुल पर विजय पताका फहराकर तथा अपने गुरु का स्मरण कर केवल ढाई दिन मे सीधे मथुरा के विश्रात घाट पर आ गये और अपने नश्वर दह को छोड दिया

पुष्टि मार्गीय प्रभाव के अतिरिक्त कवि पर समसामयिक अन्य भक्ति प्रवाहो का प्रभाव भी स्पष्ट है तुलसी, सूर तथा अन्य सत भक्त कवियो की भाँति कवि ने प्रारम्भ म अपना द य प्रकट किया है तृतीय छद मे ही कवि कह देता है कि मेरा

(५) पुष्टि मार्ग मे सेव्य श्री कृष्ण हैं सेव्य के रूप मे श्रीकृष्ण के ये रूप प्रचलित है—(१) श्री मथुरेशजी (२) श्री विट्ठलनाथजी (३) श्री द्वारकाधीशजी (४) श्री गोकुलनाथजी (५) गोकुलचंद्रमाजी (६) श्री बालकृष्णजी व (७) श्री मदन मोहनजी

(६) पुष्टि सम्प्रदाय मे जमुनाजी का भी बडा महत्व है प्रभु का जो स्वरूप और उनमे जो गुण हैं उनको श्री यमुनाजी मे भी माना गया है वे प्रभु की परम प्रिया हैं इसलिए यमुनाजी को श्रीकृष्ण मे रति बढाने वाली माना गया है

जसा कि हम ऊपर देख चुके हैं पुष्टि मार्गीय भक्ति मे मानसी सेवा का सर्वाधिक महत्व है हमारे चरित्र नायक पृथ्वीराज भी अपने इष्ट देव, श्री लक्ष्मी नाथजी की यही सेवा किया करते थे, जिसका प्रमाण हमे 'दयाळदास री ख्यात', भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास कृत 'भक्तिरस बोधिनी टीका' और दो सौ बावन वष्णवन की वार्ता' मे उपलब्ध है

अपने ग्रन्थ 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' का प्रारभ कवि ने जिस मगलाचरण के छन्द मे किया है उसमे भी अपने इष्ट देव श्री लक्ष्मीनाथजी (माहव) का स्मरण किया है क्योकि वे ही मगलस्वरूप हैं—

परमसर प्रणवि प्रणवि सरसति सद-गुरु प्रणवि त्रिणहे तत सार।
मगळ रूप गाइजइ माहव चार सु ए ही मगळाचार ॥

अपनी हीनता से भिज्ञ होते हुये भी कवि अपने इष्ट देव के गुणानुगान करने बैठ गया है, क्योकि उसे आरम विश्वास है कि उनके यश का वणन किये बिना किसी काय म सफलता प्राप्त नहीं हो सकती यहो कवि प्रयारम से ही भगवान के अनुग्रह का इच्छा करता है—

कमळापति तणी कहेवा कीरति,
आदर कर जु आदरी।

× × ×

स्त्रीपति ! कुण सुमति तूझ गुण जु सकति

× × ×

कहण तणउ जिण तणउ कीरतन,
[illegible] कीपा विण कैम सरइ ?

पुष्टि मार्ग मे सेव्य श्री कृष्ण हैं पृथ्वीराज ने इन्हीं श्रीकृष्ण को अपने काव्य का कथ्य विषय बनाकर और काव्य मे विनम्रतापूर्ण ढग से उनका यश गाकर

एक सच्चे भक्त की भांति उन्होने अपने इष्ट की सेवा की है, जिसको हम नवधा भक्ति के 'नाम स्मरण' के अतगत रख सकते हैं पुष्टि माग मे नवधा भक्ति का बडा महत्व है

पुष्टिमाग में निहित नित्य और वर्षोत्सव सेवा विधि, दोनो ही प्रकार की सेवा विधियो का चुस्तता से परिपालन किया जाता है इन सेवा विधियो के मुख्य तीन अग हैं—शृ गार राग और भोग श्री वल्लभाचाय इन तीन अति सशक्त शक्तियो से भक्त के जीवन म होने वाली हानि का ध्यान रख, इनको भगवद्भक्ति मे ढालन के लिये ही उपदेश दिया कि इनको श्रीकृष्णापण कर दिया जाना चाहिये, जिससे ये भगवानमय हो जायें वास्तव मे आधुनिक मनोविनान की दृष्टि से यही (sublimation) उर्ध्वीकरण (प्रतिशोधन) है काम की इस असाधारण शक्ति को जैसे ही (channalisation) रचनात्मक प्रवृत्तियो की ओर ढाल दिया जाता है यह मारक शक्ति अत्यत वेगयुक्त व अत्यन्त बलशाली बन जाती है, जिससे सफलता प्राप्ति के साथ साथ मनुष्य मे दृढता और आत्मविश्वास की भावना वलवती बन जाती है वेलि मे जो शृ गार वणन हुआ है, और जिस पर से उन पर घोर शृ गारिकता का आरोपण किया जाता है, वह उनकी इसी उर्ध्वीकरण का सवश्रेष्ठ उदाहरण है

पृथ्वीराज ने 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' म जिस मर्यादित रूप मे भगवान श्री कृष्ण के सयोग शृ गार का वणन किया है, सभवत उसके पीछे उनको अपने सप्रदाय की इसी विशेषता को परिपुष्ट करने का उद्देश्य रहा हो

यमुनाजी का पुष्टि सम्प्रदाय मे बडा महत्व है इनको श्रीकृष्ण मे रति (भक्ति) बढाने वाला माना गया है इस सम्प्रदा के प्रत्येक व्यक्ति की सदव यही इच्छा बनी रहती है कि भगवान के परमलीलाधाम, गोकुल, मथुरा, वृ दावन आदि की यात्रा करू और यमुनाजी में निमज्जन यही नही, कई लोग तो आज भी अपनी अतिम अवस्था मे वही जाकर निवास करते हैं, जिससे कि उनका दहात भी उस पुण्य सलिला के किनारे पर हो जो भगवार की परमप्रिया हैं 'दो सौ बावन वष्णवन की वार्ता मे तथा अयत्र उनकी मृत्यु का जो प्रसग दिया गया है, वह पृथ्वीराज की इस उत्कट इच्छा का प्रबल प्रमाण है कि उनका दहात किसी अय स्थान पर न होकर मथुरा के प्रसिद्ध विश्रात घाट पर ही होगा वे काबुल विजयाथ गये थे जहाँ से शीघ्र आना सभव न था पर उन्होंने काबुल पर विजय पताका फहराकर तथा अपने गुरु का स्मरण कर केवल ढाई दिन मे सीधे मथुरा के विश्रात घाट पर आ गये और अपने नश्वर देह को छोड दिया

पुष्टि मार्गीय प्रभाव के अतिरिक्त कवि पर समसामयिक अय भक्ति प्रवाहो का प्रभाव भी स्पष्ट है तुलसी सूर तथा अय सत भक्त कवियो की भाति कवि ने प्रारम्भ मे अपना द य प्रकट किया है तृतीय छद मे ही कवि कह देता है कि मेरा

यह प्रयत्न ऐसा है जसे गूगा आदमी वाणी की अधीश्वरी को जीतने का प्रयत्न करे—

जाण वाद माडियउ जीपण, वागहीण वागेसरी

और जब शेषनाग, जिनके सहस्र फन हैं और प्रत्येक फन मे दो दो जिह्वाए हैं, वे भी उनका पूणरूप से गुणानुगान नही कर सकते ता मैं एक जीभ वाला सासारिक मेढक जसा मनुष्य उनका गुणगान कैसे कर सकता हू—

जिणि सेस सहस फणए, फणि बि बि,
जीह जीह नव नयो जस।
तिणि ही पार न पायो श्रीकम
वयण डेडरा किसौ वस ॥

फिर भी उनके यशगान के बिना न तो मनुष्य का काम ही चल सकता है और न उसका उद्धार ही हो सकता है—

कहण तणौ तिणि तणौ कीरतन,
स्रम कीधा विणु केम सरे ?

पद पद पर पृथ्वीराज मे अपनी इस वेलि से भगवान के अलौकिक स्वरूप का वणन किया है भगवान ही की कृपा से ब्राह्मण का एक रात्रि मे द्वारका पहुँच जाना, कुदनपुरी मे अलग अलग वृत्तियो के लोगो को भगवान का अलग अलग रूपों में दृष्टिगोचर होना, अबिका दशन के समय रुक्मिणी का समूचे सन्य का अपनी सम्मोहन शक्ति द्वारा मूर्छित करना और रुक्मिणी की प्राथना पर रुक्मी के कटे हुये केशा को पुन उत्पन्न कर देना आदि अनेक घटनाएँ भगवान श्रीकृष्ण के सवशक्तिमान स्वरूप की परिचायक है अशरणशरण श्रीकृष्ण के अलौकिक स्वरूप को कवि क्षण भर के लिये भी नही भूलता

इधर रुक्मिणी भी रमा अवतार है—'रामा अवतार नाम ताइ रुक्मणि' वह जगद्धात्री है, मातृशक्ति है अतएव परम पूजनीया है वह लोकमाता, सिंधु-सुता, श्री, लक्ष्मी पदमा, प्रभा, इदिरा रामा, हरिवल्लभा व रमा है उस माँ का पार कौन पा सकता है ?

काव्य के अतिम छदो म जहाँ कवि न वेलि का माहात्म्य और पारायण का सविस्तार वणन किया है वहाँ थोडी आत्मश्लाघा की भावना विद्वान समालोचकों को अखरती है किन्तु यहाँ भी कवि न एक निश्चित परिपाटी का ही पालन किया है, ऐसा प्रतीत होता है डॉ तस्सितोरी इस परम्परा से अवगत न होने के कारण कहते कि After seven more stanzas mentioning among other

things Pradyumana's son Aniruddha (st 271–7), comes the conclusion which consists of twenty eight stanzas (278–305) and is very noteworthy as the boldest possible self eulogy, which an author could compose The presumptous tone of this conclusion is in striking contrast with the modest tone of the introduction, evidently, the Poet is so pleased with the work he has done that he must say bravo to himself" (सात और छन्दों के बाद, जिनमे और बातों के अतिरिक्त प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का वर्णन है कवि ने ग्रथ की समाप्ति के अट्ठाईस छन्दो (२७८ ३०५) मे आत्मश्लाघा का वह साहसिक वर्णन किया है, जिसे कदाचित ही कोई कवि कर सके उनकी ये अतिम अभिमान पूर्ण उक्तिया उनके प्रारम्भ की पक्तियो का पूर्ण विरोधाभास लिये हुये है प्रत्यक्ष ही, कवि अपनी कृति से इतना प्रसन्न था कि उसे अपने आपको शाबास कहना ही था) Dr Tessitori further says, 'Seeing that Prithi Raja's production is really incensurable, we may well forgive him for his outburst of self confidence, it is on a small scale and in a different form" (डॉ० तस्सितोरी ने आगे कहा कि पृथ्वीराज की रचना वास्तव मे निष्कलक रचना है हम उसकी आत्म विश्वासपूर्ण अतिशयोक्ति को क्षमा कर सकते हैं क्योकि यह अत्यन्त अल्पमात्रा मे तथा भिन्नस्वरूप मे है)

डॉ० तैस्सितोरी की अतिम पक्तियो से दो बातो का पता चलता है प्रथम तो यह कि पृथ्वीराज से भी कही अधिक आत्मश्लाघा करने वाले कवि इस विश्व मे हैं तथा द्वितीय यह कि यह भिन्न स्वरूप मे है यह भिन्न स्वरूप क्या है ? यहा हम प्रो० नरोत्तमदास स्वामी से पूर्णतया सहमत है कि 'यह प्रशसा कवि के काव्य की नहीं भगवान के पावन चरित्र की है, जिसके पठन श्रवण, मनन और निदिध्यासन से आस्तिक जन समस्त मनोरथो की पूर्ति और विविध सिद्धिया की प्राप्ति सहज सभाव्य मानते है ये अलौकिक गुण वेलि के अपने नही परन्तु हरि चरित्र के हैं जो हरि चरित्र के सम्पर्क के कारण वेलि मे भी प्रतिफलित हैं' 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' की भूमिका मे प्रो० सूर्यकरण पारीक ने लिखा है कि ' यह भी सभव है कि इसके पाठ से हमारा त्रिविध ताप व त्रिविध रोग दूर न हो एव भवसागर से पार न हुआ जाय, परन्तु जब हम इन सब फलाकाक्षाओ से अपने चचल मन को हटा कर, लीलामय भगवान और महामाया लक्ष्मी के सासारिक चरित्रों के रहस्य जानने मे, अध्यवसाय और निश्चल भक्तियुक्त चित्त को लगावें तो क्या इस ग्रथ को पढने

1 Page XI Introduction by Dr L P Tessitori of his book—वेलि रुक्मणी री ' प्रकाशक—एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता A D 1919

से हमको मनशुद्धि प्राप्त न होगी ? परन्तु फलादेश के साथ कवि का यह भी कहना है कि मनशुद्धि की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब श्रद्धा और भक्तिपूर्वक इस कथा का अनुशीलन किया जाय' महाराज पृथ्वीराज के काव्य मे आत्मश्लाघा अथवा मिथ्याभिमान की आशका करना निरी भूल है'[1]

वसे वेलि के प्रारभ की भाति, अत मे भी कवि ने अपना दैन्य प्रकट किया है छद सख्या ३०० मे कवि ने विनम्रतापूर्वक कहा है कि—

> अहिया मुख-मुखा, गिळित उग्रहिया
> मू गिणि आखर अ मरम ।
> मोटा तणा प्रसाद कहइ महि,
> अइठउ आतम खम अधम ॥३००॥

(भावार्थ —मैंने अनेक महापुरुषो से हरि गुण सुने, सुन कर उनको हृदयगम करके पुन कविता के माध्यम से प्रकट कर दिये इसमे मेरा कुछ नही है सज्जन लोग इसे प्रसाद कहेगे तो दुष्ट लोग इसी को जूठन कहगे)

> हरि-जस रस साहस करे हालिया,
> मो पडिता ! वीनती मोख ।
> अम्हीणा तम्हीणइ आया,
> स्रवण तीरथे वयण स दोष ॥३०१॥

(मेरी कविता अनक दोषो से भरी है, पर हरि यश का सम्पर्क कर आपके कर्ण रूपी तीर्थ तक अपने दोषा को दूर करने आई है हे पडितो ! मेरी प्रार्थना पर ध्यान न देकर इसे निर्दोष कर दें)

और अत मे छद सख्या ३०३ मे कवि ने अपनी क्षतियो को स्पष्ट स्वीकार किया है—

> भलउ तिकउ परसाद भाग्ती,
> भूडउ ताइ माहरउ भ्रम ।

ऐसे भक्त कवि पर आत्मश्लाघा का दोषारोपण औचित्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरता सस्कृत के अनेक कवियो के तथा सत प्रवर तुलसीदास न भी

---

1 वेलि क्रिसन रुकमणी री' भूमिका पृ० १००–१०१ प्रकाशक हिन्दुस्तानी अकेदमी, प्रयाग सन् १९३१

अपने काव्यो मे उपयुक्त आत्मश्लाघा की परिपाटी का निर्वाह किया है तुलसीदासजी ने रामचरितमानस मे कहा है कि—

सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल, अछत तनु, साधु समाज प्रयाग॥

और

मन कामना सिद्धि नर पावा, जे यह कथा कपट तजि गावा।,
कहहिं सुनई अनुमोदन करही, ते गोपद इव भवनिधि तरही॥

———

वेलि का भाव पक्ष

पतित पावनी, पुण्य सलिला जाह्नवी जिस प्रकार संगम में यमुना और सरस्वती से तथा इसके पूर्व भी अनेक छोटी मोटी सरिताओं से मिल कर एक विशाल और भव्य रूप धारण कर सबको पावन करती हुई निरंतर प्रवहशील है, उसी भाँति वेलि की भक्तिरस रूपी सुर सरिता में शृंगार और वीर रस रूपी यमुना तथा सरस्वती और रौद्र भयानक व वीभत्स रूपी अन्य अनेक रस सरिताओं का मिलन है, जिससे उसका भाव सौंदर्य निखर उठा है और जिसमें अवगाहन से भयंकरतम अघों का विनाश हो जाता है और जिस प्रकार गंगा अंत में जाकर अपने पति महोदधि में मिल जाती है ठीक उसी प्रकार वेलि भी अनंत स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण तक पहुँचाने का अमूल्य उपाय है।

यद्यपि काव्यशास्त्रियों ने सर्वसम्मत होकर भक्ति को रस रूप में अंगीकार नहीं किया है तथापि यह निसंदिग्ध है कि वेलि का अंगीरस भक्तिरस ही है नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरत मुनि ने जिन आठ रसों की स्थापना की थी, उनमें परवर्ती आचार्यों ने संशोधन कर 'शांत' को भी रस रूप में स्वीकार कर लिया उसके पश्चात् आधुनिक युग तक यह एक अत्यंत विवादास्पद विषय रहा है कि काव्य शास्त्रीय दृष्टिकोण से भक्ति को किस कोटि में रखा जाय क्या भक्ति को भी स्वतंत्र रस के रूप में अंगीकार कर नौ के स्थान पर दस मान लिये जायं या अन्य पुरोगामी आचार्यों की भांति इसे केवल 'भाव' के रूप में स्वीकार कर संतुष्ट हुआ जाय ? आचार्य भरत ने न तो भक्ति को रस रूप में स्वीकार किया था और न भाव के रूप में ही पर, दण्डी, अभिनव गुप्त, मम्मट, विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ के सम्मुख भक्ति विषयक समुचित सामग्री थी, फिर भी काव्यशास्त्रियों ने यही प्रतिपादित किया कि भक्ति एक रस न होकर केवल 'भाव है दण्डी ने भक्ति को रस न कह कर 'प्रेयस' अलंकार कहा है[1] तो रुद्रट ने इसे कुछ उठाने और व्यापकता देने का प्रयत्न किया[2] और एक नये रस 'प्रेयान' की कल्पना की अभिनव गुप्त ने इसे एक स्वतंत्र रस न मान कर 'शांत' रस के एक अंग के रूप में स्वीकार किया है जबकि मम्मट ने इसे केवल एक भाव कह कर छोड़ दिया है

---

१ काव्यादर्श दण्डी

२ हिंदी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना —डॉ प्रेमस्वरूप गुप्त पृ २०४

'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना'—के अनुसार कुछ काव्यशास्त्रियो ने प्रेयास, दान्त, उद्धत, भक्ति, लौल्य, तथा कार्पण्य को भी रस माना है प्रेयास का अन्य नाम वात्सल्य है, जिसे काव्यप्रकाशकार ने भाव के अन्तर्गत मान लिया है टीकाकार ने लिखा है कि —'प्रेयासादि अयस्तु भावान्तर्गता इति बोध्यम। एतेनाभिलाषस्थायिको लौल्यरस श्रद्धास्थायिको भक्ति रस स्पृहास्थायिक कार्पण्याख्यो रसोऽतिरिक्त इत्यपास्तम्।' साहित्य दर्पणकार ने वत्सल को रस मानते हुये लिखा है कि 'स्फुट चमत्कारितया वत्सल च रस विदु।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी आचार्य यद्यपि भक्ति के पृथक अस्तित्व को स्वीकार नही करते फिर भी क्रमश हम एक ऐसी प्रवृत्ति को विकसित होती हुई देखते हैं, जो भक्ति को एक स्वतन्त्र रस के रूप म मानने मे अग्रसर है

वैष्णव आचार्यों ने भक्ति रस की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार कर काव्य-शास्त्रियो को सर्वथा नया दृष्टिकोण दिया है महाप्रभु चैतन्य से प्रभावित गौडीय सप्रदाय के आचार्य रूप गोस्वामी के द्वारा प्रणीत 'हरिभक्ति रसामृत सिंधु' और 'उज्ज्वलनीलमणि' का मूल विषय भक्ति रस का प्रतिपादन ही है रूप गोस्वामी के उपयुक्त ग्रथो के टीकाकार जीव गोस्वामी ने अपनी टीकाओ मे भक्ति को रस के रूप मे प्रतिष्ठित किया है रूप गोस्वामी और जीव गोस्वामी ने भक्ति रस को प्रमुख मान कर, उसके पाँच मुख्य और सात गोण भेदो के साथ प्रत्येक के स्थायी भावो को इस प्रकार माना है—

मुख्य रस	क्रमसख्या	रस	स्थायी भाव
	१	शात भक्ति रस	शात
	२	प्रीत „ „	प्रीति
	३	प्रेयान „ „	सख्य
	४	वत्सल „ „	वात्सल्य
	५	मधुर „ „	प्रियता या मधुरा रति
गौण रस	१	हास्य „ „	हास रति
	२	अद्भुत „ „	विस्मय रति
	३	वीर „ „	उत्साह रति
	४	करुण „ „	शोक रति
	५	रौद्र „ ,	क्रोध रति
	६	भयानक„ „	भय रति
	७	वीभत्स „ „	जुगुप्सा रति

भावपक्ष की दृष्टि से कविता का प्रमुख प्रयोजन [illegible]
है साहित्य दर्पणकार के 'रसात्मक वाक्य काव्य' म [illegible]

मुख्य माना है इसीलिए प्रत्यक काव्य में शास्त्र मान्य नौ या दस रसो में से किसी एक या एक से अधिक रसा का ढूढने का प्रयत्न किया जाता है इन्ही नौ या दस रसो म से रसशिरोमणि या रस राजत्व के पद के लिये पर्याप्त मतवभिन्य रहा है किसी की सम्मति मे इसका अधिकारी केवल शृंगार ही हो सकता है तो अन्य के मतानुसार करुण रस ही इसका सर्वाधिक पात्र है कोइ वीर रस का प्रबल पक्षपाती है तो किसी न अद्भुत रस के लिये भी योग्य तक प्रस्तुत किये हैं वास्तव मे यह विवाद निरथक लगता है क्योकि रस का मूल प्रयोजन तो आस्वाद है 'रस्यते आस्वाद्यते इति रस।' यह तो किसी कविता पर आधारित है कि वह स्थायी भावो को कितने अशो तक जाग्रत कर सकती है यदि शृंगारपूण कृति रति (प्रेम) जागत नही कर सकती तो शृंगार को रसराज स्वीकार कर लेने से भी काम न चलेगा इससे तो अद्भुत रस की कृति श्रेष्ट रहेगी, जिसमे साधारणीकरण की क्षमता है और जो अपने स्थायी भाव विस्मय (आश्चय) को जाग्रत कर सकता है

फिर भी जीवन मे परिव्याप्तता और वणन विस्तार के दृष्टिकोण स कई काव्यशास्त्रियो ने भक्ति रस के अभाव म शृंगार को रस राज के सिंहासन पर आसीन किया है प्रबध काव्य की दृष्टि से कई रस ममना ने शृंगार, वीर तथा शात रस को अगी रस के रूप मे स्वीकार किया है यहा पर पुन ध्यान आकपण के लिये निवेदन है कि तब तक भक्तिरस को स्वतन्त्र रस के रूप मे अगीकार न कर लेने के अभाव मे ही यह निणय लिया गया था पर अब जबकि हमारे सम्मुख भक्ति का अपार साहित्य है और रस की दृष्टि से उसके स्थायीभाव व्यभिचारी भाव विभाव (आलम्बन उद्दीपन) और अनुभाव आदि पर गहनता स विचार विमश हो चुका है तब हम भक्तिरस को भी स्वतन्त्र रस के रूप मे प्रतिष्ठित करने मे हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये भक्ति रस के रसाग इस प्रकार माने गये हैं—

स्थायी भाव— भगवान विषयक प्रेम (रति)[1]

विभाव— (१) आलम्बन विभाव—इसके अन्तगत विषय रूप भगवान (राम कृष्ण) और आधार रूप मे प्रिय भक्तो का समावश है

(२) उद्दीपन विभाव—भगवान के गुण तथा भक्त और कृष्ण गत भक्त विषयक रति

अनुभाव— भक्तो की भावानुभूति के परिणामस्वरूप होन वाली चेष्टाएँ इसम परिगणित हैं जसे प्रेमजन्य अश्रु और रोमाच

---

१ हिन्दी कृष्णभक्ति साहित्य में रस परिकल्पना—डॉ प्रेमस्वरूप गुप्त पृ १७६ १७७

व्यभिचारी भाव—इन्हें सचारी भाव भी कहते हैं इनकी सख्या काव्यशास्त्रानुसार तैंतीस ही है जैसे निर्वेद, हर्ष, दैन्य, चपलता, आवेग और तर्क आदि,

सात्विक भाव— कृष्ण सबधी भावो से परिलुप्त चित्त को सत्व नाम दिया गया है यहाँ भी आचार्य भरत का अनुसरण किया गया है और आठ सात्विको को मान्य रखा गया है—स्तम्भ, स्वेद, रोमाच, स्वर भग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय

ऐसे भक्ति रस को 'रसो वै स ' तथा 'आनदो ब्रह्म' कह कर पुकारा गया है आनद तीन प्रकार के होते हैं—विषयानद, काव्यानद और ब्रह्मानद काव्यानद को ब्रह्मानद का स्वरूप न कह कर आचार्यो ने इसे ब्रह्मानद सहोदर कहा है

शृगार वीर, वीभत्स आदि अन्य रसो के होते हुये भी वेलि एक भक्तिमय काव्य है जिसमे अथ से इति भक्त का दैन्य उसकी प्रशक्ति और श्रद्धा व्यक्त की गई है तथा सम्पूर्ण काव्य मे कवि यह न भूला है कि वह किस लोकोत्तर शक्ति का वर्णन कर रहा है वास्तव मे भक्ति रस की प्राणधारा वेलि की शिराओ मे अत सलिला की भाँति बही है इतना होते हुये भी वेलि पर का यह आरोपण कि वह एक शृगारमयी रचना है, विवेच्य है पृथ्वीराज की वेलि के प्रारभिक छदो मे ही—

श्री वरणण पहिलउ कीजइ तिणि
गथियइ जेणि सिंगार ग्रथ ।।८।।

के स्पष्ट उल्लेख से सहज ही एक भ्रम उभर आता है कि वेलि एक शृगारपूर्ण कृति ही है यही नही कवि ने इसी छद (स ८) की प्रथम पँक्तियो मे अपने मत की परिपुष्टि के लिये सुकदेव व्यास आदि का उदाहरण दिया है—

सुकदेव व्यास जयदेव सारिखा
सुकवि अनेक ते एक सथ ।
श्री वरणण पहिलउ कीजइ तिणि
गूथियइ जेणि सिंगार ग्रथ ।।८।।

इसके पश्चात् छद स २७८ तक कवि ने कही भी इस बात का उल्लेख तक नही किया है कि यह एक शृगारिक रचना है इस छद सख्या मे भी कवि ने स्पष्ट उल्लेख न कर वेलि के माहात्म्य का दिग्दर्शन कराते हुये इसमे प्रयुक्त रसो की चर्चा की है—

हरि समरण, रस समभण हरिणाखी,
चातुरण खळ खगि खेत्रि चढि ।

वइमे सभा पारकी बोलण
प्राणिया ! वछइ ते वेलि पढि ।।२७८।।

(हे प्राणी ! यदि तू भगवान का भजन करना, सुदर रमणी के रस को समझना, युद्ध भूमि मे चढ कर शत्रुग्रो को तलवार से काटना और दूसरे लोगो की सभा मे बैठ कर बोलना चाहता है तो वेलि का पाठ कर)

इस प्रकार कवि ने भगवान के नाम स्मरण के द्वारा भक्ति, सुदर मृगनयनी रमणी को समझने के द्वारा शृ गार और युद्धभूमि मे चढ कर तलवार से शत्रु का काटने के द्वारा वीर रस की प्रतिष्ठा के साथ साथ सभा चातुय की ओर रसिक पाठका का ध्यान आकर्षित किया है छद सख्या आठ से वेलि केवल शृ गार रस का ग्रथ घोषित होता है जबकि छद सख्या २७८ से इसमे भक्ति, शृ गार तथा वीर— इन तीनो रसो का समावश है फिर इसी छन्द मे 'हरि समरण को प्राथमिकता देकर कवि न छद सख्या आठ मे उल्लिखित 'गूथयिइ जेणि शृ गार ग्र थ' का स्पष्ट विरोध कर दिया है महात्म्य म वेलि के नित्य पठन से भुक्ति और मुक्ति दोना प्राप्त होते हैं ऐसा कवि ने अनेक बार श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है वेलि यदि मूलत शृ गारपूर्ण ग्रथ होता तो न तो इसका ग्रथकर्ता ही इसके नित्य पठन की चर्चा करता न लोग इसे अपने पाठपूजा मे रखते और न तत्कालीन भक्त और इतिहासकार इसको उन्नीसवाँ पुराण आदि कह कर सबोधित कर अपन श्रद्धा-सुमन चढाते ऐसी दशा म वेलि का अगीरस शृ गार ही है—मानने का कोई औचित्य नही दिखलाई पडता

अन्य नदियो को अपने मे आत्मसात करके उनके सगम के पश्चात् जिस प्रकार केवल गगा ही शेष रह जाती है, ठीक उसी भाँति अनेक रसो के अवस्थित होने पर भी वलि का अगीरस तो भक्तिरस ही है गौण रसो म शृ गार के अतिरिक्त वीर रौद्र, वीभत्स आदि का सुदर निरूपण वेलि मे हुआ है

वीर रस

प्रसगोचित उसम वीर रस की जो श्रेष्ठ भाषाभिव्यजना हुई है, केवल इसी एक कारण स वीर रस को वेलि का प्रमुख रस स्वीकार नहीं किया जा सकता न तो कवि का आशय ही किसी वीर काव्य के निर्माण का था और न ही समूचे काव्य क पठन क पश्चात् यह ध्वनि ही निकलती है तेरह छन्दा मे युद्ध वर्षा रूपक म भक्त कवि ने निश्चय ही अद्भुत शौय वर्णन किया है जिसके पठन स भुजाएँ फडक उठती हैं और आँखें तन जाती हैं तथा मुह तमतमा जाता है पर यह सब तो शत्रुदलन के हेतु था, जो नायक की गरिमा के लिय आवश्यक था

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है इसमें आलम्बन युद्ध क्षेत्र, सैन्य, सेना हल और रणवाद्य है तथा उद्दीपन है युद्धवीर अगो का फडकना अनुभाव है तो गव,

हर्ष, उत्कठा इसके सचारीभाव हैं वेलिकार ने वेलि मे वीर रस को इन अगो का सुदर चित्रण किया है

रुक्मिणी के पत्र के पढने के साथ ही कृष्ण तुरत अकेले रवाना हो जाते हैं तथा हरगौरी के मदिर के बाहर विशाल सेना के सम्मुख रुक्मिणी का कर ग्रहण कर रथ म बिठान के पश्चात् जिस ओजमयी वाणी से एकत्रित वीर समुदाय को,

> वाहर रे वाहर कोई छै वर
> 'हरि हरिणाखी जाइ हरि'

के शब्दो द्वारा शत्रु सैन्य को ललकारते हैं, वही युद्ध जनित उत्साह स्थायीभाव है

बलराम का सेना लेकर प्रयाण, उनका सैन्य सचालन, दोनो ओर की सेनाओ का भीषण कोलाहल और रणवाद्यो का बजना, वीर रस के आलम्बन हैं—

> चढिया हरि सुणि सकरखण चढिया
> कटक वध नहु घणउ किध ।
> मेक उजागर कळहि ग्रेहवा
> साथी सहु आखाड सिध ।।७४।।

(बलराम ने जब सुना कि कृष्ण अकेले ही हमला करने गये हैं तो वे चढकर चले उन्होने बहुत कम सेना को साथ मे लिया क्योंकि एक तो वे स्वय युद्ध करने म पारगत थे और दूसरे जितन साथी साथ मे थे, व सब के सब युद्ध करन म सिद्ध हस्त थे)

> *कँपिया उर काइरा असुभकारियउ*
> गाजति नीसाण गडडइ ।

(नगाडो की गडगडाहट से कायरो के हृदय काँप उठे जसे वादलो की गर्जन मात्र से अशुभकारी व्यापारी काँप उठते हैं)

दोनो सेनाओ के मरने मारने पर तुले हुये और अस्त्र शस्त्रा से सज्जित सनिकगण ही उद्दीपन हैं ।

युद्ध-वर्षा रूपक कवि की मौलिक कल्पनाओ द्वारा प्रस्तुत सुदर शब्द चित्र है और इसमे कोई अत्युक्ति नही है कि वे इस साग रूपक अलकार द्वारा अपने उद्देश्य मे पूणत सफल हुये हैं दोनो सेनाओ के चलने से धूल उठी आकाश धूल से भर गया और धूल से ढका हुआ सूय तो ऐसा दिखाई पडता था मानो वातावत पर किसी वृक्ष का पत्ता चढा हुआ हो—

ऊपडी ग्जी मभि ग्ररक ग्रेहवउ
वातचक्र सिरि पत्र वसति ।

वीर वेश ग्रौर वीर रसोन्मत्त, कवच ग्रौर शिरस्त्राण धारण की हुई दोनो सनाये ऐसी लगती थी माना काल रूपी दो काली घटाएँ उमड घुमड कर एक दूसरे के ग्रामने सामने खडी हो—

कठठी वे घटा करे काळाहणि,
सामुहे ग्रामुह–सामुहइ ।

इतने मे युद्ध प्रारभ होगया सनिकगणो की हुकार ग्रौर ललकार के साथ विविध प्रकार के ग्रस्त्रो ग्रौर शस्त्रो का प्रयोग होने लगा कवचो से टकरा कर तीर एस गिरने लगे जसे वर्षा की बूद समुद्र के जल मे गिरती हो लडती लडती दोना सेनाएँ ग्रब ग्रत्यधिक समीप ग्रा जाने के कारण दूरगामी हथियारों का प्रयोग बद होगया ग्रौर मुठभेड शुरू हो गई युद्धभूमि सतप्त हो उठी धडो पर तलवारो के वार इस प्रकार चमक रहे थे जस वर्षाकाल म घनशिखरा मे बिजलिया का चमकना—

कळकळिया कुत किरण कळि ऊकळि
वरसत विसिख विवरजित वाउ ।
धड धड धडकि धार धारूजळ
सिहर सिहर समरवई सिळाउ ।।११६।।

युद्ध मे चौसठ योगिनिया हर्षो मत्त हो ऐसी कूद रही थी जसे वर्षाकाल मे योगिनियाँ (वुदवुदे) नाचती हो माथे कट कट कर गिर रहे थे ग्रौर कवध उठ उठ कर लड रह थे [1] श्रीकृष्ण ग्रौर शिशुपाल ने शस्त्रो की भडी लगादी जस वर्षाकाल म वर्षा की भडी लग जाती है वर्षा की भडी से पानी बहने के समान शस्त्रो की भडी स रक्त बह चला ।

बलराम न युद्धभूमि म ग्रपने सैनिको को उत्साह दिलवा कर जल्दी जल्दी एसे हल (वलराम का ग्रायुध) चलाया जसे वर्षा के बाद कृषक ग्रालस्य न कर खेत म हल चलाते हैं महाबली बलराम न ग्रपनी भुजाग्रो के बल से तलवार द्वारा शत्रुग्रो के सिरो को काट काट एस ढर लगा दिय जसे किसान हँसुग्रो द्वारा फसल को काट काट कर बालो का ढर लगा देता है ग्रौर जस किसान खलिहान मे बालो को इकट्ठा

---

1 श्री नरोत्तमदास स्वामी ने अपनी टीका में घ्रु (मरनत्र) के कम्कर गिरजाने और कबध के लडने की तुलना घ्रु (ध्रुव) नक्षत्र के अस्त हो जाने पर केतु नक्षत्र के उदय हो जान से की है जो छद (१२१) में नहीं है ध्रुव तो कभी अस्त ही नहीं होता

कर उनको पैरा से या बैलो से कुचलवाता है ठीक उसी तरह बलराम ने कभी अपने चरणो से तो कभी घोडो के खुरो से शत्रु सेना को कुचल डाला—

> रिण गाहटतइ राम वळा रिण,
> थिर निज चरण सु मेढि थिया ।
> फिरि चढियइ सघार फेरतो,
> केकाणा पाई सुगह किया ।।१२७।।

रुक्मी, शिशुपाल और जरासध की सयुक्त सेनाओ को पराजित कर, कृष्ण और बलराम विजयानद मे द्वारिका लौटे जहाँ सारे नगर ने बडे धूमधाम से उनका स्वागत किया

बीभत्स रस

बीभत्स का स्थायी भाव जुगुप्सा है युद्ध मे लाशो का ढेर लगना, अग प्रत्यगो का कटना और विद्रूप बनना, रुधिर के परनाले बहना आदि दृश्य मन म घृणा का भाव जागृत करते हैं—

> ऊजळिया धारा ऊवडियउ,
> परनाळे जळ रहिर पडइ ।

बलराम के घातक शस्त्रो के सचालन स शत्रुओ के शरीरो मे अनेक घाव हो गय प्रत्येक घाव से रक्त के फुहारे छूटने लग—

> घटि घटि घण घाउ, घाइ-घाइ रत गण,
> ऊच छिद्र उछळई अति ।

और बलराम ने तो तलवार के वारो से युद्ध भूमि म शत्रुओं के सिरो का ढेर लगा दिया—

> विजडा मुँहे वेढतइ बळिभद्रि
> सिरा पुजि कीधा समरि ।

युद्धभूमि मे हाथो मे खप्पर लेकर चौसठ प्रकार की योगिनिया का उन्मत्त हो, नृत्य करना, गिद्धनिया का नोच नोच कर लाशो का विदीर्ण करना, प्रसन्न बदन होकर रक्त पीना अथवा मास भक्षण करना आदि बीभत्स रस के विभाव हैं असह्य पीडा के कारण घायल सनिको का कराहना तथा अत म मृत्यु को प्राप्त होना, रस के व्यभिचारी भाव हैं

यह ठीक है कि वेलि में वीभत्स रस वीर रस के सहायक के रूप मे प्रस्तुत किया गया हैं, लेकिन उसे इस रूप मे न लेकर उसकी स्वतत्र सत्ता की दृष्टि से विचार करें तब भी वह अपने आप मे पूण है वैसे युद्ध मे वीभत्स अवश्यभावी है

वेलि मे वीभत्स रस का वणन छद सख्या १२० से १२८ तक म किया गया है

रौद्र रस

प्रसगानुसार वेलि म समुचित रूप से रौद्र रस को भी स्थान मिला है युद्ध भूमि दया का स्थल न होकर निममता व क्रोध का स्थान है शत्रु तथा उसके अपराधों को देख कर क्रोध आना स्वाभाविक है युद्ध-वर्षा रूपक के प्रथम छद मे क्रोधित हो, दोनो सेनायें आमन सामने खडी हो गई —

> कठठी वे घटा करे काळाहणि,
> सामुहे आमुहे–सामुहइ ।

रुक्मकुमार की ललकार सुन कर भगवान का क्रोधित होना तथा भौंहे चढा कर हाथ मे धनुष लेकर प्रत्यचा पर बाण चढाना, और गुस्से मे आकर देखते देखते ही रुक्मी के सारे आयुधो को नष्ट कर देना रौद्र रस के अनुभावो के सुदर दृष्टान्त हैं—

> रुकमइयउ पेखि तपत आरणि रणि,
> × × ×
> बिळकुळियउ वदन जेम वाकारियउ
> सग्रहि धनुख पुणच पर सधि ।
> क्रिसन रुक्म-आउध छेदण कजि
> वेलखि अणी मूठि द्रिठ बधि ।।१३१।।

अन्य रस

अन्य गौण रसो के अन्तर्गत भयानक, अद्भुत तथा हास्य रस का भी वेलि म समावेश हुआ है पर रसागो के अभाव मे उनका पूण प्रस्फुटन नहीं हो सका है नगाडो की गडगडाहट के साथ कायरो के हृदयो का प्रकम्पित होना, आदि भयानक रस के उदाहरण हैं दृष्टव्य है—

> कंपिया उर कायरां असुभकारियउ
> गाजति निसाण गडडइ ।

वेलि मे तीन चार ऐसे चमत्कारो का वणन है, जो अद्भुत रस को उत्पन्न करते हैं सवप्रथम ब्राह्मण का रात्रि हो जाने से कुदनपुर मे सोना और प्रात काल मे जगते ही अपने आपको द्वारिका म पाना—

साझ सोचि कुदणपुरि सूतउ,
जागिउ परभाते जगति ।

स्वय ब्राह्मण को विश्वास नही हाता वह आश्चय चकित है और कहता है कि कही यह स्वप्न तो नही है—

सप्रति अे किना, किना अे सुहिणउ ?
आयउ हूँ अमरावती

दूसरी बार अदभुत रस की प्राप्ति हमे उस समय होती है जब रुक्मी आदि अन्य राजाओ की सेना अम्बिका मदिर के बाह्य प्रागण मे रुक्मिणी के अनुपम सौंदय से मत्र मुग्ध हो, कुछ क्षणो के लिये तो पाषाणवत् हो जाती है—

मन पगु थियउ, सहु सेन मूर्छित,
तह नह रही सपेखतइ ।
किरि नीपायउ तदि निकुटीअ
मठ पूतळी पखाण मइ ।।११०।।

तृतीय बार अद्भुत रस का बोध हमे कृष्ण द्वारा रुक्मी के काटे हुये बालो को फिर से उत्पन्न कर देने के समय होता है सर्व समर्थ भगवान के लिये असभव क्या है ?—

क्रित करण अकरण अनथा करण,
सगळे ही थोके ससमथ्य ।
हा लिया जाइ लगाया हुता,
हरि साळइ सिरि थापि हथ्थ ।।१३७।।

समग्र कथा मे हास्य रस की सष्टि दो अनेक स्थानो पर होती है, पर रसागो से परिपुष्ट न होन के कारण केवल उसकी झलक सी दिखाई दती है एक तो श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मी के केशो को काट कर उसे विद्रूप बनात समय सहज ही मुस्कराहट की हलकी रेखा सी मुख पर खिच जाती है युद्ध मे यह कैसा अभिनव कृत्य ! इसके पश्चात् हास्य रस का एक स्थल और आता है जब सखियाँ लाज लोह लगरे लगायइ' वाली रुक्मिणी को भगवान के केलिगृह मे पहुचाकर और द्वार बद कर एक दूसरे की ओर देख कर हसाहस करती हैं—

यह ठीक है कि वेलि मे वीभत्स रस वीर रस के र
किया गया हैं, लेकिन उसे इस रूप मे न लेकर उसकी स
विचार करें तब भी वह अपने आप मे पूण है वैसे युद्ध मे

वेलि मे वीभत्स रस का वणन छद सख्या १२९
गया है

रौद्र रस

प्रसगानुसार वलि म समुचित रूप से रौद्र रस
भूमि दया का स्थल न होकर निममता व क्रोध का स्था
को देख कर क्रोध आना स्वाभाविक है युद्ध वर्षा रूप
दोनो सेनायें आमन सामन खडी हो गई —

> कठठी व घटा करे काळाहणि,
> मामुहे आमुहे–सामुहइ ।

रुक्मकुमार की ललकार सुन कर भगवान
कर हाथ म धनुष लेकर प्रत्यचा पर बाण चढाना
ही रुक्मी के सारे आयुधो को नष्ट कर देना
दृष्टात हैं—

> रुक्मइयउ पेखि तपत आरि
> × ×
> बिळकुळियउ वदन जेम वाका
> सग्रहि धनुस पुणच पर
> त्रिसन रुक्म–आउध छेदण
> वेसाम्र भणी मूठि द्रिट

अन्य रस

अन्य गौण रसा क अन्तगत भयान
समावश हुआ है पर रसांगों के अभाव
नगाडा की गडगडाहट के साथ कायरों के
रस के उदाहरण हैं दृष्टव्य है—

> कोपिया उर कायरा क
> कायनि निग

सामीप्य के साथ साथ चित्त की एकता भी आवश्यक है ठीक इसके विपरीत नायक-नायिका के बीच अपरिमित प्यार और गाढानुराग होते हुये भी सयोगवशात् समागम न होने पर वियोग शृगार होता है पूर्वराग मान, प्रवास और करुण—इसके ये चार प्रकार हैं यही एक मात्र रस है जहाँ इसके उद्दीपन वशिष्ट्य लिय हुये हैं सयोगावस्था म जो उद्दीपन सयोग को उद्दीप्त कर सुख का सृजन करते हैं वियोगावस्था मे, वे ही उद्दीपन विप्रलभ को उद्दीप्त कर दुख को उद्दीप्त करते हैं

सयोग-वर्णन के पूर्व वियोग वर्णन प्राचीन परिपाटी रही है वेलिकार न इसी परपरा का पालन किया है क्योंकि कथा को देखते हुये वियोग की सभी अतदशाओ का वर्णन कवि को न तो अभीष्ट ही था और न अवकाश ही था इसीलिये वेलि मे वियोग शृगार के दो तीन दृष्टांतो को छोड कर सर्वत्र सयोग शृगार का ही प्रत्युत्तम वर्णन हुआ है ऊपर वियोग शृगार के जिन चार प्रकारो का वर्णन किया गया है उनमें से 'पूर्वानुराग' और 'मान' को छोड कर अन्य दो 'प्रवास और करुण' का वर्णन तो नाम भर के लिये कवि मे हुआ है मान' का भी केवल सकेत मात्र मिलता है इस प्रकार हम देखते हैं कि वेलि म विप्रलभ शृगार के केवल एक प्रकार 'पूर्वानुराग' का ही वर्णन हुआ है पूर्वानुराग अथवा पूर्वराग के चार भेद होते हैं—(१) प्रत्यक्ष दर्शन, (२) चित्र दर्शन, (३) गुण श्रवण और (४) स्वप्न दर्शन 'ढोला मारू रा दूहा' म मारू को स्वप्न मे ढोला के दर्शन हुये और वह उस पर मुग्ध हो गई—

> असइ आरखइ मारवी, सूनी सेज बिछाइ।
> साल्हकँवर सुपनइँ मिल्यउ, जागि निसासउ खाइ॥

रामचरितमानस म प्रत्यक्ष दर्शन का एक भव्य चित्र तुलसीदासजी ने प्रस्तुत किया है एक ओर से राम और दूसरी ओर से सीता का राज्यप्रासाद की फुलवारी मे आना और दोनो की दृष्टि का मिलना सीता ने राम की अवर्णनीय शोभा को हृदयगम कर लिया—

> लोचन मग रामहि उर आनी, दीन्हे पलक-कपाट सयानी।

इधर मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने सीता को देखा तो राम के अग फडकने लगे—'फरकहिं सुभग अग सुनु भ्राता' जिन्होने स्वप्न मे भी पर नारी को नही देखा, उनके मन मे यह मोह कैसा ? 'मोह अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी।'

इस सात्विक प्रत्यक्ष दर्शन के विपरीत जायसी के पदमावत मे बादशाह ने जसे ही दर्पण मे पद्मावती की एक झलक देखी तो मूर्छित हो गया इसके पूर्व भी राघव के द्वारा पद्मिनी के गुण श्रवण कर बादशाह अलाउद्दीन मूर्छित हो गया था—

चौकि चौकि ऊपरि चित्रसाळी
हुइ रहियो कहकहाहट ।।१७१।।

इसके पूर्व कृष्ण रुक्मिणी के मनोभावों को समझ जब सखियाँ भौंहों से हसती हुई केलिगृह से बाहर निकली तो हास्य का एक मधुर वातावरण छा जाता है—

हसि हसि भ्रू हे, हेक हेक हुइ
गृह बाहरि सहचरि गई ।।१७२।।

श्रृंगार रस

नाट्यशास्त्र के आचार्य भरत ने कहा है कि ससार मे जो कुछ पवित्र, मेध्य (उत्तम) और दर्शनीय है वही श्रृंगार है—'यत्किचिल्लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वल दर्शनीय वा तत श्रृंगारेणापमीयते ।' विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण' मे श्रृंगार का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

श्रृंग हि मन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुक
उत्तम प्रकृतिप्रायो रस श्रृङ्गार इष्यते ।

(कामदेव के उद्भेद (अकुरित होने) को श्रृंग कहते हैं उसकी उत्पत्ति का कारण, अधिकाश उत्तम प्रकृति से युक्त रस श्रृंगार कहलाता है)

श्रृंगार रस मे स्त्रीपुरुष विषयक प्रेम का वर्णन रहता है, जिसे साहित्य मे रति कहते है भोजराज ने अपने 'श्रृंगारप्रकाश' मे श्रृंगार को ही एक मात्र रस माना है यहा तक कि साख्य दर्शन से प्रभावित होकर उन्होने अहकार को भी श्रृंगार का पर्याय स्वीकार किया है यदि कोई कवि श्रृंगारी होगा तो सारा जगत रसमय हो जायेगा और विपरीत इसके यदि कवि अश्रृंगारी हुआ तो सब कुछ नीरस हो जायेगा श्रृंगार की व्यापकता और आस्वाद की उत्कृष्टता के कारण ही आचार्यों ने इसे रसराज की सज्ञा से सबोधित किया है रति इसका स्थायीभाव है नायक और नायिका (प्रेमी और प्रेमीपात्र) इसके आलम्बन हैं अनुराग शून्य वेश्या को छोडकर सभी नायिकाओ की गणना आलम्बन विभाव के अन्तर्गत होती है सुदर प्राकृतिक दृश्य, सुगध, चदन भ्रमर चाँदनी पुष्प, सगीत, चद्रमा और वसत ऋतु आदि इसके उद्दीपन हैं अवलोकन (अनुरागपूर्ण भकुटिभग और कटाक्ष) तथा स्पर्श आदि इसके अनुभाव हैं स्मृति, हर्ष, लज्जा मोह आवेग, रोमाच, चचलता, उत्कठा आदि इसके सचारी भाव हैं

श्रृंगार के दो भेद हैं—(१) सयोग श्रृंगार और (२) वियोग अथवा विप्रलम्भ श्रृंगार प्रेम मे निमज्जित होकर परस्पर दर्शन आलिंगन, चुबन आदि रति के उपभोग से सयोग श्रृंगार की व्यजना होती है इस रस के लिये नायक नायिका के

सामीप्य के साथ साथ चित्त की एकता भी ग्रावश्यक है ठीक इसके विपरीत नायक-नायिका के बीच अपरिमित प्यार और गाडानुराग होते हुय भी सयोगवशात् समागम न होने पर वियोग शृगार होना है पूवराग मान, प्रवास, और करुण—इसके ये चार प्रकार हैं यही एक मात्र रस है जहाँ इसके उद्दीपन वशिष्ट्य लिये हुय हैं सयोगावस्था मे जो उद्दीपन सयोग को उद्दीप्त कर सुख का सजन करते हैं वियोगावस्था म, वे ही उद्दीपन विप्रलभ को उद्दीप्त कर, दुख को उद्दीप्त करते हैं

सयोग-वणन के पूव वियोग वणन प्राचीन परिपाटी रही है बेलिकार ने इसी परपरा का पालन किया है क्योकि कथा को देखते हुये वियोग की सभी ग्रतदशाओ का वणन कवि को न तो ग्रभीप्ट ही था और न ग्रवकाश ही था इसीलिये वेलि मे वियाग शृगार के दो तीन दृष्टातो को छोड कर सवत्र सयोग शृगार का ही ग्रत्युत्तम वणन हुआ है ऊपर वियोग शृगार के जिन चार प्रकारा का वणन किया गया है उनमे से' पूर्वानुराग' ग्रौर 'मान' को छोड कर ग्रन्य दो 'प्रवास ग्रौर करुण का वणन तो नाम भर के लिये वेलि मे हुआ है मान' का भी केवल सकेत मात्र मिलता है इस प्रकार हम देखते हैं कि वेलि मे विप्रलभ शृगार के केवल एक प्रकार 'पूर्वानुराग' का ही वणन हुआ है पूर्वानुराग ग्रथवा पूवराग के चार भेद होते हैं—(१) प्रत्यक्ष दशन, (२) चित्र दशन, (३) गुण श्रवण ग्रौर (४) स्वप्न दशन 'ढोला मारू रा दूहा मे मारू को स्वप्न मे ढोला के दशन हुये ग्रौर वह उस पर मुग्ध हो गई—

> ग्रसइ ग्रारखइ मारुवी सूती सेज विछाइ ।
> साल्हकुँवर सुपनई मिल्यउ, जागि निसासउ खाइ ।।

रामचरितमानस म प्रत्यक्ष दशन का एक भव्य चित्र तुलसीदासजी ने प्रस्तुत किया है एक ग्रोर से राम ग्रौर दूसरी ग्रोर से सीता का राज्यप्रासाद की फुलवारी मे ग्राना ग्रौर दोनो की दृष्टि का मिलना सीता ने राम की ग्रवणननीय शोभा को हृदयगम कर लिया—

> लोचन मग रामहि उर ग्रानी, दीन्हे पलक-कपाट सयानी ।

इधर मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने सीता को देखा तो राम के ग्रग फडकने लगे—'फरकहि सुभग ग्रग सुनु भ्राता' जिन्होने स्वप्न मे भी पर नारी को नही देखा, उनके मन मे यह मोह कसा ? 'मोह ग्रतिसय प्रतीति मन केरी । जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी ।'

इस सात्विक प्रत्यक्ष दशन के विपरीत जायसी के पदमावत मे बादशाह न जसे ही दपण मे पदमावती की एक झलक देखी तो मूछित हो गया इसक पूव भी राघव के द्वारा पद्मिनी के गुण श्रवण कर बादशाह ग्रलाउद्दीन मूछित हो गया था—

राघौ जौं धनि वरनि सुनाइ ।
सुना साह मुरछा गति आई ।।

हीरामन तोता न जब पद्मावती के अपूव रूप का वणन किया तो रत्नसेन भ्रमर की भाँति आकर्षित हो गया—

हीरामनि जौ कँवल बखाना । सुनि राजा होइ भँवर लुभाना ।
आग आउ पखि उजियारे । कहहि सो दीप पतग के बार ।।

रूपनगर की राजकुमारी चचल ने रत्नसिंह का चित्र-दशन किया तो वह उसके वृषभकध, उन्नत ललाट और कातिमय मुखमण्डल से अत्य त प्रभावित हो मुग्ध हो गई

वेलिकार ने वेलि मे रुक्मिणी के पूवराग का आधार उसका शास्त्राध्ययन बतलाया है अनेक ग्रथो और पुराणो में वर्णित श्रीकृष्ण के सौदय और महिमा विप यक सामग्री का पठन कर वह न केवल श्रीकृष्ण की ओर आकृष्ट होती है बल्कि उ हे पति रूप मे पाना चाहती है गुण श्रवण से प्रेरित होकर, इच्छित वर प्राप्त करने के लिय वह हरगौरी का व्रत रखती है वह चाहती है कि श्रीकृष्ण से उसका प्रेम मजिष्ठा के रग की भाति प्रगाढ बना रहे मजिष्ठा (मजीठ) का राजस्थानी समाज म बडा सम्मान है राजस्थानी महिलायें आज भी इसे अपने चूडे पर लगाती हैं उनका यह मानना है कि मजिष्ठा के रग की भाति उनका पति प्रेम भी प्रगाढ बना रहे

द्वारिका मे ब्राह्मण के मुख से जब श्रीकृष्ण रुक्मिणी के सौदय और उसकी प्रगाढ भक्ति के बारे मे सुनते है तो वे इतन गदगद व रोमाचित हो जाते हैं कि पत्र तक नही पढ सकत और ब्राह्मण को ही सदेश वाचन के लिये लौटा देते है—

आणद लखण रोमाचित आसू,
वाचत गदगद कठ न वणइ ।
कागळ करि दीधउ करुणाकरि,
तिणि तिणि हि ज ब्राह्मण तणई ।।५७।।

जायसी के पदमावत अथवा रीतिकालीन अ य कवियो द्वारा वर्णित पूवअनु राग जहाँ ऊहात्मक अधिक हो गया है वहाँ वह मर्यादा की सीमाओ का उल्लघन भी कर गया है, लकिन वलिकार ने मयादा मे रह कर पूव राग के चित्र को बडा स्वाभाविक व सयत भाषा में निरूपित किया है

तीन दिन बीत गये हैं ब्राह्मण सदेश का उत्तर लेकर अभी तक द्वारिका से लौटा है और इधर शिशुपाल दल बल के साथ बारात लकर आ पहुँचा है

रुक्मिणी अत्यत चिंतित है भगवान तो भक्त की आत पुकार सुन कर तुरत दौडे आते हैं इस बार इतनी देर कैसे की ? चिंतातुर रुक्मिणी की प्रतीक्षा प्रतिक्षण बढती जाती है, फिर उन्माद की अवस्था तक नही पहुँचती—

रहिया हरि सही, जाणियउ रुक्मिणी,
कीध न इतरी ढील कई।
चिंतातुर चिति इम चितवंती,

और इतने मे शुभशकुन रूप छीक हुई 'थई छींक तिम धीर थई' रुक्मिणी का मुरभाया हुआ मुख कमल खिल उठा और वह आश्वस्त हो जाती है

ब्राह्मण को आते देख कर तो रुक्मिणी के हृदय में उथल पुथल मच गई हृदय सागर म भावोर्मियो की बाढ सी आ गई कृष्ण के समाचार जानने की तीव्र उत्कठा थी, पर गुरुजनो और सहेलियो के बीच अपना मुख खोले तो कसे ? न रहा ही जा सकता था और न कहा ही रुक्मिणी के इस द्विधापूण चित्त का कवि ने सुदर और मनोवज्ञानिक चित्र अकित किया है—

चळपत्र थिउ दुज देख चित्त,
सकति न रहइ न पूछि सकति ,
ओ आव जिम जिम आसन्नो,
तिम तिम मुख धारणा तकति ।।७१।।

इसके पूव रुक्मिणी के हृदय में 'अभिलाषा' का उदय होता है वह अत्यन्त भयभीत और चिंतातुर थी अपनी इस दुखपूण अवस्था में वह रीतिकालीन नायिकाओ की भाति प्रलाप न कर केवल अश्रु मिश्रित काजल से कृष्ण को पत्र लिख देती है जो शका, विषाद, स्मृति आदि अनेक सचारी भावो से युक्त, आकुलता और विह्वलता से परिपूण एक मार्मिक चित्र है उसकी अधीरता का पता तो इसी से चलता है कि ब्राह्मण को सदेश देने के पश्चात् रुक्मिणी नही चाहती कि वह एक क्षण भी कुदनपुर में खोये—

म म करिसि ढील हवि हुये हेक मन
जाइ जादवा इन्द्र जत्र ।

अपने प्रियतम कृष्ण आगमन का समाचार सुन वह मन ही मन अति आनदित होती है चाहती है कि ब्राह्मण पर त्रिलोक लुटा दूँ, पर लाज की बेडियाँ केवल नमस्कार भर करवा कर, रुक्मिणी के हृदयस्थ भावो को परोक्ष रूप मे प्रगट कर देती है—

बभण मिसि वदे, हेतु सु बीजउ

विवाहापरात प्रथम रात्रि मिलन के प्रसग पर विरहातुर रुक्मिणी को एक अलग कक्ष म बिठला कर वेलिकार ने कृष्ण की आतुरता का जो सूक्ष्म और मनो वैज्ञानिक वणन किया है वह अद्वितीय है कृष्ण को प्रत्यक क्षण दूभर लगता है वे सुसज्जित केलिगृह मे चहलकदमी कर रहे हैं कभी थोडेक क्षणा के लिये शय्या पर बैठ जाते हैं तो कभी शीघ्रता से द्वार तक पहुँच कर कानो से आहट लेने का प्रयत्न करत हे—

पति अति आतुर त्रिया मुख पेखण
× × ×
अटत सेज द्वार विचि आहुटि,
स्रुति दे हरि घरि समासित।

'गागर मे सागर भरयो' की उक्ति के अनुसार वेलिकार ने यद्यपि विप्रलभ शृगार का अत्य त सक्षिप्त वणन किया है पर यह समेवण अनेक कवियो के विशद वणन से कही अधिक विलक्षण सुदर तथा साकेतिक होते हुये भी पूण है यह मार्मिकता कवि की अद्भुत क्षमता का द्योतक है जिसमे सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावो की सुदर व्यजना हुई है

सयोग श्रृगार

इसके पूव हम कह आये हैं कि 'श्री वरणण पहिलौ कीजै गू थिये जेणि सिगार ग्र थ' जसी उक्ति से स्वभावत पाठको की प्रथम प्रतिक्रिया यही होगी कि वेलि का अगी रस शृगार ही है लबे समय से चली आ रही परम्परा का निर्वाह भर करन के लिय 'श्री वरणण पहिलौ कीजै' लिख कर कवि ने साहित्य दपणकार का अनुकरण किया है— आदौ वाच्य स्त्रिय राग पु स पश्चातदिङ्गितै।' नि स न्देह शृगार के सयोग पक्ष का वणन वेलि मे उत्तम कोटि का हुआ है फिर भी इसकी प्राणधारा भक्ति है कृष्ण साक्षात परमात्मा हैं रुक्मिणी भी लक्ष्मी का अवतार है रुक्मिणी और कृष्ण का मिलन आत्मा का परमात्मा से मिलन है आत्मा और परमात्मा के मिलन पर ही स्वर्गीय सुख की प्राप्ति होती है

शृगार के आलम्बन पक्ष के नायक-नायिकाओ के लिये साहित्य शास्त्राचार्यों न कुछ आदश स्थापित किय हैं व महान गुणा स युक्त होन चाहियें पर इनके इन आदर्शो का पालन रीतिकाल मे कितना हुआ है हम भली भाँति परिचित हैं कृष्ण और राधा सामान्य नायक-नायिकाओ की भाति नग्न [illegible] ओ के पात्र बने वास्तव म रीतिकालीन कवियों के लिये नाम तो [illegible] की आड में पनी कुत्सित वृत्तियों का चित्र[illegible]

वेलि म वर्णित सयोग शृगार की रमणीयता के दशन हमे पाँच स्थलो पर होते है (१) रुक्मिणी का बाल-सौदय, (२) वयसधि, (३) यौवनावस्था का सौंदय, (४) विवाह से पूव तथा (५) विवोहापरात (प्रथम मिलनादि)

(१) रुक्मिणी का बाल सौंदय

भीष्मक राजा की छठी सतान रुक्मिणी लक्ष्मी का अवतार है वह अनिद्य सुदरी है, जिसके दशन भर से शृगार रस का स्थायीभाव रति जागृत होता है बत्तीस लक्षणो से युक्त अष्टागवती यह नायिका अपने बाल्यकाल म मानसरोवर म क्रीडा करती हुई अति सुन्दर हस शावक के समान शोभायमान है इतनी सुदर उपमा के पश्चात् भी ऐसा लगता है कि यह उपमा भी अपूण ह अतएव उसने तुरत दूसरी उपमा दी कि वह सुमेरु गिरि पर उगी हुई दो पत्ता वाली कनक लता के समान है अपने बाल्यकाल मे ही जो इतनी लावण्यमयी है पूण वयस्का होन पर उसका सौंदय कितना अतुलनीय होगा, कल्पनातीत है समशील तथा समवयस्का सखिया के साथ राजप्रासाद के प्रागण मे खेलती हुई रुक्मिणी एसी लगती है माना निरभ्र आकाश म तारागणा के साथ चद्रमा शोभित हो—

राजति राजकुवँरि राय अगणि,
उडियण बीरज अजहरि।

(२) वयसधि

आयु की दृष्टि से मनुष्य की जो चार अवस्थायें मानी गई हैं, उनके बीच की तीन अवस्थाओ को वयसधि कहते हैं पर साहित्यिक दृष्टि से वयसधि से तात्पय केवल कौमाय से यौवनावस्था मे प्रवेश करने का अवस्था से है रुक्मिणी सामान्य नारी नही है अतएव उसके अवयवो का विकास भी असामान्य है अ य बालिकाएँ जितना एक वष मे बढती हैं, उतनी वह एक मास मे बढ जाती है—

अनि वरिस वध ताइ मास वध,
ए वध मास ताई पहर वधति।

इस प्रकार वह तुरत यौवनावस्था मे प्रवश कर लेती है शशवास्था म यौवन सुपुप्त रहा है उसकी जागृति के कोई चिन्ह प्रकट नही होत और वयसधि तो माना स्वप्नावस्था के समान है जहाँ अद्ध तद्रा और अद्ध जागृति की अवस्था रहती है—

सइसव तनि सुसुपति, जोवण न जागृति
वेस सधि सुहिणा सु वरि ॥

यौवनागम के साथ ही रुक्मिणी के मुख पर अन्योन्य जसी काति छा गई थी तथा कुच जागृत हो उठे थे कवि ने इस अवस्था की अनोखी पर पावन कल्पना

कर यह प्रमाणित कर दिया है कि यौवनागो का वणन करते हुये भी यदि कृतिकार सयम से काम ले तो अश्लीलता से किनारा काटा जा सकता है अकुरित यौवना के कुच ऐसे जाग उठ हैं जस सूर्योदय के समय सध्यावदन करने के लिये ऋषिगण जाग उठे हो—

पेखे किरि जागिया पयोहर,
सजा वदण रिखेसर ॥

रुक्मिणी अब शनै शनै यौवन मे पदापण करती जारही है उसके हृदय मे शाति नही है और उसके विकसित होते हुए उरोज और नितम्बादि उसे एक विचित्र उलभन मे डाल दत हैं कहाँ तो वह समय था जब वह अपने गुरुजना के सम्मुख निरवस्त्र होकर भी नि सकोच घूमा करती थी और कहाँ आज वस्त्राभूषणो से आवेष्टित होकर भी उसे अपने विकासोन्मुख कामकेंद्रो (अगो) को छिपाने म लज्जा हो रही है यही ही नही उसे तो लज्जा करते हुये भी लज्जा हो रही है —

आगळि पितमात रमति आगणि
काम विराम छिपाडण काज ।
लाजवती अगि अेह लाज विधि,
लाज करती आवइ लाज ॥१८॥

स्वाभावाक्ति अनुप्रास और विभावना अलकारो द्वारा कवि ने क्या ही सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक वणन किया है ।

वेलिकार ने यौवन रूपी बसत का नवीन उपमाओ द्वारा अनूठा वणन किया है यौवन मे कारण रुक्मिणी के उन्नत अवयव ही पुष्पित वन है उसके नेत्र कमल सदृश हैं और उसका सुहावना स्वर पिक स्वर जसा है पलकें भ्रमर हैं और उसका सुदर अग ही मलयाचल है तथा उसका श्वासोच्छ्वास ही दाक्षिणात्य पवन है जो शीतल, मद और सुगधित है —

दळ फूलि विमळ वण, नयन कमल दळ,
कोकिल कठ सुहाइ सर ।
पापणि पख सवारि नवी परि,
भूहारे भ्रमिया भ्रमर ॥२०॥

(३) नखशिख वणन

अष्टांगवती रुक्मिणी का शृगारपूण वणन होत हुये भी वह निष्कलक है सच तो यह है कि कवि को केवल बाह्य सौंदय ही अभीष्ट नहीं है, क्योंकि वह तो क्षणभगुर व माया है तथा जो भोग वासना से पूण है जिसमें तृप्ति नहीं होती पर उसका आभास मात्र होता है रुक्मिणी तो लक्ष्मी का अवतार है अतएव देवी शक्ति है

उसके अभ्यातर सौंदय को प्रकट करना ही कवि का उद्देश्य रहा है, जिसमें इद्रियो की नही, पर आत्मा की परितृप्ति निहित है

साहित्य मे नायिकाओ के नख शिख वणन की दीघ परम्परा है वेलिकार को भी वेलि मे दो अनेक स्थल मिले हैं, जहा उसने जम कर, रुक्मिणी के नख शिख वणन नही, पर शिख-नख का वणन किया है ऐसा कर, उसने किसी परम्परा को भग नही कर देव सौंदय वणन-परम्परा का पालन किया है, जिसमे शिखा से प्रारभ कर पाँवो के नखो तक आया जाता है

अठारह पुराण, चौसठ कलाओ और चौदह विद्याओ मे पारगत रुक्मिणी को भली भाँति यह समझ म आगया कि सभी विद्याओ का मूल तो अनत भगवान कृष्ण ही है और इसीलिये उनके अपूव गुणो का श्रवण कर, उसका हृदय कृष्णानुरक्त हुआ—

सांभळि अनुराग थयो मन स्यामा

कृष्ण आगमन के शुभ समाचार का सुन अत्यत हर्षित हो, पहिले से सिखलाई हुई एक सखी से आना मगवाकर प्रियतम मिलन के मिस रुक्मिणी अम्बा माता की पूजा करने चली रवाना होने के पूव उसने सर्वोत्तम शृगार किया गुलाब जल से स्नान करने के पश्चात उसके घन व लबे काले केशो से जल कण ऐसे चू रहे थे जसे किसी माला के काले रेशमी डोरे के टूट जाने पर मोती गिर रह हो—

कुमकुमै मजण करि धौत वसत्र धरि,
चिहुर जळ लागो चुवण ।
छीण जाणि छछोहा छूटा,
गुण मोती मखतूल गुण ॥८१॥

स्नानातर अपने घने लबे काले केशो को अपनी गौर वण स्निग्ध भुजाओ पर सुकाने का उपक्रम करती हुई रुक्मिणी की कल्पना कर, कवि की वाचा फूट पडी केशराशि को सुकाती हुई रुक्मिणी ऐसी लग रही थी जैसे मन रूपी मृग को फँसाने के लिये कामदेव रूपी अहेरी ने अपना केश जाल फैला रखा हो सादृश्य का ऐसा उदाहरण अन्यत्र दुलभ है—

लागी विहु करे ध्रपणं लीध,
केस पास मुगना करण ।
मन मृग चै कारण मदन चो
वागुरि जाणे विसतरण ॥८२॥

सखियो ने उसे शृगार चौकी पर बिठलाकर, अनूठा शृगार करना प्रारम्भ किया पुष्प और मोती युक्त वेणी गूथी गई माग भरी गई पयाक्षो मे काजल आंजा

गया और उसके पश्चात रुक्मिणी ने स्वय अपने हाथो से अर्द्ध चद्राकार तिलक बनाया सखियो ने माथे म शीशफूल, कानो मे कर्णफूल तथा गले मे नाना प्रकार के रत्न जडित हार पहिनाये कचुकी धारण करने पर तो कवि को ऐसा लगा कि मानो हाथी के कुभस्थल को अ्बारी से ढक दिया गया हो अथवा कामदेव से युद्ध करने के लिये यह शभु का कवच है या फिर ऐसा लगता था मानो भगवान के स्वागतार्थ तम्बू खडा कर उसकी कसो को खीच दिया गया हो—

> इभ कभ अबारी कुच सु कचुकी,
> काच सभु काम क कळह।
> मनु हरि आगमि, मडे मडप,
> बधण दीध की वारगह ॥६०॥

गौर वर्णी भुजाओ पर मणियुक्त फुदने वाले काले रेशमी धागो से बँधे रत्नजडित भुज्बध चदन वृक्ष पर लटकते हुए मणिधरो के समान सुशोभित थे अन्य बहुमूल्य अलकारो से अलकृत और अमूल्य वस्त्रो को धारण की हुई रुक्मिणी की देह की तुलना वेलि से करता हुआ कवि कोमल कल्पना करता है कि रुक्मिणी के अगो पर शोभित अलकार पुष्प हैं उसके पयोधर फलो के सदृश हैं और उसके वस्त्र नव प्रस्फुटित कोमल पत्ते हैं दूसरी बार की गई वेलि और नारी देह की तुलना क्या हमे ग्र थ के शीर्षक की ओर दिशा निर्देश नही कर रही है ?

क्षीण कटि मे करधनी धारण करवाई गई जो ऐसी सुशोभित हुई मानो भाग्योदय रूपी सब ग्रह सिंहराशि पर एकत्रित हो गये हो पैरो म स्वर्ण निर्मित घुघरूदार नूपुरो की शोभा का वर्णन तो बडा ही मौलिक और अनूठा है वे ऐसे लग रहे थे मानो चरण कमल के मकरन्द की रक्षा करने के हेतु पीत गणवेश धारण किये हुय पहिरेदार हैं रुक्मिणी के नाक के आभूषण नथ मे लसित मोती की उपमा देते हुये कवि को पुन भगवद् गुणो का स्मरण हो आता है और एक रमणीय कल्पना करते हुये कहते हैं कि जिस प्रकार शुकदेव मुनि के मुख मे भागवत शोभित है, उसी भाँति नासिका रूपी शुक, मुख से भागवत का पठन करता है सुदर श्लिष्टार्थ व्यजना है

सोलह शृगार से सज्जित हो रुक्मिणी ने मुख म ताबूल धारण किया, जो लाल कमल सदृश मुख मे मकरन्द के समान शोभित था इस प्रकार हसगामिनी रुक्मिणी की नीलाम्बर से आवेष्टित देह और उसमे से झिलमिलाते हुय विविध रत्नों की काति ऐसी लग रही थी मानो साक्षात कामदेव ने हर्षित हो घर घर दीपमालायें जलाई हैं—

> अतर नीलम्बर अवल आभरण,
> अगि अगि नग नग उदित।

जाण सदनि सदनि सजोई,
मदन दीपमाळा मुदित ।।१०१।।

नख शिख का इतना भावपूर्ण व रम्य वर्णन करने के पश्चात् भी कवि को इसकी पूर्णता में संदेह है क्योंकि साक्षात लक्ष्मी के सौंदर्य को अंकित करने की क्षमता किसमें है ? पालकी की ओर अग्रसर गजगामिनी रुक्मिणी के लावण्य के वर्णन में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुये कवि कहता है—

चकडोळ लग इणि भाँति सु चाली,
मति त वाखाणण न मू।

धूप, दीप, कुंकुम, नैवेद्य कर्पूर, पान, गुलाबजल आदि से युक्त सखियों के बीच रुक्मिणी ऐसी लगती है मानो मूर्तिमान शील लज्जा से घिरा हुआ है 'शील पर भूषणम्'— नारी का श्रेष्ठतम आदर्श तो शील ही है लज्जा तो शील का एक बाह्य रूप है—

सखी समूह माहि इम स्यामा,
सील आवरित लाज सू ।।१०३।।

सौंदर्य में अपूर्व सम्मोहक शक्ति है रुक्मिणी अपने इसी सौंदर्य के कारण कुछ क्षणों के लिये सारे सैन्य को मूर्छित कर सकी कामदेव के पाँचो बाण (आकर्षण, वशीकरण, उन्मादन द्रावण एव शोषण) इसमें सहायक बने रुक्मिणी की चितवन, हास्य, लास्य, चाल और संकोच आदि के कारण उनको वेग मिला जिससे सैनिकों के मन पगु हो गये और वे प्रस्तर मूर्ति की भाँति हो गये —

मन पगु थियौ, सहु सेन मूरछित
तह नह रही सपेखतै ।
किरी निपायौ तदि 'नकुटिए,
मठ पूतळी पाखाणम ।।११०।।

इन सारे उदाहरणों में स्थायीभाव रति का आश्रय है रुक्मिणी तथा इसके आलम्बन हैं श्रीकृष्ण उपयुक्त नख शिख वर्णन, जिसमें कामांधता का लवलेश भी नही है और जो मर्यादा पूर्ण तथा भक्ति-उन्मुख है उद्दीपन है, जो रस की उत्कर्षता में सहायक होता है

(४) मिलन

'रव समळी कि दीठि रथ'—आवाज से भी तेज गति से चलने वाले आकाशगामी रथ में भगवान श्रीकृष्ण का मंदिर के प्रांगण में पदार्पण हुआ उन्होंने रुक्मिणी को अपने हाथ का सहारा देकर रथ में बिठलाया और द्वारिका को

प्रस्थान किया तुमुल युद्ध के पश्चात्, शत्रु सेना को पराजित कर वे द्वारिका पधार समस्त द्वारिका उनके स्वागत मे आखें बिछाये खडी है स्थान स्थान पर स्वागत द्वार बनाय गये और सारा राजमाग अबीर-गुलालादि से आच्छादित हो गया स्त्रियाँ मगल-गीत गारही है और पुष्प-वर्षा हो रही है—

मुकरमैं ओळि ओळिमैं मारग,
मारग सुरग अबीरमई ।

× × ×

सकुसळ सबळ सदळ मिरि सामळ
पुहप बूद लागी पडण ।

रुक्मिणी कृष्ण का पाणिग्रहण तो पहले ही हो चुका था अब तो मात्र औपचारिक विधि शेष थी विवाह बडे ठाटबाट से सम्पन्न हुआ और तदोपरात पति पत्नी को केलि गृह की ओर ले जाया गया केलिगृह मे मिलन के पूव केवल एक छद मे सध्या समय के क्रियाकलापो का स्वाभाविक वणन कर, रति क्रीडा के लिये कवि ने उपयुक्त वातावरण का सृजन कर दिया है—

सकुडित समसमा सध्या समय,
रति वछिति रथमणि रमणि ।
पथिक वधू द्रिठि पख पखिया,
कमळ पत्र सूरिजि-किरणि ।।१६२।।

सारे दिन के घोर परिश्रम के बाद, प्रकृति भी कमक्षेत्र से हट कर विश्राम करना चाहती है उसके क्रियाकलापा मे एक स्वाभाविक शिथिलता के साथ साथ नर्सगिक सकोच उत्पन्न होता है जिस प्रकार दिन भर अपने परदेशी प्रियतम की राह देखते देखते सध्या समय के अधकार की परिव्याप्ति के साथ विरहातुर पत्नी की दृष्टि म भी सकोच आजाता है जिस प्रकार अपने घासले की आर अग्रसर पक्षी सध्याकालीन अधेरे के कारण विवश हो बीच मे ही किसी वृक्ष पर बठ जाता है, जिस प्रकार अपनी सुवास फलाता हुआ दिनभर का प्रफुल्लित कमल सध्या समय अपनी कोमल पखुडियो का सकोचन कर लेता है तथा जिस प्रकार दिनकर की प्रखर किरणें सध्या-समय अधेरे स आच्छान्ति हो, निस्तज व सकुच जाती हैं ठीक उसी प्रकार रति क्रीडा इच्छित रुक्मिणी के हृदय म भी एक स्वाभाविक सकोच उत्पन्न होता है निश्चय ही वलिकार न प्रकृति के सकोचन की प्रक्रिया का रुक्मिणी के मनस्थित सकोच की तुलना से सुदर मनोवैज्ञानिक वणन किया है

दूसरी ओर कृष्ण जन्मजन्मातर की अपनी पत्नी रुक्मिणी का मुख देखने को बडे उत्कठित हैं उनकी हृदयस्थित रति विकसित हो रही है ठीक उसी प्रकार, जिस

प्रकार रात्रि के कारण चद्रमा की किरणें विकसित हो जाती हैं, परकिया नायिकाएँ अपने प्रेमिया से मिलने के लिये अधीर हो जाती हैं तथा निशाचरगण अपन आहार (प्राप्तव्य) को प्राप्त करने के लिये अपने अपने स्थानो से निकल पडत हैं एकात म बैठ कृष्ण प्रतीक्षा कर रहे हैं, दीपक जल उठे हैं अब प्रियतमा का और विरह असह्य है घुघरू युक्त पैरो म पडे नूपुरो की ध्वनि सुनन के लिए उनक कण लालायित हैं नेत्र द्वार की ओर लगे हैं और स्वय द्वार और शय्या के बीच घूम रहे है दरवाजे पर कान देत हैं और निराश होकर लौट कर आत हैं मिलनातुर कृष्ण की इस व्यग्र दशा का मार्मिक वणन कितने कवि कर सके हैं ?

अटत सेज द्वार विचि आहुटि,
स्रुति दे हरि घरि समाश्रित ।

पायलो की झकार ने बधाईदारो की भाँति हसगामिनी रुक्मिणी के आने का सदेश दिया कृष्ण की मिलन इच्छा तीव्रतर बन गई उधर रुक्मिणी की मनोदशा दशनीय है प्रियतम से मिलने को आतुर यौवन मद को छलकाती हुई, पर लज्जा रूपी लोह लगगे से बधी पग पग पर रुकती हुई मुग्धा की भाँति आगे बढती है और इस प्रकार कृष्ण की पियामिलन की इच्छा को तीव्रतम बनाती हुइ अत म सखिया क द्वारा वह केलिगृह की दहली तक लायी गयी कृष्ण का मुख कमल खिल उठा उनका रोम रोम पुलकित हो उठा उन्होने गोद मे लेकर रुक्मिण को शय्या पर आसीन करवाया और चिरतृप्त कृष्ण प्रिया का मुख इस प्रकार दखने लगे जस रक धन को रुक्मिणी तिरछी नजर कर कभी श्रीकृष्ण की ओर देखती तो कभी लज्जावश नतशिर हो जाती और इस प्रकार घूघट मे से अपनी भ्रू भगिमाओ द्वारा कृष्ण के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयत्न कर रही थी

अत मे दपति के नेत्र, मुख की चेष्टाओ और हृदयगत भावो को समझ कर, सब सखियाँ आखो आँखो म हँसती हुई शयनागार से निकल गइ रीतिकालीन अन्य कवियो की भाँति, लज्जा को निवस्त्र न कर, कवि ने मौन रह कर, औचित्यादश स्थापित कर सब कुछ कह दिया है, जो कवि की अपूव शब्द साधना के साथ साथ मनोविज्ञान की गजब की पकड का द्योतक है —

वर नारि नेत्र निज वदन विलासा,
जाणियौ अतहकरण जइ ।
हसि हसि भ्रूह हक हक हुई,
गृह बाहरि, सहचरि गई ।।१७२।।

बिहारी सतसई' मे इसी भाव को चित्रित करने के लिये बिहारी ने जो खुल कर वणन किया है, उसमे वह रसानद कहाँ ?—

पति रति की बतिया कही, सखी लखी मुसकाई,
कै कैं सब टलाटली अली चली सुख पाई ।।

तत्पश्चात रतिक्रीडा प्रारभ हुई इसका रसानद तो स्वय भोक्ता ही कर सकता है अन्य पुरुष द्वारा इस एकातिक क्रीडा का वणन करना कसे सभव है ? जायसी ने अपने रहस्यवादी और सूफी काव्यग्रथ पद्मावत मे जब रतिक्रीडा का खुल कर वणन किया है तो बिचारे रीतिकालीन कवियो का क्या दोष, जिनका जीवन ही स्वच्छद शृगार पर आधारित था उन्होने तो विपरीत रति तक का नग्न वणन कर दिया जबकि वेलिकार ने मर्यादा रूपी ढाल से ढँक कर तथा उसे 'अदीठ' और अश्रुत' कह कर सरस व्यजना के साथ टाल दिया—

एकाद्व उचित क्रीडा चौ आरभ,
दीठौ सु न किहि देव दुजि ।
अदीठ अश्रुत किम कहणा आव,
सुख त जाणणहार सुजि ।।१७३।।

ढोला मारू रा दूहा' मे भी इस एकातिक क्रीडा का वणन हुआ है पर वहाँ भी इसके रचयिता ने चदनवृक्ष और नागर वेल का उदाहरण देकर सात्विक भावो का सचयन कर दिया है—

ढोलउ मारू एकठा करहि कतूहळ केलि ।
जाणँ चदन रूखडई विळगी नागर वेलि ।।५५५।।

सुरतात रुक्मिणी शय्या पर ऐसी पडी हुई हैं जसे क्रीडा करत हुय गजेन्द्र द्वारा म्लान दशा को प्राप्त कमलिनी सरोवर म पडी हो उसके ललाट पर प्रस्वेद कण हैं उसका चित्त व्याकुल हैं मुख पर पीलापन है तथा नेत्रो मे लज्जा क्या ही हृदयाकषक चित्र है—

गजेन्द्र क्रीडता सु विगलित गति,
नीरासइ परि कमलिनी ।

× × ×

स्री वदन पीनता, चित्त व्याकुळता,
हिये प्रगप्रगी सेद हुई ।

श्रीकृष्ण पयन के मिस शयनकक्ष म बाहर चले गये हैं और शिथिलावस्था में शय्या पर पडी रुक्मिणी को उसकी सखियों ने आकर सभाला उस समय रुक्मिणी एसी शोभित होरही थी मानों पुष्पित वलि रसमत्त भौंरो के भार स झुक कर पृथ्वी पर गिर पडी हो और जिस प्रकार किसी का आधार पाकर, बल खानी हुई बेल पुन ऊपर का उठने लगती है ठीक इसी प्रकार सखिया का सहारा पाकर

लज्जा और प्रीति के भार से दबी हुई रुक्मिणी (जिसकी नागिन सी वेणी और करधनी खुल गई थी और कचुकी के बधन छूट गये थे) पुन खडी की गई और श्रीकृष्ण के पास पहुचाई गई —

तिणि तालि सखी गळि श्यामा तेहि,
मिळी भमर भारा प्रु महि ।
बळि ऊभी थई घणा घाति वळ,
लता केळि अवलब लहि ।।१७७।।

× × ×

पुनरपि पधरावी क है प्राणपति,
सहित लाज भय प्रीति सा ।

रत्यान्त के इस विशद वणन के पश्चात वेलिकार पाँच छदो म प्रभात वणन करता है सूर्योदय अनेकों का मिलन और अनको का वियोग करवा देता है उसकी कान्ति से अनक म्लान होकर सकुच जाते हैं तो अनक कमलवत् खिल जाते हैं रतिक्रीडा क इस वणन मे कवि ने कही भी मर्यादा का अतिक्रमण नही होने दिया है विपरीत इसक वह एक आह्लाददायक स्थिति का सृजन कर सका है, जो कवि के काव्यकौशल्य का अन्यतम दृष्टान्त है लज्जा, उत्कठा, प्रस्वेद, रोमाच, स्पश, अवलोकनादि की जो मार्मिक अभिव्यजना इस काव्य के द्वारा प्रकट हुई है, वह अश्लीलता से परे असदिग्ध रूप मे उत्तमकोटि की है

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न उद्दीपनो (सुगधि एकान्त स्थल पुष्प), अनुभावो और सचारीभावो से युक्त वेलि का यह सयाग शृगार वणन निश्चय ही सरस, सरल व सुरुचिपूण बन पडा है जो वास्तव म अद्वितीय है इस प्रेम वणन मे कवि अपनी सास्कृतिक परम्पराओ से कट कर नही चला है विवाहादि मागलिक उत्सवो पर राजस्थान मे प्रचलित रीति रिवाजो के माध्यम से सयोगशृगार को उत्कृष्ट बनाने मे भरपूर सहायता ली है वास्तव म वेलि मे वर्णित सयोगशृगार अपने आप मे साध्य न होकर, एक भव्य उद्देश्य के लिये साधन भर है, जो पृथ्वीराज जसे कुशल चितेरे के हाथो दमक उठा है

———

वेलि मे प्रकृति चित्रण

चिरतनकाल से मानव और प्रकृति का साहचय रहा है प्रकृति से उसका यह सवध उसके विकास के साथ घनिष्ट होता गया मनुष्य ने प्रकृति की क्रोड म सुख दुख के झोले सह हैं अवसाद के क्षणा मे मनुष्य ओस बिदुओ के रूप म रोया है तो हर्षोल्लास के पलो मे वे ही ओसकण उसके मुखरित हास्य के छिटके मोती रहे हैं पपीहे की पिउ पिउ की पुकार सयोगावस्था मे जहा मानव हृदय म आनदोर्मिया उत्पन्न करती हैं, वही मधुर आवाज विरहातुर प्रेमी प्रेमिकाओ के लिय स्फुलिंग उत्पन्न कर उनके हृदय को विदीर्ण कर देती है सत्य तो यह है कि मनुष्य प्रकृति के माध्यम से अपने सुख दुख और हष विषाद को सदव प्रतिबिम्बित करता रहा है उसकी इस अभिव्यक्ति का साधन साहित्य रहा है और इसीलिये प्रकृति और साहित्य दानो के साथ मनुष्य का चिरतन सायुज्य रहा है

साहित्य मे प्रकृति वणन आठ भिन्न भिन्न रूपो मे किया जाता है (१) आलम्बन (२) उद्दीपन, (३) अलकार, (४) परमतत्व का आभास, (५) उपदेश और नीति के माध्यम से, (६) प्रतीक, (७) मानवीकरण और (८) पृष्ठभूमि तथा वातावरण की सृष्टि के लिये सभी कवि अपने अपने विषय और रुचि के अनुकूल, कम अधिक मात्रा मे प्रकृति के अपरिमित सौदय म निमज्जन कर, उसके रहस्यों को अनावरित करते हुये अपनी कृति को उत्कृष्ट बनान का प्रयत्न करते रहते हैं, जिससे वे सहृदयी पाठको के मनो को प्रभावित कर, इच्छित बिंब उत्पन्न कर सकते हैं मनुष्य यही तक न रुका उसने प्रकृति के जड जगत का तो अपनी इच्छानुसार उपयोग किया ही, पर उसके आश्रित पशु पक्षी भी उसक आदेशानुसार व्यवहार करने लगे रहस्यवादी कवियों ने तो प्रकृति के नाना रूपो मे अव्यक्त परमात्मा के दशन कर उससे जीवात्मा का रागात्मक सबध भी जोडा है

प्रमुख रूप से वेलि म प्रकृति चित्रण निम्न रूपो मे पाया जाता है—

१) आलम्बन रूप मे
२) उद्दीपन रूप मे,
३) अलकार विधान के रूप मे
४) परमतत्व के आभास के रूप म,
५) पृष्ठभूमि और वातावरण की सृष्टि के लिये

शब्द सारथी और बहुज्ञ पृथ्वीराज राठौड कृत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' मे विवाहोपरान्त जो ऋतुवणन अंकित किया गया है वह श्रेष्ठ होते हुये भी ऊपर ऊपर से अनावश्यक सा लगता है, क्योंकि कथा के उत्कर्ष मे अथवा चरित्र के उन्नयन मे उससे किसी प्रकार की सहायता नही मिलती और ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण कर, साहित्य शास्त्र परिपाटी का निर्वाह भर किया है महाकाव्य की दृष्टि से प्रकृति चित्रण काव्य का अनिवाय अंग हैं वेलि एक महाकाव्य है, इसलिये कवि का यह ऋतुवणन काव्य की मूलधारा से असबधित होते हुये भी, इसका अपना पारम्परिक महत्व व स्थान है समग्र ऋतुवणन को स्वतन्त्र मान लेने के पश्चात् भी वह भावोद्दीपन मे सहायक हुआ है उसकी मौलिकता और सर्वोत्तमता असदिग्ध है

रुक्मिणी के रूप वणन (बाल और युवा) मे प्रकृति चित्रण के अतिरिक्त, प्रभात वणन, युद्ध वर्षा रूपक और ऋतुवणन आदि वे स्थल हैं जहाँ कवि ने जम कर प्रकृति के भावपूण चित्रों को अंकित कर साफल्य को प्राप्त किया है

आलम्बन के रूप में

आचाय रामचद्र शुक्ल ने इसके अतर्गत दो प्रणालियाँ बतलाई हैं—(१) बिम्ब ग्रहण प्रणाली तथा (२) नाम परिगणन प्रणाली वेलि मे युद्ध वर्षा रूपक तथा अन्यत्र आलम्बन के नाम परिगणन प्रणाली के एक से एक सुदर उदाहरण भरे पडे हैं यहाँ कतिपय दृष्टान्त दृष्टव्य हैं—

हयनाळि हवाई कुहुक बाण हुवि,
होइ वीर-हक गयगहण ।

(हाथियो पर रख कर चलाई जाने वाली तोपें, हवाई बाण और कुहुक बाणो के आघात होने लगे तथा आकाश को गुजा देने वाला वीरो का शोर हुआ)

कळकळिया कुत किरण कळि ऊकळि,
वरजित विसिख विवरजित वाउ ।

(भाले रूपी सूय किरण युद्ध मे सतप्त होकर चमकने लगी बाण रूपी वायु चलनी बद हो गई)

कणियर तरु करणि सेवत्री कूजा,
जाती सोवन गुलाल जम्र ।
किरि परिवार सकल पहिरायउ,
वरण वरण विध दे वसत्र ।।२३७।।

(कनेर, करना, सेवती, कूजा चमेली, सोनचपा, गुल्लाला आदि विभिन्न वृक्षादि फूलों से लद गये ऐसा मालूम पडता था मानो वसत के जन्म पर वनस्पति

ने अपने सारे परिवार के लोगो को निमत्रित किया है और उन्हें रग बिरगे परिधान पहिना दिये हैं) यहाँ कवि का वनस्पति ज्ञान दर्शनीय है वस्तु परिगणनात्मक प्रकृति चित्रण का एक सुदर उद्धरण 'ढोला मारू रा दूहा' से तुलना के लिये प्रस्तुत है, जिसमे देशगत स्वाभाविकता का सजीव चित्रण है—

जिण भुँइ पन्नग पीयणा कयर-कँटाळा रूख।
आके फोग छांहडी, हूँछा भाजइ भूख ॥

विम्ब ग्रहण के रूप में

आलम्बन की चित्रात्मक प्रणाली के अन्तर्गत कवि ने वर्षा ऋतु मे बादलो का उमड घुमड कर घिर आना, चपला का चमकना, मोरो और पपीहा का बोलना शरद ऋतु मे सरोवरो मे कमल दलो का खिलना, दिनो का सकुचित (छोटा) होना, नदियो का घटना, शिशिर ऋतु के अत म युवा युवतियो का फाग खेलना, वसत ऋतु मे कोयल का कूजना, पुष्पो का खिलना, सुगधित मलय पवन का बहना आदि अनेको दृश्य, पाठको के हृदय-पटल पर सभी ऋतुओ के चित्र अकित करने म पूर्ण समर्थ हैं समूचा युद्ध वर्षा रूपक कवि की उवर कल्पना शक्ति शब्दो का चयन और उनका समर्थ प्रयोग तथा युद्ध की स्वानुभूति का अन्यतम चित्र है जिसका उदाहरण अ यत्र दुलभ है

काळी करि काठळि, ऊजळ कोरण,
धारे श्रावण धरहरिया ।
गळि चालिया दिसोदिसि जळ ध्रम,
थभि न विरहिण नयण थिया ॥१९५॥

(सावन के बादल, उमडी हुई काली पीली घटा जिसके आगे के भाग का किनारा उज्ज्वल सफेद है, धाराओ के साथ बरस पडे वे निर तर बरसते ही जाते हैं रुकते ही नही है, मानो विरहिनी के नेत्रो से अविरल आँसू गिर रहे हो) 'काठळि' और 'कोरण' राजस्थानी के देशज शब्द हैं जिनका अत्युत्तम प्रयोग कवि ने किया है

कळकळिया कुत किरण कळि ऊकळि,
वरजित विसिख विवरजित वाउ ।
धडि धडि धवकि धार धारूजळ,
सिहरि सिहरि समख सिळाउ ॥११६॥

अनुप्रास की सुदरतम छटा के साथ सारे वर्ण्य प्रसग का ध्वनि चित्र खडा कर दिया है कवि स्वय वीर योद्धा था अस्त्रशस्त्र सचालन म निष्णात था और सभी स्वानुभूति पर आधारित युद्ध का एक सजीव और सशक्त चित्र प्रस्तुत कर सका

एक एक कर सभी ऋतुयें आईं और चली गइ अब वसत का आगमन हुआ है सुगध पवन रूपी रथ पर चढ कर बसत के शुभागमन का समाचार देती हुई सवत्र प्रसरित हो जाती है कवि ने क्या ही भव्य चित्र प्रस्तुत किया है—

वन नयरि घराघरि तरि तरि सरवरि,
पुरुख नारि नासिका पथि ।
वसत जनमियौ देण वधाई,
रमै वास चढि पवन रथि ॥२३२॥

ऋतुओ का राजा वसत अपना दरबार लगाये बठा है आज महफिल है, जिसमे वन ही मडप है, निर्झर ही मृदग हैं कामदेव ही उत्सव का नायक है, कोकिला ही गायक है, मोर नतक है तथा पक्षी ही दशक हैं—

आगळि रितुराय मडियौ अवसर,
मडप वन नीझरण मृदग ।
पचबाण-नायक गायक पिक,
वसुह रग मेळगर विहग ॥२४३॥

अकबर के दरबार मे सम्मानित सेनापति के रूप मे उसने कई महफिलो मे भाग लिया होगा और अपने अधीनस्थ उपसेनापतियो अथवा ठाकुरो के साथ स्वय कितनी ही महफिला का आयोजन किया होगा कवि ने सूक्ष्म-निरीक्षण शक्ति के द्वारा एक सरस चित्र खींच दिया है

उद्दीपन के रूप मे

वेलि काव्य मे प्रकृति चित्रण भावोद्दीपन रूप मे भी हुआ है इस भावोद्दीपन के काय मे प्रकृति का प्रयोग दो प्रकार स किया जाता है—(१) साधर्म्यमूलक और (२) वधर्म्यमूलक वसे वेलि मे अकित ऋतु वणन, काव्य का अग हात हुये भी स्वतत्र होने के कारण, परोक्ष रूप से ही सभोग और वियोग—दोनो शृगार पक्षो के भावोद्दीपन म सहायक हुआ है महाकाव्य मे ऋतु वणन होना ही चाहिये—इस परम्परा का पालन करते हुए भी जसा कि हम ऊपर कह आये हैं यह वणन मौलिक व अपूव है सभोग शृगार के पश्चात् ऋतु वणन की एक प्रथा रही है कवि ने ग्रीष्म से प्रारम्भ कर वसत तक—इस क्रम से ऋतु वणन किया है ऋतुराज वसत की महफिल का वणन अलग से किया है कृष्ण और रुक्मिणी प्रत्यक ऋतु का प्रसन्नमन भोग करते हैं और आनन्द प्राप्त करते हैं—

नरति प्रसरि निरधण गिरि नीझर,
धणी भजै धण पयोधर
झोळे वाइ किया तरु झखर,
सवळी दहन कि लू लहर ॥१६१॥

नैऋत्य से चल कर लू ने वृक्षो को मखाड और लताओ को जला दिया है ऐसे समय पति पत्नियो के कुचो का सेवन करते हैं और पत्नी विहीन पुरुष शीतलता

के लिये झरनो की शरण लेते हैं, पर श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ कस्तुरी की गार और कर्पूर की इंटो से बन प्रासाद मे रुक्मिणीजी के कुचो का सेवन करते हुए नित्य नए नए प्रकार से क्रीडा करते हैं

एक ही टेसू का पुष्प रतिक्रीडा की इच्छा रखती हुई सयोगिनी के लिये सुखप्रद और क्षीणतन वियोगिनी के लिये कष्टकारक है—

कुसुमित कुसुमायुध ओटि केळि कृत,
तिहि दखे थिउ खीण तन ।
कत सजोगणि किंसुख कहिया,
विरहणि कहे पलास वन ।।२५६।।

इसी प्रकार, वासती पवन को लेकर भी दोनो पक्षो मे विवाद है वियोगिनी कहती है कि यह सर्प का भक्ष्य है तो सयोगिनी के लिये यह शीतल और सुगधित मलयपवन है—

गुण गध ग्रहित गिळि गरळ ऊगळित
पवण वाद ए उभय पख ।
श्रीखड सळ सयोग सयोगिणि
भणि विरहिणी भुयग भख ।।२६४।।

अलकार विधान में

आकृति भाव, गुण और धर्म की समानता को प्रकृति के उपमानो द्वारा मार्मिक रूप से व्यजित करने के लिए कविगण अलकार-विधान मे प्रकृति का उपयोग करते हैं यौवन रूपी वसत के आगमन के कारण शरीर के विभिन्न अवयवो का तो रूप ही बदल गया है—

नितम्बणी जघ सु करभ निरूपम,
रभ खभ विपरीत रुख ।

और—

घर घर शृग सधर सुपीन पयोधर,
घणी खीण कटि अति सुघट ।
पदमणि नाभि प्रियाग तणी परि
त्रिवळि त्रिवेणी स्रोणि तट ।।२५।।

रुक्मिणी के नाभि की उपमा प्रयाग से तथा पेट पर पडने वाली त्रिवली के उपमान के रूप मे त्रिवेणी तथा त्रिवेणी के तटो के रूप में नितबो की उपमा सर्वथा मौलिक व अनूठी है

रुक्मिणी के नव पल्लवों जैसे कोमल चरणों पर नखों की शोभा का वर्णन करते हुए कवि ने आठ आठ उपमानों से काव्य सौंदर्य की अपूर्व वृद्धि की है नख ऐसे मने प्रतीत होते थे मानो कमल की पखुडिया पर निर्मल जल विन्दु हो अथवा तेज हो मोती हों रत्न हों, तारे हों छोटे सूर्य हों चन्द्रमा हो, हीरे हों या हंस के बच्चे हो कवि के उर्वर मस्तिष्क की दाद देनी होगी—

> ऊपरि पद-पलव पुनरभव ओपति,
> निर्मल कमळ-दळ ऊपरि नीर ।
> तेज कि रतन कि तार कि तारा
> हरि हंस सावक सस हर हीर ।।

परमतत्व के आभास के रूप में

मंगलाचरण से लेकर काव्यान्त तक वेलिकार इस तथ्य को विस्मृत नहीं कर सका है कि उसके वर्ण्य श्रीकृष्ण रुक्मिणी सामान्य कथा नायक नायिका न होकर अलौकिक सत्ता हैं वे क्रमश श्रीविष्णु और लक्ष्मीजी के अवतार हैं उनके बिना इस जीवन का उद्धार कौन कर सकता है ? असमाध्य को समव करने वाले किये हुये को अन्यथा करने वाले, पूर्ण पुरुषोत्तम वे ही तो हैं वे ही सब समर्थ हैं—

> कृत करण अकरण अन्नथा करण,
> सगळे ही थोके समरत्थ ।

कबीर और जायसी के रहस्यवाद जैसी अभिव्यक्ति यद्यपि वेलि मे दर्शनीय नहीं है फिर भी शृंगार-वर्णन करते करते वारम्बार उनका नामोल्लेख करना ही इस तथ्य का द्योतक है कि वह निरंतर परमात्मोन्मुख है Dr L P Tessitori has also said that, "A passing mention of Krsna and Rukumini here and there makes us remember that they are always present behind the screen" वलि को बाँधने वाले तथा मधु नामक दैत्य का संहार करने वाले जगत पति श्रीकृष्ण ग्रीष्म म जलक्रीडा कर रहे हैं—

> जलक्रीडा क्रीडति जगतपति,
> जेठमास एही जुगति ।।१८९।।

और वर्षा ऋतु म जब श्याम मेघ धरती से मिल जाते हैं तो ऐसा लगता है जसे मेघ कृष्ण और पृथ्वी रुक्मिणी दोनो आलिंगन बद्ध हो गये हैं, जीव और परमात्मा का तादात्म्य हो गया है—

> धर श्यामा सरिस, स्यामतर जळधर,
> घेघूचे गळि वाहाँ घाति ।

देवप्रबोधिनी एकादशी के दिन जनार्दन जाग उठे, 'जागीया मीट जनारजन' क्या जनार्दन सुषुप्तावस्था मे थे ? अर्जुन और सुयोधन के आने के साथ ही जैसे श्रीकृष्ण को सहसा अपनी लीला का ध्यान हो आया

ऐसे नारायण, निर्लिप्त, निर्गुण ईश्वर का वर्णन कवि ने ऋतुवर्णन के अंत मे दो एक छंदो म कर दिया है लीलामय ने लीला करने के लिये ही तो जगत मे वास किया—

लीलाधरण ग्रहे मानुखी लीला,
जगवासग वसिया जगति
× × ×

शेष नाग भी जिसका यशगान करते करते थक जाता है, उस निर्गुण परमात्मा का वर्णन मैं क्या करूँगा ?—

कि कहिसि तासु जस, अहि थाकउ कहि,
नाराइण निरगुण, निरलेप ।

पृष्ठभूमि और वातावरण की सृष्टि के लिये

प्रसगानुसार वातावरण के सृजन के लिये प्रकृति का पर्याप्त उपयोग कविगण युगो से करते आये हैं वर्णन उल्लासपूर्ण हो अथवा करुण ओजमय हो अथवा शृगारपूर्ण, पृष्ठभूमि के लिये उपयोग किया गया प्रकृति चित्रण उसे अधिक गहन बना देता है और काव्य मे वशिष्ठ्य आ जाता है शास्त्रानुसार सभोग शृगार के पश्चात् ऋतुवर्णन काव्य का एक अभिन्न अंग है वियोग शृगार मे बारहमासा के माध्यम से प्रकृति चित्रण करना भी एक प्रथा है ही

ब्राह्मण के जगने पर वह अपने आपको द्वारिका मे पाता है प्रात काल का समय है कवि ने प्रभात वर्णन के द्वारा द्वारिका के विभिन्न कार्यकलापो का भव्य चित्र प्रस्तुत किया है कही वेदपाठ की ध्वनि सुनाई दी तो कही शखनाद की नगर मे भारी कोलाहल है और समुद्र की लहरें हिलोरें ले रही हैं—

धुनि वेद सुणति कहूँ सुणति सख ध्वनि,
नद भल्लरि, नीमाण नद ।
हेका कह हेका हीलोहळ,
सायर नयर सरीख सद ॥४८॥

चपक वर्णा पनिहारिनो का सरोवरो पर पानी भरने जाना घर घर मे ब्राह्मणों का यज्ञ करना, मार्गों के दोनों ओर मजरीयुक्त आम्रवृक्षों और उन पर

मिष्टभाषी कोयलों का बोलना आदि के द्वारा कवि ने द्वारिका की पवित्रता और सुभगता का उत्तम वर्णन किया है तो दूसरी ओर रत्यान्त प्रभात वर्णन के द्वारा कवि ने प्रकृति की अनेक वस्तुओ के सकुचन और विस्तरण का अनूठा वर्णन किया है जिसमे कवि की सूक्ष्मदर्शिता और विपुल सासारिक ज्ञान विज्ञान की मार्मिक अनुभूतियों के दर्शन होते हैं

सूर्योदय के कारण एक ओर जहाँ चद्रमा और दीपक निस्तेज हो जाते हैं तो दूसरी ओर वह चकवा को चकवी से, चोरो को उनकी स्त्रियो से तथा ब्राह्मणो को सरोवरो के घाटो के जल से मिला देता है—

गतप्रभा थियउ ससि रयणि गळति

× × × ×

दीपक परजळतउ इ न दीपइ

× × × ×

सूर प्रगटि अेतळां समपियउ
चार, चक्व, विप्र तीरथ वेळ

पृथ्वीराज राजस्थान के वीरता तथा कविता के मूर्तिमत स्वरूप थे। अप्रतिम योद्धा और महाकवि थे कलम और तलवार दोनो के धनी इस महापुरुष ने दोनो का उत्तम प्रयोग कर युद्धभूमि और साहित्य क्षेत्र दोनों में अमरत्व को प्राप्त किया है बलराम के नेतृत्व मे यादवो के चुनिन्दे सनिक तथा भीष्मक शिशुपाल आदि की सयुक्त सेना के बीच मे जब अल्पकालीन पर तुमुल सघर्ष हुआ जिस वर्णन करने के लिये कवि का हृदय बाग बाग हो उठा और वह पाठको के सम्मुख उसका एक सादृश्य चित्र प्रस्तुत करने म सक्षम हो सका वेलि म युद्ध वर्षा रूपक वर्णन से युद्ध की विकरालता और गहन हुई है यही लेखक को अभीष्ट था, जिसके कारण वह एक ऐसे वातावरण का सृजन कर सका, जिस पर विजयलक्ष्मी का वरण तथा उसका आमोदपभोग किया जा सका

इन सब के अतिरिक्त रुक्मिणी के रूप और वयसधि के स्वनत्र वर्णन म कवि आकाश-कुसुम तोड लाया है मानसरोवर म तरते हुये हस शावक और सुमरु पर्वत पर दो पत्तो से युक्त कनकलता की प्राकृतिक सुषमा बरबस मनुष्य के आकर्षण का केन्द्र बनती है—

रामा अवतार नाम ताइ रुक्मणि,
मानसरोवरि मरु गिरि ।
बाळकति किरि हस चौ बाळक,
कनक-वेलि बिहु पान किरि ॥१२॥

यही अनिंद्य सुदरी रुक्मिणी अपनी सखियो के साथ राजभवन के प्रागण म खेलती हुइ ऐसी शोभित है मानो निरभ्र आकाश मे झिलमिलाते तारा के साथ चद्रमा अात आकाश का अनत सौंदय जसे धारित्री ने अपनी कोख मे रख लिया हो—

सग सखी सीळ कुळ वेस समाणी,
पेखि कळी पत्मिणी परि ।
राजति राजकुअरि रायआगण,
उडियण बीरज अम्ब हरि ॥१४॥

शिशिर रूपी शशव जो अब तक रुक्मिणी के अगदेश मे सुषुप्तावस्था मे था अब यौवन रूपी बसत के आगमन से जाग उठा मुख की अरणाभा और उनत उरोजो की प्रकृति के साथ क्या ही पावन और सरस उपमा दी है जिसमे अश्लीलता की गध तक नही है—

पहिलौ मुखि राग प्रगट थ्यो प्राची, अरुण कि अरुणोदय अबर ।
पेख किरि जागिया पयोहर सभा वदण रिखेसर ॥१६॥

इस प्रकार वेलिकार न वेलि म अपनी सूक्ष्म पयवेक्षण शक्ति, प्रतिभा, नान बाहुल्य तथा सरस पर सचोट अभिव्यजना के माध्यम से प्रकृति चित्रण के रूप मे एक ऐसी चिर आनदलायी वस्तु प्रदान की है, जिसकी सानी साहित्यिक ससार म दुलभ है अपनी इस विचक्षणता और विदग्धता के कारण वेलि न केवल इस देश के सम्मान का केन्द्र रही पर विदेशी विद्वान भी इसकी सरसता से मुग्ध हुय बिना नही रह सके डा० एल पी तैस्सितोरी ने कितना सत्य लिखा है—The great merit of the poem is in the combination of a delightful genuineness and natural ness of expression with the most rigorous elaborateness of style × × × × We now come to the most exquisite picture of the poem the falling of the night, the impatient expectation of Krsna and the coming of Rukmini to his thalamus The shyness of the maid and the unbounded joy of Krsna at her arrival are described with all the mastership, which we should expect from a Rajput of refinement who has had many love experiences of that kind in his life Then with great ability, Prithiraj draws a discreet curtain before the thalamus of the two lovers and leading us outside into the dark night makes us watch the breaking of the day and then in succession the passing of the six seasons of Indian Year, × × × × It is like a succession of magic-lantern pictures on a wall, each stanza is a quadretto in itself worked to perfection with great in which Indian poets of the seasons succeed so well

वेलि मे ग्रौचित्य

'उचित' विशेषण से बनी हुई भाववाचक सना 'ग्रौचित्य' है स्वय उचित शब्द 'उच्' धातु से व्युत्पन्न है[1], जिसके विद्वानो ने अनेक ग्रथ दिये हैं—(१) प्रसन्न होना, (२) योग्य गुणो का समुदाय (३) एकत्रित करना (४) किसी वस्तु के ग्रादी बनना (५) उपयुक्त बनना ग्रौर (६) ग्रनुकूल बनना ।

साहित्य शास्त्र मे ग्रौचित्य के प्रतिष्ठापक ग्राचार्य क्षेमेन्द्र ने ग्रौचित्य की परिभाषा देते हुये कहा है कि उचितस्य च यो भाव तदौचित्य प्रचक्षते ग्रर्थात् उचित के भाव को ग्रौचित्य कहते हैं[2] स्वय उचित की व्याख्या करते हुये क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि जो जिसके सदृश या ग्रनुकूल होता हो वह उसके लिये उचित है 'उचित प्राहुरस्चार्या सदृश किल यस्य यत्' उचित के ग्रन्य पर्याय जो साहित्य शास्त्र मे प्रचलित हैं, वे हैं—(१) ग्रनुरूपता, (२) युक्तिता, (३) विधि दर्शन मार्ग ग्रौर (४) योग्यता

उचित ग्रौर ग्रनुचित मे वस्तु ग्रौर भाव जगत की कोई भी वस्तु शेष नही रहती दूसरे शब्दो मे इसकी क्षेत्रीय व्यापकता इतनी विशाल है कि इसमे सभी का समावेश हो जाता है फिर भी, यद्यपि 'उचित' की परिभाषा तो नही बदलती पर वस्तु के प्रयोग करने की विधि ग्रौर इसी प्रकार विचार सरणी भी देशकालानुसार बदलती रहती है मध्ययुग की कई विचार धाराएँ ग्राधुनिक युग के ग्रनुरूप नही हैं उदाहरणार्थ ग्रस्पृश्यता ग्राज से तीन सौ चार सौ वर्ष पूर्व जिस कठोरता ग्रौर किसी सीमा तक निर्दयता से समाज मे इसका पालन किया जाता था, ग्राज वह लगभग ग्रदृश्य सी हो गई है ग्राज ग्रस्पृश्यता के पक्षधर को तुरन्त ही प्रतिक्रियावादी ग्रादि कई विशेषणो से ग्रलकृत होने मे देरी नही लगेगी

जिस प्रकार समाज मे ग्रौचित्य का ग्राधार ग्राचार शास्त्र (Ethics) है, उसी प्रकार भाषा मे उसका ग्राधार व्याकरण है तो काव्य मे उसका ग्राधार ग्रास्वाद प्रक्रिया है इसी को एक शब्द मे ऐसा कहा जा सकता है कि काव्य मे

---

१ ग्रर्थ विचार की दृष्टि से कई विद्वान इसे वच धातु से व्युत्पन्न मानते हैं तारकनाथ तर्क वागीश वाचस्पत्यम पृ० १ ५८ १५६६

२ क्षमेन्द्र ग्रौचित्य विचार चर्चा, पृ० ११६

औचित्य का आधार 'रस है आचार्य क्षेमेन्द्र रस को काव्य की आत्मा मानते हैं इस दृष्टि से देखा जाय तो औचित्य काव्य की आत्मा ही नहीं है, पर, रस का प्राण भी है

चूकि काव्य मे रस के अतिरिक्त भी अनेक रसेतर वस्तुओ का समावेश होता है, अतएव हमे औचित्य के प्रभेदो पर भी एक दृष्टि डाल लेनी चाहिये औचित्य के भेदोपभेद कुल मिला कर सताइस हैं[1], जिनको मुख्य तीन भेदो (कविगत, काव्य गत और सहृदयगत) के अन्तर्गत रखा जा सकता है वेलि को केन्द्र मे रख कर यहा प्रमुख भदो की चर्चा ही समीचीन रहेगी इस दृष्टि से कविगत के अन्तर्गत तत्त्वौचित्य व स्वाभावौचित्य, काव्यगत के अन्तर्गत भाषौचित्य, अलकारौचित्य, गुणौचित्य छदौचित्य और रसौचित्य तथा सहृदयगत के अन्तर्गत दशौचित्य व कुलौचित्य के माध्यम से हम वेलि को औचित्य की कसौटी पर कसेंगे

वेलि एक प्रबध काव्य है जिसके रचयिता महाराज पृथ्वीराज राठौड एक प्रतिभासप न भक्त कवि थे भावो के अनुरूप भाषा को ढालने की उनकी क्षमता अद्वितीय थी उन्होने डिंगल जसी तथाकथित कणकटु भाषा को ऐसा नाथा कि वह प्रसगानुकूल रस-वैविध्य के साथ सबलता से उभर आई है और कही अनौचित्य के दशन नही होते

(१) पदौचित्य

पद का उचित प्रयोग पदौचित्य है पात्र, प्रसग, परिस्थिति और भाव के अनुसार पद का प्रयोग काव्यार्थ मे विलक्षणता ला देता है

यथा—

> रामा अवतारि वहे रणि रावण,
> किसी सीख करुणाकरण ।
> हूँ ऊधरी त्रिकुटगढ हूँती,
> हरि वधे वेळाहरण ।।६३।।

वैसे राम और सीता का काव्य से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है पर यहाँ रुक्मिणी सारे अवतारो को एक ही भगवान के स्वरूप मान तथा स्वय को उनकी जन्म जन्मातर की पत्नी (लक्ष्मी, सीता) मान कर अपने उद्धार की प्रार्थना आर्त भाव से करती है यहाँ भाव के अनुसार काव्यार्थ मे चमक आ गई है

---

१ डॉ॰ सुरेशचन्द्र त्रिवेदी, औचित्य विचार चर्चा' (गुजराती अनुवाद) प्र॰ मेसर्स बी जेठ शाह प्रकाशन पानकोर नाका, अमदावाद

(२) वाक्यौचित्य

वर्ण्यविषय का निरूपण करने मे समर्थ वाक्यावली का प्रयोग वाक्यौचित्य कहलाता है उदाहरणार्थ—

म म करिसि ढील, हिव हुए हेक्मन
जाइ जादवाइद्र जत्र ।
माहरै मुख हुँता ताहर मुखि,
पग वदण कर देइ पत्र ॥४५॥

इस पद मे रुक्मिणी के मन की अधीरता को सुदर ढग से अभिव्यक्त किया गया है ब्राह्मण के जाने का मना करने पर रुक्मिणी का आग्रहभरी विनती करना तथा एकचित होकर यदुराय कृष्ण के पास द्वारिका जाकर, प्रथम उनके चरणारविंदो म प्रणाम करना तथा मेरे मुख की बात को अपने मुख से कहना आदि को विविध वाक्यो मे औचित्यपूर्ण ढग से प्रस्तुत किया गया है

(३) गुणौचित्य

गुण रस के धम हैं वामन और उनके पूववर्ती आचार्यों ने दस गुण बतलाये हैं, पर आलकारिको ने तीन ही गुण स्वीकार किये और शेष गुणो को इन्ही तीन गुणो माधुय, ओज और प्रसाद मे अन्तर्भाव कर दिया है गुणौचित्य का अर्थ है माधुय, ओज और प्रासाद गुणो का रसानुकूल उपयोग

(i) माधुय गुण

माधुय गुण का सम्बन्ध कोमल रसो से है अतएव इसके दर्शन हमे शृगार, करुण और शात रस मे होते है वेलि मे विप्रलम्भ शृगार और करुण तो अपवाद मात्र ही मिले, पर सभोग शृगार और शांत के उदाहरणो से सारा प्रबध काव्य भरा पड़ा है माधुय गुण का उदाहरण दृष्टव्य है—

वीणा डफ महुयरि वम वजाए,
रोरी करि मुख पचम राग।
तरुणी तरुण विरही जण दुतरणि
फागुण घरि घरि खेलै फाग ॥२२७॥

उपर्युक्त पद म फागुन मास मे युवक युवतियो का हाथो में गुलाल और मुख पर पचम राग तथा वीणा, डफ और बांसुरी बजाते हुओ का आनदमयी चित्रण है

(ii) ओज गुण

चित्त का विस्तार रूप दीपत्व ओज है चित्त मे सकोच के हट जाने से उसका विस्तार होता है ऐसे समय चित्त मे ओज की स्थिति आ जाती है ओज

गुण का सबध उग रसो यथा वीर, वीभत्स और रौद्र रसो से है वेलि का युद्ध-वर्णा रूपक वर्णन ओज गुण के उदाहरणो से आपूरित है द्रष्टव्य है—

> वळकळिया कुत किरण कळि ऊकळि,
> वरजित विसिख विवरजित वाउ ।
> धडि धडि धवकि धार धाराजळ,
> सिहरि सिहरि समच सिळाउ ॥११६॥

(iii) प्रसाद गुण

कर्णकटु शब्दो का त्याग कर, जहाँ रचना सरल व सुबोध शब्दो से निर्मित होती है, उसमे प्रसाद गुण होता है अर्थात् जिस रचना को पढते ही अर्थ समझ मे आ जाय, वह प्रसादगुण युक्त रचना होती है इसकी स्थिति सभी रसो मे हो सकती है वलि म मगलाचरण और माहात्म्य आदि ही ऐसे प्रसग हैं जहाँ प्रसाद गुण के दर्शन होते हैं यथा—

> सरसती न सूझ ताइ तू सोभ,
> वाउवो हुओ के वाउळो ।
> मन सरिसो धावतो मूढ मन,
> पहि क्रिम पूज पागुळो ॥४॥

(४) अलकारौचित्य

काव्य मे अलकारो का उचित प्रयोग अलकारौचित्य है उचित प्रयोग का अर्थ है कि (१) काव्य म उनका प्रयोग सायास न होकर स्वाभाविक होना चाहिये, (२) अलकार्य के अभाव म अलकार का प्रयोग अर्थहीन तथा (३) अनुचित अलकार्य क अभाव मे भी अलकार अपनी महत्ता व सत्ता गुमा बठते हैं वास्तव म अलकार्य और अलकारो के बीच एकान्विति को ही अलकारौचित्य कहते हैं

'भूषण बिन न विराजही कविता, बनिता मित्त' वाले युग मे उत्पन्न पृथ्वीराज भी अलकारिकता के मोह से ग्रसित थे वेलि का प्रत्येक पद अलकारयुक्त हैं कही कहीं तो एक छन्द म तीन चार अलकारो का एक साथ प्रयोग हुआ हैं इतना होते हुये भी वे सारे अयत्नज है और इसीलिये वलि का काव्य अलकारो स बोझिल न होकर, अपने नसर्गिक रूप म चमत्कारिता लिये हुये हैं वास्तव मे पृथ्वीराज के अलकार काव्य की आत्मा रस—के साधक हैं न कि बाधक वेलि मे अन्य अलकारो के साथ साथ उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा तो बहुतायत से प्रयुक्त हुये हैं —

उत्प्रेक्षा

पति पवन प्रार्थित श्री तत्र निपतित,
सुरत अंत केहवी श्री ।
गजेन्द्र क्रीडता सु विगलित गति,
नीगसइ पार कमलिनी ॥१७४॥

उपमा

विनए आसोज मिळै नभि वादळ,
पृथी पक जळि गुडळपण ।
जिम सतगरु कळि कळुप तणा जण,
दीपति ग्यान प्रगट दहण ॥२०८॥

रूपक

आजाति जाति पट घूघट अन्तरि,
मेळण एक करण अमिळो ।
मन दम्पती कटाछि दूति म,
निय मन सूत्र कटाछि नळी ॥१६६॥

शब्दालकारो मे अनुप्रास अपने प्रभेदो के साथ बहुतायत से प्रयुक्त हुआ है राजस्थानी भाषा के विशिष्ट अलकार वयणसगाई (वण सगप) अलकार का तो आद्योपान्त निर्वाह हुआ है वास्तव म वेलि अलकारो का नैसर्गिक रत्नाकर है

(५) छदौचित्य

ऐसा प्रतीत होता है कि छन्द शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान होने हुये भी पृथ्वीराज ने अपने वेलि काव्य म अथ से इति एक ही राजस्थानी छन्द छोटा साणोर के दो प्रमुख प्रभेदो सुद्द साणोर और वेलियो का प्रयोग किया है कवि न अपनी अन्य रचनाओ म दोहा और सोरठा का सर्वाधिक प्रयोग किया प्रशस्तिमूलक तथा स्तुति परक पदो म कवि ने गीत छद क अनेक भेदो का प्रयोग किया है

(६) भावौचित्य

पृथ्वीराज की भाषा का स्वरूप साहित्यिक डिंगल है जो इस प्रदेश के तथा काल के अनुरूप है इस भाषा और इसम निर्मित उत्कृष्ट ग्रंथो के ज्ञानाभाव के कारण विद्वानो ने भ्रमवश इसकी अनौचित्य टीकायें की है, पर मात्र वेलि की रसाभिव्यक्ति की क्षमता को देख कर वे ही विद्वान आश्चर्यचकित रह गये वेलि में एक स्थान पर भगवान कृष्ण के मुख से देववाणी संस्कृत का प्रयोग अनौचित्य न

सवथा उचित ही है क्योकि वे उस समय विद्वान सदेश वाहक ब्राह्मण से वार्तालाप कर रहे थे यह छद सवर्था पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग है—

कस्मात कस्मिन किल मित्र किमथ,
केन काय परियासि कुत्र ।
ब्रूहि जनेन येन भो ब्राह्मण,
पुरतो मे प्रपितम् पत्र ।।

इससे कवि के सस्कृत ज्ञान का परिचय तो मिलता ही है, पर जब हम कवि की अन्य रचनाओ का अध्ययन करते हैं तो उनके व्रजभाषा पर के अधिकार का भी पता चलता है

(७) रसौचित्य

रस काव्य की आत्मा है जिस प्रकार आत्मा के अस्तित्व मे शरीर स्थित रहता है, उसी प्रकार रस रूप आत्मा के रहने पर काव्य शरीर रह सकता है इतना होते हुये भी रस को कार्यानुरूप होना चाहिय श्रेष्ठ से श्रेष्ठ स्तर की रस योजना का कोई महत्व न होगा, यदि वह प्रसगानुसार, भावानुसार और मूलकथा प्रवाहानुसार न होकर उससे असबधित हो

भक्ति और वात्सल्य को भी रसो के रूप मे स्वीकार कर लेने पर रसो की सख्या ग्यारह हो जाती है वेलि मे वात्सल्य और करुण रस का सवथा अभाव है भक्तिमय रचना होने के कारण हास्य रस के उदाहरण भी अपवाद रूप म ही उपलब्ध हैं

श्री सूयकरण पारीक ने अपने द्वारा सपादित वेलि की भूमिका[1] मे रस विरोध (युद्ध वपा रूपक छद सख्या ११३ से १२५) का प्रश्न खडा किया है रसगगाधर के कर्ता जगन्नाथ ने कहा है कि—

तत्र वीर शृगारयो , शृगार हास्योर, वीराद्भुतयो ,
वीर रौद्रयो शृगाराद्भुतयोश च अविरोध ।

इन मित्र रसा के वणन के पश्चात् कविराज जगन्नाथ ने यह भी कहा है कि—

सुराङ्गनाभिराश्लिष्टा व्योम्नि वीर वीमान गा ,
विलोकत निजान देहान् फेरुनारीभिरावृतम् ।

इस प्रकार जगन्नाथ ने विरोध का परिहार भी कर दिया है मम्मट और हेमचन्द्र ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि शृगार और वीभत्स के बीच में

१ श्री सूर्यकरण पारीक भूमिका पृ ७६ ७७ ७८,८८

यदि वीर रस को दे दिया जाय तो उससे विरोध का परिहार हो जाता है नीचे लिखी अवस्थाओ मे भी विरोधी रसो का साथ साथ वणन हो सकता है —(१) जब कोई रस अपने विरोधी रस का अग बन कर आवे तथा (२) जब दो परस्पर विरोधी रस किसी तीसरे रम के अग हो[१] ऐसी दशा मे श्री पारीकजी द्वारा उत्पन्न रस-विरोध की समस्या के खडे होने का प्रश्न ही नही उठता

वीर रस

कलम और तलवार दोनो के धनी पृथ्वीराज ने वीर रस का सशक्त वणन किया है कवि ने युद्ध वर्षा रूपक प्रस्तुत कर सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है बलराम की ललकार और उनका अपने सनिको को प्रोत्साहन दशनोय है—

> बेली तदि बळिभद्र वापूकारइ,
> सत्र साबतउ अजे लगि साथ ।
> वूठइ वाहवियइ आ वेळा,
> हिव जीपिस्यइ जु वाहिस्यइ हाथ ।।१२३।।

रौद्र रस

क्रोध, रौद्र का स्थायी भाव है किसी के ललकारने पर युद्धभूमि मे क्रोध आना स्वाभाविक है रुक्मि के ललकारन पर श्रीकृष्ण के रौद्र रूप धारण करने का कवि ने सुदर शब्द चित्र अकित किया है—

> विळकुळियउ वदन जेम वाकारियउ,
> सग्रहि धनुष पुणच सर सधि ।
> क्रिसन रुकम आउध छेदण कजि,
> वेळखि अणी मूठि द्रिठ बधि ।।१३१।।

बीभत्स

वेलि म छद सख्या १२० से १२८ तक बीभत्स रस का वणन हुआ है इस रस का स्थायीभाव जुगुप्सा है दुगध युक्त मास, रक्तादि इसके आलम्बन हैं—

> रिण आगण तेणि रुहिर रळतळिया,
> घणा हाथ हूँ पडई घणा ।
> ऊधा पत्र वुदवुद जळ आक्रिति,
> तरि चालइ जोगिणी तणा ।।१२२।।

---

१ श्री नरोत्तमदास स्वामी, क्रिसन रुकमणी री वेलि की प्रस्तावना पृ० ५३ से ५७,

भयानक रस

इस रस का स्थायी भाव भय है हिंसक जतु और श्मशानादि स भय का सचार होता है भय के कारण ही शरीर म कंपकंपी छूट जाती है तो कभी कभी मूर्छा भी आ जाती है भाला, तलवारो और बाणा के चलने स शत्रुओ के हृदय कांप उठे—

> कंपिया उर काइरा असुभ कारियउ
> गाजति नीसाणे गडगड ।।१२०।।

अद्भुत रस

विस्मय, इस रस का स्थायीभाव है वेलि म इसके दो उदाहरण हैं प्रथम तो सदेशवाहक ब्राह्मण के जागने पर अपने आपको द्वारिका मे पाना और द्वितीय रुक्मि क काटे हुय बाला को पुन उगा देना—

> सप्रति औ किना, किना अ सुहिणउ,
> आयउ हू अमरावती ।
> जाई पूछियउ तिणि इम जपियउ,
> देव ! सु आ द्वारामती ।।५१।।

शात रस

शात रस का स्थायीभाव शम या निर्वेद है वलि के प्रारम्भिक छद शात रस के हैं जिसमे ईश्वर के प्रति प्रेम उसकी महानता और अपनी दीनता प्रकट की गई है

शृ गार

भक्तिमय शृगार से परिपूर्ण यह ग्रथ सयोग शृगार के उत्तम दृष्टान्त प्रस्तुत करता है वेलि मे विप्रलभ शृगार नहीवत् है सयोग शृगार क अन्तगत नायिका का बाल-सौदय, वयसधि, यौवनावस्था, विवाह से पूव तथा विवाहोपरात प्रथम मिलन और उसके पश्चात् आदि ऐस स्थल हैं जहां कवि का मन खूब रमा है और उसन उसके विशद चित्र खीचे है पर जसा कि हम ऊपर निर्देश कर आये हैं यह सारा शृगार वासनामय न होकर भक्ति के तानो बानो से निर्मित है शृगार रस के औचित्य का सागोपाग वणन हम भाव पक्ष के अतगत कर आये हैं, अतएव यहां पुनरावतन के भय से इसका पुन वणन करना उचित नहीं लगता है

हास्य

हास ही हास्य का स्थायीभाव है विकृत आकृति, वेष, वाणी और चेष्टा आदि हास्य के आलवन हैं रुक्मी के केश काट कर उसे विद्रूप बनात समय थोडी

मुस्कराहट बरबस आ जाती है इसी प्रकार हास्य का चित्र कवि ने उस समय खींचा है जब सारी सखियाँ हँसती हुई एक एक कर शयनगृह म रुक्मिणी को अकेली छोड कर बाहर चली जाती है—

> हसि हसि भ्रूह, हेक हेक हुइ,
> ग्रिह वाहिरि सहचरी गई ॥१७२॥

(८) स्वाभावौचित्य

मानव प्रकृति का यथातथ्य वणन स्वाभावौचित्य कहलाता है रुक्मिणी क वागदान पर रुक्मि के उद्धत स्वभाव का तादृश्य चित्र पृथ्वीराज ने अंकित किया है—

> मावीत्र अजाद मेटि बोलै मुखि,
> सुवर न को सिसुपाल सरि।
> प्रति ग्रंवु कोपि कुँवर ऊफणियो,
> बरसाळू वाहळा वरि ॥३४॥

(६) तत्वौचित्य

तत्व कथन का उचित प्रयोग ही तत्वौचित्य है जीवन-मरण का अनिवाय चक्कर, जीवन की क्षणभगुरता सत्यमेव जयते आदि वे तत्व हैं जो चिरकालीन सत्य हैं इसी प्रकार यह भी सत्य है कि परमात्मा के एक होते हुये भी 'जाकी रही भावना जसी प्रभु मूर्ति देखी तिन ऐसी' जसी तत्वमयी उक्ति के अनुसार एक ही भगवान श्रीकृष्ण के अनत स्वरूपों का वलिकार ने चित्र उपस्थित किया है—

> कामिणी कहि काम काळ कहि केवी,
> नारायण कहि अवर नर ।
> वेदारथ इम कहै वेदवत
> जोग तत्त जोगेसर ॥७६॥

देशौचित्य

जलवायु, भौगोलिक वातावरण, नगर वणन, प्रकृति वणन आदि का जहाँ देशानुसार वणन किया जाय, वहाँ देशौचित्य माना जायेगा वेलि म द्वारिका नगरी का वणन, और ऋतु वणन इसी कोटि के अतगत आते हैं कवि का ऋतु वणन तो वास्तव म वास्तविक बन पडा है मरुभूमि मे उठती लू के तांडव को देखिये—

> नरति प्रसरि निरधण गिरि नीझर,
> धणी भज धण पयोधर।
> झोळे वाइ किया तरु झखर,
> लवळी दहन कि लू लहर ॥१६१॥

अथवा राजस्थान में वर्षा मे उठती घनघोर घटा का दृश्य देखिये—

> काळी करि काठळि ऊजळ कोरण
> धारे श्रावण धरहरिया ।
> गळि चालिया दिसो दिसि जळग्रभ,
> थभि न विरहिण नयण थिया ।।१६५।।

कुलौचित्य

कुल गौरव के अनुरूप कार्यो का वर्णन, आभिजात्य का निर्वाह तथा वशानुगत चरित्र का निरूपण कुलौचित्य कहलाता है वेलि म जब रुक्मि अपने पिता के प्रस्ताव की परवाह न कर अपनी बहन रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से करना चाहता है तो उसके मन मे कुलौचित्य का ही प्रश्न था—

> प्रभणति पुत्र इम मात पिता प्रति
> अम्हां वासना वसी इसी ।
> ग्याति किसी राजवियां ग्वाळा ।
> किसी जाति कुळ पांति किसी ।।२१।।
>
> सुजु वर अहीरा सरिस सगाई,
> ओलाडे राजकुळ इता ।।२२।।

सदेशवाहक ब्राह्मण को आता देखकर भगवान ने जिस ढग से उसका सम्मान किया, वह उनके आभिजात्य कुल के वशानुगत चरित्र की विशेषता प्रकट करता है—

> ऊठिया जगतपति अतरजामी,
> दूरतरी आवतो देखि ।
> करि वदण, आतिथ ध्रम कीधो,
> वेदे कहियो तणि विसेखि ।।५४।।

काव्यौचित्य के सभी पहलुओ पर विचार करने पर लगता है कि पृथ्वीराज ने वेलि म औचित्य का सपूर्ण ध्यान रखा है तथा कही भी अनौचित्य का प्रवेश नहीं होने दिया है

वेलि की टीकायें

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है, 'श्रृंगार रस के ग्रंथो की जितनी ख्याति और मान बिहारी सतसई का हुआ उतना और किसी का नही इसकी पचासो टीकायें लिखी गई हैं इन टीकाओ में ४५ तो बहुत प्रसिद्ध हैं'[1] यह सत्य भी है कि हिंदी साहित्य के अन्यतम ग्रंथ रामचरित मानस को छोड कर इतनी ख्याति और सम्मान अन्य किसी ग्रंथ को कभी नही मिला है पर वेलि की बात कुछ निराली ही है संस्कृत, ब्रज, हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती मे इसकी जो टीकायें उपलब्ध हैं वे ही इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि वेलि उत्कृष्ट कोटि का एक अत्यन्त लोकप्रिय ग्रंथ है बिहारी सतसई की भाँति इसकी अनेक टीकायें (गद्य और पद्य मे) उपलब्ध हैं अतर वैशिष्ट्य मे है जहाँ 'बिहारी सतसई' केवल काव्य रसिको तक ही सीमित रही, वेलि मूलत भक्ति ग्रंथ तथा साहित्यिक दृष्टि से उत्तम ग्रंथ होने के कारण विद्वद्वर और सामान्य जनता दोनो के अतरतम तक पहुँच सकी

महाकवि पृथ्वीराज राठौड द्वारा परिष्कृत डिंगल भाषा मे लिखी हुई यह वेलि इस भ्रम का निवारण करने का भी पर्याप्त व श्रेष्ठ प्रमाण है कि डिंगल केवल वीररसोपयुक्त भाषा न होकर अन्य रसो को वहन करने की भी उतनी ही क्षमता रखती है जितनी कि कोई दूसरी समृद्ध भाषा डॉ एल पी तस्सितौरी ने इसी बात को लक्ष्य कर लिखा है कि "Indeed, the musicality of the verses is such that nothing could more conspicuously prove the error of them, *who hold that Dingla is too harsh for erotical or idyllic subjects* and is only fit for heroic themes"[2] (जो लोग यह मानते हैं कि प्रेमसबधी और लोक धर्मी काव्य के लिये डिंगल बहुत ही कर्णकटु है, वास्तव मे, वेलि की सगीतात्मकता और उत्कृष्टता उनका भ्रम भग करने के लिये पर्याप्त है) वेलि की इस भाषा विषयक विशेषता ने भी वेलि के प्रसार मे योगदान दिया

जसे जसे इसका प्रचार बढता गया, प्रतिलिपिकारो (लहियो) ने इसकी अनेक प्रतिलिपियों की प्रतिलिपि करते समय अज्ञान मे ही उनसे अनेक भूले हो जाती रही हैं

---

१ हिंदी साहित्य का इतिहास नवम सस्करण, पृ० २४६

२ डा० तस्सितौरी द्वारा सपादित वेलि, Introduction पृ० XII

परिणामत कालान्तर मे छद सख्या और भिन्न भिन्न पाठान्तरो के कारण ग्रथ सम्बन्धी आदि कई प्रश्न उठ खडे हुये भिन्न-भिन्न टीकाओ के निर्मित होने का एक प्रधान कारण यह भी है

आधुनिक काल मे अद्यावधि वेलि की सात टीकायें विस्तृत भूमिकाओ के साथ प्रकाशित हो चुकी हैं हिन्दी म प्रथम टीका महाराज जगमालसिहजी द्वारा लिखित और ठाकुर रामसिंह तथा प्रो० सूयकरण पारीक द्वारा सपादित है जो हिन्दुस्तानी अेकेडेमी द्वारा सन् १६३१ मे प्रकाशित हुई थी प्राक्कथन[1] म जगमालसिह ने लिखा है कि जब मैं 'वेलि' के दोहलो का अन्वयाथ, भावाथ, शब्दाथ आदि अपनी बुद्धि के अनुसार लिख चुका तो मैंने श्रीमान् ठा० रामसिंहजी एम ए और पडित सूयकरणजी पारीक एम ए को इसका पूण अधिकार दे दिया कि वे अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार इसको घटा बढा कर जसा उचित समझे वसा रूप देकर और इसका सशोधन और सपादन करके जहा और जसा चाह प्रकाशित करादे इन सज्जनो ने अपना अमूल्य समय लगा कर, बडा परिश्रम और खोज करके मेरी टीका की काया ही पलट दी ' इससे स्पष्ट पता चलता है कि प्रस्तुत टीका का मूलाधार जगमालसिहजी की वह टीका है जो वास्तव म अप्रकाशित ही रही इस प्रकार इस टीका के अन्तगत एक और टीका के अवस्थित होने के कारण हम इसे दो टीकाओ के रूप मे ही स्वीकार करना चाहिये इसके सम्पादकद्वय ने जो अध्यवसाय किया है वह प्रशसनीय है वेलि से सम्बन्धित सभी विषयो का समावेश करती हुई विस्तृत भूमिका, नोटस, पाठान्तर, शब्दकोष प्राचीन टीकायें, प्रथम पंक्ति सूची आदि स इस ग्रथ की उपादेयता निश्चय ही बहुत बढ गई है राजस्थानी की पूर्वी बोली ढूढाडी और सस्कृत की सुबोध मजरी टीकायें देकर सपादको ने पुस्तक को सर्वांगपूण बनाया है भारतीय भाषाओ के प्रथम कोटि के अध्येता डॉ० ग्रियसन ने इस पुस्तक के सबध मे लिखा है कि आधुनिक भारतीय भाषाओ मे मैंने कोई भी ऐसी कृति नही देखी है, जिसका सम्पादन और प्रकाशन प्रत्येक दृष्टि से इतना पूण हुआ हो '

इसके पूव, अपनी मातृभाषा इटेलियन से भी अधिक जिसको राजस्थानी भाषा से प्रेम था, एसे विदेशी विद्वान डॉ० तस्सितोरी न अनेक प्रतियो का आधार लेकर तथा कठोर परिश्रम के द्वारा वेलि का एक सुदर सस्करण ख्यातनामा एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ते स सन् १६१६ मे प्रकाशित करवाया था आगल भाषा मे लिखी हुई इसकी पन्द्रह पृष्ठीय भूमिका, पाठान्तर, विस्तृत नोटस (आगल भाषा मे) और शब्दकोष देकर इस विद्वान ने हमारी मातृभाषा राजस्थानी की जो अन्यतम सेवा की है, ऐसी सेवा स्वय राजस्थानी भाषा के धुरधर कहे जाने वाले

[1] वेलि क्रिसन रुकमणी री, प्राक्कथन, पृ० ६ प्रकाशक हिन्दुस्तानी अेकेडमी प्रयाग

विद्वान भी नहीं कर सके हैं 'वेलि क्रिसन रुकमणी री पृथ्वीराज री कही वचनिका राठौड रतनसिहजी री महेशदासोत री खिडिया जगा री कही,' तथा जोधपुर और बीकानेर आदि राज्यो के चारणी और ऐतिहासिक हस्तलिखित प्रतियो का सर्वेक्षण (Bardic and Historical manuscripts—Descriptive catalogue) आदि कई अमूल्य ग्रथो को प्रकाशित करवा कर, उसने हममे हेय दृष्टि से देखी जाने वाली हमारी भाषा के प्रति आदर की भावना उत्पन्न की उनके ग्रथ हमारे प्रेरणा स्रोत हैं, जिनसे प्रेरित होकर हम आज राजस्थानी भाषा की सर्वांगीण उन्नति तथा उसकी सवधानिक मान्यता के लिये आदोलन रत हैं

तीसरी टीका डॉ० आनदप्रकाश दीक्षित कृत है जो १६५३ मे विश्व विद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर से प्रकाशित हुई उसमे वेलि के साहित्यिक महत्व को केन्द्र मे रख, अनेक विश्वविद्यालयो ने अपने अपने स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमो मे इसको रखना प्रारम्भ किया, वेलि अधिकाधिक आकर्षण का केन्द्र बनती गई और उसके विविध पक्षो को लेकर द्रुतगति से काम होने लगा डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित द्वारा सपादित वेलि इसका ही परिणाम है उन्होने अपनी विद्वत्तापूर्ण विस्तृत भूमिका लिख कर उसके भाव जगत के अप्रतिम सौंदर्य व विविध पक्षो को एक एक कर उद्घाटित कर, इसकी सर्वोत्तमता को प्रदर्शित किया है इनके इस काय से अनेक साहित्य कर्मियो को प्ररोचना मिली है

सन् १६५३ मे ही प्रसिद्ध विद्वान प्रो० नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सपादित वेलि का प्रकाशन श्रीराम मेहरा एण्ड कपनी, आगरा से हुआ सयोग की बात तो यह है कि डॉ० दीक्षित और प्रो० स्वामी द्वारा प्रस्तुत दोनो टीकाओ का प्रकाशन एक ही वर्ष सन १६५३ मे हुआ, दोनो का प्रकाशन भी उत्तर प्रदेश से हुआ तथा दोनो के लेखक मूलत अध्ययन अध्यापन करने वाले प्राध्यापक हैं वयोवृद्ध प्रो० स्वामी राजस्थानी भाषा के अतिरिक्त हिंदी के भी जाने माने विद्वान हैं स्वामीजी की इस टीका की अनेक विशेषताएँ हैं अपनी प्रस्तावना मे राजस्थानी भाषा और उसका साहित्य, वेलि साहित्य तथा वेलि की भाषा का व्याकरण आदि अनेक उपयोगी विषयो पर गहराई से चिंतन किया है मूल पाठ के नीचे दोहला का ब्रजभाषानुवाद, शब्दार्थ और पाठान्तर दे दिये गये हैं तत्पश्चात् हिंदी गद्य भाषान्तर दिया गया है और अत मे परिशिष्ट के अन्तर्गत स्वय स्वामीजी द्वारा रचित हिंदी पद्यानुवाद का एक अश युद्ध वर्षा रूपक प्रकरण दिया गया है तुलनात्मक अध्ययन के लिये एक छद प्रस्तुत है—

मूल

घटि घटि घण घाउ, घाइ घाइ रत घण,
ऊच छिछ उछळइ अति ।

पिडि मीपनउ कि खेत्र प्रवाळी,
सिरा हस नीसरइ सनि ।।१२५।।

प्रो० स्वामी द्वारा पद्यानुवाद

घट घट मे हैं घाव घन औ, घाव घाव मे रक्त घना,
उछल रहा वह उनसे मानो फव्वारो का झुड बना ।
लाल लाल पौधे उग आये, मूगा क क्या खेत फले,
प्राण निकलते उनसे ऐसे पौधो से सिरटे निकले ।।

उत्तर प्रदेश स ही एक और टीका का प्रकाशन वि स० २०१० अर्थात् सन १९५४ मे मकर सक्राति को हुआ इसके सपादक श्री कृष्णशकर शुक्ल हैं तथा प्रकाशन सस्था है साहित्य निकेतन कानपुर ग्रथ सबधी कुछ व्याखाओ के अतर के अतिरिक्त इसकी अन्य कोई विशेपता नही है गुणवत्ता की दृष्टि से प्रो० स्वामीजी की ही नही डॉ० दीक्षित की टीका से भी यह सामान्य स्तर की ही मानी जायेगी

इसके एक वप ही बाद वि स २०११ मे वेलि की एक और टीका का प्रकाशन हुआ इस बार यह काय किसी हिन्दी प्रदेश की ओर से न होकर एक ऐसे प्रदेश से हुआ, जिसका राजस्थानी भापा और साहित्य के साथ साथ उसकी सस्कृति और सभ्यता से भी घनिष्ट नाता है इस बार यह काय फाबस गुजराती सभा ने उठाया और इसक सपादक हैं श्री नटवरलाल इच्छाराम देसाई इस टीका की सामान्य भूमिका मे श्री देसाई ने सवत् १६३८ को वेलि का निर्माणकाल माना है पर साथ ही साथ यह भी माना है कि विद्वानो से वेलि की साहित्यिक श्रेष्ठता आदि को प्रमाणित करवाने मे उन्हे छ सात वप और लग गये इसलिये वास्तव मे जनता के सामने वेलि प्रथम बार सवत १६४४ मे ही आई जो विद्वान सवत १६४४ को इसका निर्माण काल मानते हैं इससे उनको थोडी द्विधा अवश्य उत्पन्न हो जाती है इस टीका का सर्वोत्तम महत्व इसका एक गुजराती विद्वान द्वारा सपादित होना, गुजराती भापा के एक शोधसस्थान द्वारा इसको प्रकाशित करवाना तथा जिस प्रति को आधार मान कर इसकी टीका लिखी गई उसका गुजरात मे ही उपलब्ध होना है इसकी टीका पश्चिमी राजस्थानी (मारवाडी अर्थात जूनी गुजराती और समकूती (अय) गुजराती) मे है यह प्रति उन्हें सन १६२० में सूरत मे प्राप्त हुई थी तथा जिसे स० १७७४ मे तारापुर (गुजरात) म किसी अनाम लिपिकार ने लिपिबद्ध किया है इसमे कुल ३०७ छद हैं और अतिम दोनो छद रचना सूचक है

सातवी टीका डॉ० नेमीचन्द जन द्वारा सपादित है जो पद्म बुक कपनी, जयपुर द्वारा प्रकाशित है इसमे प्रकाशन काल का उल्लेख ही नही हैं व्याखाकार न इस सटीक मे मात्र २२७ छदो की व्याख्या ही प्रस्तुत की है बसत जन्म रूपक से लगा

मर महात्म्य और प्रशस्ति तक के छदो का उल्लेख न देख कर यही अनुमान होता है कि इस सस्करण का उद्देश्य केवल पाठ्यपुस्तक भर का है इसके उपरात डॉ० जन ने १३७ पृष्ठो की श्रमसाध्य सुन्दर भूमिका लिखी है पृ० १३७ पर ही डॉ० जैन ने जिन मुहावरो का निर्देश किया है उनम से केवल दो तीन ही मुहावरे हैं शेष तो अभिधा शक्ति वाचक केवल शब्द भर हैं

प्राचीन टीकायें

जिस प्रकार वेलि की प्राप्त प्रतिलिपियो म वि स १६६६ मे फूलखेडा मे 'रामा' द्वारा लिखित प्रति सर्वाधिक पुरानी है ठीक उसी प्रकार वेलि की सर्वाधिक प्राचीन टीका लाखा द्वारा वि स १६७३ मे ढूढाडी (पूर्वी राजस्थानी) मे लिखी गई थी *शोध की दृष्टि से दोनो बहुमूल्य हैं और ये दोना, अभय जन ग्रथालय बीकानेर* म उपलब्ध हैं लाखा की एक टीका मूल के साथ हमारे निजी सग्रहालय मे भी है

ढूढाडी टीका

इसका सवप्रथम प्रकाशन वेलि के सम्पादक द्वय ठा० रामसिह और पडित सूयकरण पारीक ने स्वसपादित वेलि के परिशिष्ट 'ख' म करवाया था आवश्यक शोध सामग्री के अभाव म तब वे यह निश्चय नही कर पाये थे कि इसका टीकाकार लाखा है उ होने लिखा है कि 'सवत १६७३ की ढूढाडी (पूर्वीय राजस्थानी) टीका *मे प्रथम मोहले की टीका नही मिलती इसलिये यह टीका सवत १८२६ मे श्रुवास* श्री ग्रासाजी द्वारा लिखाई हुई असली ढूढाडी टीका की नकल से ली गई है' श्री अगरचद नाहटा[1] ने अपने एक लेख म प्रमाणित कर दिया है कि इस ढूढाडी टीका के लेखक लाखा ही हैं टीका के प्रारम्भ मे मगलाचरण के जो छ छद दिये गये है उनम से वे दो जिनमे लाखा के नाम का उल्लेख हैं यहां उद्धत है—

> ध्यात्वा श्री गुरु पाद पद्म युगल, श्री म मुरारें पदा ।
> *वत्या प्रारभत जन प्रियकरी टीका लखाख्य कवि ।।*
> नत्वा कवीद्राम् सवज्ञाम् प्राथना सिद्धि दायकान ।
> लखाख्ये नापि सुधिया वेलि टीका प्रतन्यते ।।

सत्रहवी शताब्दी की राजस्थानी भाषा की इस पूर्वी बोली ढूढाडी के गद्य का उद्धरण दृष्टव्य है— कवि कहे छै । श्रीपति इसी कुण की मति छ जु तहारो गुण कथ । और इसो कुण ताह छ जु समुद्र तरं । अर इसो कुछ पखी छ जु गगन कहतां आकास लग पूहचे अर इसो कुण गरीब सामर्थ छ जु सुमेर ने उठावै । जो

---

1 वेलि की टीकायें—लेखक श्री अगरचद नाहटा, राजस्थान भारती, परिशिष्टाक मई सन् १९६१, अक ३, पृ० ३०

असौ असामथ छै तो वसि रहे जस न कहे। तावो जवाब आगला दुवाला माहि कहे।' ॥६॥

सुबोध मजरी टीका

इसे पद्मसुदर के शिष्य वाचक सारग ने वि स १६७८ म पालणपुर (गुजरात) मे लिखा था सारग की यह टीका सस्कृत मे है और इसका आधार लाखा की ढू ढाडी टीका है—

लाक्षाभिधेन भाषाया चतुरेण विपश्चिना।
चारणेन कृतो बालावबोधोऽथ सुलब्धये॥
पर न तादृगर्थोक्ति पटुत्व वितनोत्ययम्।
तन सस्कृत वाग् युक्तां टीकाम्येना करोम्यहम्॥

सपादक द्वय ने स्वसपादित वेलि मे इसे परिशिष्ट 'ग' म प्रकाशित करवाया है ढू ढाडी टीका मे से दिये गये उपयुक्त उद्धरण (छद स ६) की ही सारग द्वारा लिखित सस्कृत टीका का उद्धरण द्रष्टव्य है—'पुर्नविज्ञप्तिद्वारेण वदति—हे श्रीपते हे प्रभो स क कवि तव गुणान य स्तौति इति। स वस्तार को नदी तडागादिजल तरणको य समुद्र तरति। कश्च पक्षी बहुवुच्चैर्गतिकार पर गगनात ज्योतिष्कादि मडल यावद याति। को रक लघुपवतमुत्पाटयितुमशक्त, कथान्तरे गोवधन कलाश कृष्णेन रावणेन उत्पाद्य दोर्भ्यां धृत इति श्रूयते, मेरुमुत्पाटयितु को रक कर प्रसारयति न कोऽपि इति तत्वाथ।'

जयकीर्ति कृत वनमाली बालावबोध

काल सूचक छद के साथ ३०५ छदो वाली यह टीका स० १८८६ म जयकीर्ति न लिखी थी जयकीर्ति ने टीका लिखने के पश्चात् प्रशस्ति म अपने गुरु, स्थान तथा गच्छादि के विषय म लिखा है—

युगप्रधान जिणचद इद परि दीप्यउ दीवउ।
सीस प्रथम तसु सकलचद इण नामइ चावउ॥
वडभागी उमझाय सीस मुनिवरे शिरोमणि।
समयसुदर सिरदार मही प्रतपइ ज्यु दिनमणि॥

वादीया राय वाचक प्रवर हरषनद मयणो कायचइ।
सुविनीत वेलि त्रिवरण सुगम वाणारिस जयकीरति वदइ॥१॥

सह सोलह छासीयइ वरस मगसिर वर मासइ।
बीकनयरि महाराय राजि सूरिजसिध हरसइ॥

सरतरगछि गेहगहइ सूरि जिनराज सूरीसर।
आचारिज अधिकार सूरि कहियइ जिनसागर॥

प्रशस्ति से मालूम पडता है कि जयकीर्ति खरतर गच्छीय समयसुन्दर के शिष्य हपनद के शिष्य थे उस समय बीकानेर मे महाराज सूरजसिंघ का शासन था

प्रारम्भ म ही नौ छदो मे विद्या प्रदायिनी सरस्वती और गुरु को नमस्कार कर जयकीर्ति ने अपने पूव के टीकाकारो का सक्षिप्त वणन किया है—

सरसति माता समरि नइ, प्रणमी सद्गुरु पाय।
वनमाळी वल्ली तणी, वात वहु विगताय॥१॥
चावउ जगि भापा चतुर, चारण लापउ चग।
कीधउ पहिली वारतिक अरथि न उपजइ रग॥२॥
ग्वालेरी भापा गुपिल, मद अरथ मित भाव।
घात बध किय भापविउ, समभण तिण समभाव॥३॥
चतुर विचक्षण चतुर मति रवि तळि पडित राय।
सकळ विमळ भापा सुधी, कवि सारग कहाय॥४॥
जिण कवि भापा जोर करि, सस्कृत भापि सुजाण।
अरय कह्यउ लागइ विपम वदइ न मद वपाण॥५॥
गीरवाण भापा भागवत वल्ली जनक सु बीज।
कारिज हु कारण वहु, उपजइ जउ इम कीज॥६॥

जयकीर्ति ने लिखा है कि उसकी स्वय की टीका के पूव की टीकायें कठिन थी सारग की सस्कृत टीका तो मूल से भी कठिन है

लाखा चारण के पश्चात् ग्वालियरी भापा मे गोपाल ने जो टीका लिखी है वह अथ और भाव की दृष्टि से शिथिल है तत्पश्चात् सारग कवि ने सस्कृत मे सुदर टीका लिखी इस टीका मे छठे छद की व्याख्या इस प्रकार है—'हे श्री पति, हे कृष्ण ते कुण सुमति कवि जे ताहरा गुण स्तवइ अनइ ते कुण नदी तळाव प्रमुख जळतरण जाण तारू जे समुद्र तरइ। अनइ ते कुण पगी जे आकासि ज्योतिपीया रइ माडला सामि जाइ। कुण एक मेरु उपाडिवा हाथ पसारइ। अइ कोन कोइ करि सकइ नहिं। हिवइ कवि कीरति करिवा रइ विपइ पोतारउ श्रम सफळ करिवा भणी आगिलउ दुवालउ कहइ छइ॥६॥'

कुशलधीर गणि कृत नारायण वल्लो बालावबोध

काल सूचक ३०४ छदो से युक्त इस टीका के लेखक खरतर गच्छीय कुशल धीर माणिक्यसूरिजी की परम्परा के कल्याणलाभ के शिष्य थे यह टीका वि स

१६६६ मे कुशलधीर ने अपने शिष्य भावसिंह के लिये लिखी थी इसकी प्रशस्ति क पाच छदो मे से कुछ यहा प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिनमे कवि ने टीका समाप्ति का काल, शिष्य नाम आदि का उल्लेख किया है—

सोनहसो छिन्नवइ, मास आसू शुभ मासइ ।
विजयदसमी गुरुवार, एह विवरण उल्हासइ ।

× × ×

कहइ कुशलधीर पृथुराम कृत वनमाली वल्ली तणउ ।
वालावबोध जगि वाचता, घणी भूमि प्रसरउ घणउ ।।२।।

कनक विमळ शुभकम्म सहु सयणा स लहिज्जइ ।
शिष्य मुख्य सुविचार, भावसिंह मुज्झ भणीज्जइ ।
आग्रह कीधउ अधिक वेलि चउ विवरण कीज्जइ ।।३।।

× × ×

श्रीकृष्ण वेलि विवरण सकल, कुशलधीर वाचक कहइ ।
जे भणइ गुणइ मन सुधि सुणइ तीला लखमी ते लहइ ।।५।।

कुशलधीर सस्कृत के अच्छे ज्ञाता और सुकवि थे वलि के मूल छठे छद का भाष्य कवि ने इस प्रकार किया है— हे श्रीपति । हे नारायण कुण सुमति कवि जे ताहरा गुण स्तवइ । ते ताह्य कवण जे बि लाख जोजन नउ समुद्र तरइ । इसउ पखी कवण जे जोतिषीया रा मडळा सीम आकासइ जाइ । ते रक कहता मल्ल कवण जो मरु उपाडि कर हाथ रइ विपइ करइ एतावता न करि सकइ । जिम ए च्यार दृष्टान्त पूण भागइ न सभवइ तिम हु पिण थारउ जस कहो न सकु । अठइ रक शब्द नइ वेद कहइ छद रक कहता भिखारी ते न सभवइ वासला दृष्टात काई एक समय दिताह्या अनइ दरिद्री सवथा असमय म जिणइ अनेकार्थी माह कह्यउ जे रक कृपण मत्नायर इत्येनकार्थी तिण अठइ रक मल्ल कहीजइ अनइ कदाचित् कृपण पिण सभवइ लोभरी उपेक्षायइ । हिवइ कवि कीरीति श्रम सफळ समय तउ कहइ ।'

श्रीसार कृत सस्कृत टीका

खरतरगच्छीय श्रीसार जा रत्नहषजी के शिष्य थे, विद्वान व अच्छे कवि थ इन्होने वि स १७०२ म द्राविड कृष्णानद के लिय लाहौर म सस्कृत टीका सम्पूर्ण की इसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें कवि दुरसा आढा रचित वलि के प्रशसा क दोनो छन्दा का भी समावेश है परिचयस्वरूप प्रारम्भिक छदा म स सत्रहवें म …सार ने लिखा है—

मथापो देवदाविज्ञा कृष्णानदो द्विजाग्रणी ।
एव वल्या समुत्पत्ति श्रीसार मुग्पादय ।।१७।।

पृथ्वीराज की प्रशसा करते हुये टीकाकार ने कहा है—

पृथ्वीराज प्रसिद्धो जगति गुणनिधा राजराजा कवीना ।
समा वल्लीतिनाम्नी हरि चरितय युता राज गीताचकार ।।१६।।

पृथ्वीराजावतारेण भक्तानुग्रह काम्यया ।
स्वय नारायण स्वस्य जगादचरित्र हित । २०।।

प्रशस्ति म कवि ने लिखा है कि इस टीका को इसन शाहजहा के काल म समाप्त किया या तथा उसके गुरु श्री रत्नहष हैं—

प्रतापतपनाश्यात दिग्मडल महोदय
श्री साहिजहाँ साहि राज्य जयतु सवदा ।।२।।

× × ×

चद्र गच्छ क्षीर वृक्ष क्षेमशाखा विलासिन ।
वाचक श्री रत्नहप यति हसजयतुते ।।४।।

लक्ष्मीवल्लभ कृत बालावबोध

श्री अगरचन्द नाहटा ने १८वी शताब्दी म लक्ष्मीवल्लभ नामक सस्कृत हिन्दी, और राजस्थानी मे अनेक ग्रथा के रचयिता निर्मित एक टीका का उल्लेख किया है, जो विजयपुर के चतुरजनो के लिये लिखी गई थी प्रारम्भ म कवि न मगलचारो के तीनो प्रकारो का वणन तत्कालीन भाषा मे किया है य मगलाचरण इस प्रकार है—

'ग्राशीनमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम ।'

लक्ष्मीवल्लभ ने प्रशस्ति का अन्तिम भाग सस्कृत मे लिख कर इसे पूण किया हैं— इति श्री पृथ्वीराज प्रणीत वेलि बालावबोध समाप्त ।। श्रीमत् क्षेमशाखाया वाचनाचाय श्री लक्ष्मीकीर्तिगणि शिष्य श्री लक्ष्मीवल्लभेन श्री विजयपुरस्य चतुर जनाम्यथनया कृतोयम बालावबोध समाप्त ।।श्रीरस्तु।।

हमारे निजी ग्रथालय के एक अन्य गुटके मे सवतसूचक छद वाली टीका सहित एक ऐसी हस्तलिखित प्रति सग्रहित है जिसम न तो प्रारम्भिक परिचय ही और न अत मे किसी प्रकार की प्रशस्ति दी गई है प्रतिलिपिकार अथवा टीकाकार का नाम न होते हुये भी जीण पत्रो पर लिखी यह टीका बडी

सुवाच्य है—वेलि के मूल छद छ की टीका इसमे इस प्रकार दी गई है—'कवि कहे छा। श्री पति इसी कौण की मति छे, जु तुहारा गुण कथ। अर इसो कुण ताहू छै जु समुद्र तरें। अर इसो कुण पखी छे गगन आकास लग पुहच। और इसो कुण गरीब छे सुमेर नै उठाव। जो असी असमथ छ तो वेसि रहै। जै सेंन कह ताको जबाब आगिला दुआला में कहै छे।'

टब्बा

इनके अतिरिक्त प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने कुछ टबाओ की सूचना दी है। राजस्थानी मे टवा टिप्पणी का पर्याय है टवा उस टीका को कहते हैं जो मूल पाठ के साथ ही मूल पक्ति के ऊपर या हाशिये मे लिखी जाती है स्वामीजी न ऐसे दो टवाओ के नाम इस प्रकार बतलाये हैं—(१) शिवनिधान कृत टबा और (२) कमल रत्न शिष्य दानचद्र कृत टबा।

प्रो० स्वामी ने जिस मारवाडी या पश्चिमी राजस्थानी मे लिखित टीका की सूचना दी है, वह वास्तव मे टीका न होकर मारवाडी मे लिखी हुई मूल प्रति है जो वि स १६७६ म दक्षिण मे बुरहानपुर के समीप मेहकर मे लिखी गई थी[1]

ब्रजभाषा में पद्यानुवाद

गोपाल लाहोरी, जिसने ब्रजभाषा मे वेलि का पद्यानुवाद किया है, अपनी प्रशस्ति मे कहा कि मैंने मिरजाखान की आज्ञा लेकर इसका अनुवाद किया है और उसका नाम रसविलास रखा है साथ मे यह भी लिख दिया है कि मरु निरस मरु भाषा को त्याग इसका पद्यानुवाद चमत्कारपूर्ण और सुदर ब्रजभाषा मे किया है—

> आग्या मिरजाखान को लई करी गोपाल,
> वेलि कहे को गुन यहै कृष्ण करी प्रतिपाल।
>
> मरुभाषा निरजल तजी करि ब्रजभाषा चोज,
> अब गोपाल यातें लहै सरस अनूपम मोज।
>
> कवि गोपाल यह ग्रथ रचि लाया मिरजा पास।
> रसविलास दे नाउ उनि कवि की पूरी आस ॥

इस प्रशस्ति से दो तथ्यों का उद्घाटन होता है एक तो मिरजाखान नामक एक मुसलमान अधिकारी का वेलि के प्रति आत्मार्पण और दूसरा डिंगल जसी समृद्ध और सरस भाषा को त्याग कर अनुवाद के लिये ब्रजभाषा को अपनाना

---

1 Dr L P Tessitori Introduction—Krisna Rukmain Ri Veli Page XIV

सम्भव है कि अन्य कृष्णभक्त मुसलमानों की भाँति मिरजाखान भी भगवान श्रीकृष्ण के गुणों से अभिभूत हो गया हो, और डिंगल को नहीं जानने के कारण ही उसने गोपाल लाहोरी को इसका ब्रजभाषा में अनुवाद करने के लिये आज्ञा दी। इस घटना से ग्रंथ की उत्तमता और उसकी प्रसिद्धि तथा उसके व्यापक प्रसार का पता चलता है

एक ओर गोपाल लाहोरी ने मरुभाषा के निरस होने के कारण उसके त्यागने की बात कही है तो दूसरी ओर कैसी विरोधी बात है कि स्वयं गोपाल लाहोरी ने मरुभाषा के ग्रंथ को अपने अनुवाद का आधार बनाया जबकीनि ने इस ब्रजभाषा के अनुवाद को सामान्य कोटि का माना है

मेवाड़ी टीका

राजस्थानी की मेवाड़ी बोली में लिखी टीका उदयपुर के सरस्वती भंडार में सुरक्षित है

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेक विद्वानों द्वारा अनेक भाषाओं और बोलियों में इसकी जो टीकाएँ लिखी गई हैं वे सब वेलि की गुणवत्ता की परिचायक हैं

महाराज पृथ्वीराज राठौड

कृत

अन्य रचनाए

यद्यपि वेलि के अतिरिक्त पृथ्वीराज राठौड़ का अन्य कोई प्रबंध काव्य उपलब्ध नही है फिर भी प्रचुर मात्रा मे मुक्तक काव्य के रूप मे जो सामग्री हमे आज प्राप्त है, वह एक से अधिक प्रबंध काव्य के लिये यथेष्ट है दो दशक पूर्व, साहित्यिक शोध कार्य के अभाव मे इतनी निपुन सामग्री से हमारा परिचय नही था, पर हमारी साहित्यिक बुभुक्षा ने सारी अवगुंठित सामग्री को अनावृत कर, वे रत्न शोध निकाले हैं जो उस कर्मण्य महाव्यक्तित्व के कीर्ति कलश को और शुभ्र बना सके हैं ये सारे के सारे मुक्तक एक-एक से बढकर हैं, जो विषय वविध्य, रचनाशैली, रस तथा भाषा वैभिन्य की बहुरंगी आभा से दमक रहे हैं इनमे यह क्षमता है कि ये पाठको को रसानुकूल भावविभोर कर काव्यानद की प्राप्ति करवा सकते हैं

विविध स्थानो से प्राप्त सामग्री मे लगभग ४१८ दोहो और ८० गीत छप्पय, पद आदि का समावेश है, जिनको देखकर आश्चर्यचकित होना पडता है कि अनेक राजनतिक व सामाजिक कार्यों तथा देश विदेश मे अनेक युद्धों मे उलझे रहने के पश्चात् भी जितनी अधिक मात्रा मे और जो उत्कृष्ट साहित्य सृजन पृथ्वीराज ने किया है, वह अनूठा है राजकीय परम्पराओ का निर्वाह और असीम ऐश्वर्य का उपभोग करते हुये यदि बहुधधीय वेलिकार ने अपने मात्र एक ग्रंथ 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' से ही जब साहित्यकारो और भक्तो मे वशिष्ठ्य प्राप्त कर लिया तो उनकी अन्य रचनाएँ जो अब तक अविवेचित ही रही हैं जब अपने सही परिप्रेक्ष्य मे साहित्यिक जगत के सम्मुख प्रस्तुत की जायेंगी तो निश्चय ही उनका स्थान और ऊँचा उठ जायेगा

उपर्युक्त सारी सामग्री का अस्सी प्रतिशत भक्ति साहित्य है, पद्रह प्रतिशत वीरो का प्रशस्ति साहित्य तथा शेष पाँच प्रतिशत साहित्य ही ऐसा है जो कई अन्य विषयो तथा प्रसगो से सबधित है कवल इसी से पुन यह तथ्य पुष्ट हो जाता है कि पृथ्वीराज राठौड मूलत एक भक्त कवि हैं

इस बिखरी हुई सामग्री को प्राप्त करना कोई सहज कार्य न था इसके पीछे पू० पिताश्री प० बदरीप्रसाद साकरिया के अनेक वर्षों का अनवरत प्रयत्न तथा लगन

छिपी हुई है पूज्यपाद पंडितजी ने अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर सरस्वती पुस्तक भंडार उदयपुर, इन्द्रगढ पोथीखाना राज० शोध संस्थान, चौपासनी जोधपुर तथा निजी पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रंथों के अवलोकन के पश्चात् सारी सामग्री को एकत्रित किया था सरस्वती पुस्तक भंडार, उदयपुर की सामग्री इकट्ठी करने में उदयपुर के तत्कालीन क्यूरेटर श्री परमेश्वरलाल सोलंकी ने सहायता प्रदान की थी उन्होंने कई ग्रंथों की प्रतिलिपियां करवा कर भेजी, जिनसे सामग्री चयन में बड़ा सुभीता रहा कई प्रतियों का मिलान कर तथा उनके पाठान्तरों और पदच्छेद आदि पर समग्र रीति से मनन करने के पश्चात सुज्ञ पाठकों के सम्मुख प्रथम बार एक सही रूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है विश्वास है विद्वानों द्वारा यह संग्रह समादृत होगा

डॉ० तस्सितोरी ने पृथ्वीराज की अन्य रचनाओं के संबंध में कोई निश्चित संख्या तो नहीं दी है पर प्रसंगवशात् उन्होंने लिखा है कि 'Prithi Raja has left, besides the Veli, quite a number of other small poems, mostly 'sakha ra-gita', that is to say commemorative songs Of the many anthologies of miscellaneous commemotative songs (phutakara gita), which are in the hands of the hards of Rajputana, there is probably none which does not contain at least one or two examples by Prithi Raja To give particulars about these smaller compositions would serve no purpose here and would on the other hand require a careful study of them, which I confess I have had no time to make It will suffice to say that they mostly refer to contemporary chiefs, among whom Prithiraja's brother Rama Singha, who was assassinated about A D 1578 (Samwat 1634) and for whom our Author seems to have had a special predilec tion, and that they are not all of equal merit, nor of equal interest Evidently, they were composed at different periods hence the differences To the last years of PrithiRaja s life may be safely ascribed three stotras in duhas one in honour of the Thakurji (Krsna), one in honour of Shri Ramchandra and one in honour of the Ganga They are full of devotional spirit and must be senile productions '[1]

---

१ वेलि क्रिसन रुकमणी री राठौड पृथ्वीराज री कही' सम्पादक—डॉ० एल पी तस्सितोरी Introduction पृ ६ भावार्थ इस ग्रंथ के लेखक द्वारा प्रस्तुत किया गया है

(भावार्थ—वेलि के अतिरिक्त पृथ्वीराज ने कई छोटी छोटी रचनाएँ की हैं जो अधिकांशत 'साख रा गीत' हैं यानि की स्मरणार्थ गीत हैं इस प्रकार क पद्य सग्रह मे से कई फुटकर गीत हैं जो राजपूताना के चारणो के पास हैं और इसमे से कदाचित् ही कोई ऐसा सग्रह होगा, जिसम पृथ्वीराज के कहे हुये एक दो उद्धरण न हो यहाँ इन छोटे काव्यो का विस्तृत वणन देने से कोई लाभ न होगा समयाभाव के कारण मैं इनका सपूण अध्ययन नही कर सका हूँ यहाँ इतना ही कहना उचित रहेगा कि ये अनक राजाओ के सबध मे हैं जिनमे पृथ्वीराज का भाई रामसिंह भी था, जिसकी हत्या सन १५७८ (सवत् १६३४) मे कर दी गई थी, और जिसके लिये पृथ्वीराज को स्नहपूण पूर्वाग्रह था और फिर ये सभी काव्य एक सी रुचि व एक समान उच्चकोटि के नही हैं स्पष्ट ही, ये सारे काव्य एक स्थान पर निर्मित नही हुये थे और इसीलिये यह अन्तर है उनके जीवन के अतिम भाग के लिये सहजता से यह कहा जा सकता है कि उन्होने तीन स्तोत्र दूहो मे (तीन काव्यो का) निर्माण किया—ठाकुरजी (कृष्ण) रा दूहा, रामचन्द्रजी रा दूहा और गगाजी रा दूहा ये अपवाद भक्तिपूण है और इन्हे वृद्धावस्था की उपज ही कहना चाहिये।)

ठाकुर रामसिंह व पडित सूयकरण पारीक द्वारा सम्पादित वेलि म कवि की अन्य रचनाओ के अन्तगत भगवान राम से सबधित ५० भगवान कृष्ण से सबधित १६५, गगालहरी (भागीरथी ४८, जाह्नवी और मदाकिनी ३०) के ७८ दोहो तथा अन्य फुटकर दोहो और गीतो का उल्लेख किया गया है इनमे से कुछ दोहों और गीतो को अथ सहित उद्धृत किया गया है, पर गीतो की सख्या नही दी गई है[1]

इसके पश्चात प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने स्वय सपादित वेलि मे अन्य रचनाओ का वर्गीकरण इस प्रकार किया है[2]—

(१) ठाकुरजी रा दूहा—कुल सख्या २१५ जिनमे से ५० भगवान राम से तथा १६५ भगवान कृष्ण से सबध रखते है दोहे विनय प्रधान है

(२) गगाजी रा दूहा—इनकी सख्या ७८ के लगभग है इनमे गगा की महिमा का वर्णन है

(३) महाराणा प्रताप रा दूहा—ये महाराणा प्रताप की प्रशसा मे लिखे गये हैं

१ वेलि क्रिसन रुकमणी री, प्रकाशक हिन्दुस्तानी अकेडेमी, इलाहाबाद प्रथम सस्करण सन् १९३१ पृ० ३० से ४६

२ वेलि क्रिसन रुकमणी री, प्रकाशक श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा प्रथम सस्करण १९५३ पृ० २७ २८

(४) प्रकीर्णक दूहे—ये विविध विषयो पर लिखे गये हैं, पर प्रधानतया भक्ति, वैराग्य और नीति सबधी हैं

(५) प्रकीर्णक गीत—य विविध विषयो से सबधित हैं

(६) नख शिख—यह रचना पिंगल भाषा की है राधाकृष्ण का नख शिख शृगार वर्णित है

श्री अगरचद नाहटा ने सख्या इस प्रकार बतलाई है[१]—

(१) रामस्तुति ५० दूहा
(२) कृष्णस्तुति १६५ दूहा
(३) गगास्तुति ८० दूहा
(४) दसमभागवत रा दूहा १८४

श्री अगरचद नाहटा द्वारा उल्लिखित दसमभागवत के दूहे अद्यावधि अलग से देखने मे नही आये है सभव है कि 'वसदेवरावउत' के दोहे भागवत् के दसमस्कध की कथाओ की ओर सकेत करने वाले होने के कारण ये दोहे दसमभागवत् के दोहो के नाम से भी प्रसिद्धि पा गये हो श्री नाहटा से पत्र व्यवहार करने पर भी वे इन दोहो के अलग अस्तित्व पर प्रकाश नही डाल सके हैं

इसके एक वष पश्चात् लेखक ने अपने एक लेख 'महाराज पृथ्वीराज राठौड की अय रचनाएँ' मे नई गवेषणाओं के आधार पर प्रथम बार साहित्यिक जगत के सम्मुख एक विस्तृत तथा नई सूचनाओं से सभर सूची प्रस्तुत की थी[२]—

(१) विठ्ठल रा दूहा (गुरु प्राथना)	१२
(२) वसदेवरावउत रा दूहा (श्रीकृष्ण स्तुति)	१८५
(३) दसरथरावउत (दसरथदेवउत) रा दूहा (राम स्तुति)	५४
(४) भागीरथी रा दूहा (श्री गगा स्तुति)	८८
(५) भक्ति विषयक स्फुट गीत	१६
(६) पद (हरियश)	१० १५ अनुमानत

उपयु क्त रचनाओ के अतिरिक्त महाकवि द्वारा रचित फुटकर काव्य इस प्रकार उपलब्ध हैं—

---

[१] पृथ्वीराज जयती (सन् १९६०) पर दिये गये भाषण में से उद्धत, जो राजस्थान भारती भाग ७ अक १-२ में प्रकाशित हुआ है।

[२] राजस्थान भारती का पृथ्वीराज राठौड जयती विशषाक का परिशिष्टाक, भाग सात अक ३ पृ० ३६

(१) प्रस्तावित फुटकर दूहा (नीति, एतिहासिकादि)	६०
(२) प्रशसात्मक दोहे (माधोदास १, केसो १, मालो भाढो १, गाडण रामसिंह १)	४
(३) प्रताप रा दूहा	१४
(४) अकबर से प्रताप सबधी वाद की चिंता का चपावती के दोहे का उत्तर (मनहर छद (पिंगल)	१
(५) वीर, जूभार और राजाम्रा के प्रशसात्मक गीत	५१
(६) चपावती वियोग रा दूहा	१५
(७) लालादे सबधित दोहे	
(८) पृथ्वीराज और वश्वानर सवाद रा दूहा	३

राजस्थानी सबद कोस' के रचयिता श्री सीताराम लालस ने लिखा है कि पृथ्वीराज के लिखे पांच ग्रथ मिलते हैं[1]—

(१) वेलि क्रिसन रुकमणी री, (२) दसमभागवत रा दूहा, (३) गगा लहरी (४) वसदेरावउत और (५) दसरथरावउत श्री सीताराम लालस न भी श्री अगरचद नाहटा की भाति दसमभागवत रा दूहा की दाहा सख्या १८४ मानी है उन्होंने लिखा है कि 'दसमभागवत रा दूहा' मे कृष्ण भक्ति सबधी दोहे हैं तब स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है कि लालसजी ने 'वसदेरावउत' नामक जिस रचना का उल्लेख किया है उसका वण्य विषय क्या है ?

डॉ० हीरालाल माहेश्वरी ने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य म पृथ्वीराज राठौड के अ तगत लिखा है कि इनकी निम्नलिखित रचनाएँ प्रसिद्ध है[2]—

(१) वेलि क्रिसन रुकमणी री
(२) ठाकुरजी रा दूहा
(३) गगाजी रा दूहा
(४) फुटकर दोह और गीत आदि

डॉ० माहेश्वरी ने आगे लिखा है कि 'इनके अतिरिक्त मिश्रबधुओ न इनके एक ग्रथ प्रेमदीपिका[3] का उल्लेख किया है, जो ब्रजभाषा की रचना है इसी प्रकार

---

१ राजस्थानी सबद कोस के प्रथम खण्ड की प्रस्तावना क राजस्थानी साहित्य का परिचय पृ० ११८ प्र० राजस्थानी शोध सस्थान चोपासनी जोधपुर।

२ राजस्थानी भाषा और साहित्य प्र० आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता पृ० १२५

मिश्र बधु विनो प्रथम भाग

डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने 'श्यामलता'[१] का उल्लेख किया है किंतु इसका कोई विशेष परिचय उन्होंने नही दिया है दोनो ही रचनाएँ सदेहास्पद हैं क्योंकि किसी राजस्थानी विद्वान ने इसका अद्यावधि उल्लेख नही किया है हा व्रजभाषा मे लिखित इनके फुटकर दोहे अवश्य मिलते हैं"

डॉ० गोरधन शर्मा ने अपने ग्रथ 'राजस्थानी साहित्य के ज्योतिष्पुज' म लिखा है कि पीथळ के निम्न डिंगळ ग्रथ प्रसिद्ध हैं—१ वेलि क्रिसन रुकमणी री, २ दसमभागवत रा दूहा, ३ गगा लहरी, ४ वसदेरावउत, ५ दसरथरावउत, ६ फुटकर पद गीतादि 'दसमभागवत रा दूहा' शात रस की कृष्णभक्ति को आधार बना, लिखी हुई रचना है गगालहरी मे भागीरथी की स्तुति के ८० के लगभग दोहे रचे गये हैं 'दसरथरावउत' और वसदेरावउत मे क्रमश राम व कृष्ण भक्ति के दोहे हैं[२]

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि डॉ० तस्सितोरी स लगाकर आज तक के विद्वानो मे उनकी अन्य रचनाओ की निश्चित सख्या तथा रचनाओ मे प्रयुक्त विभिन्न छदो की सख्या के बारे मे मतैक्य नही है डॉ० तस्सितोरी ने कवि की अन्य रचनाओं का विवेचन न कर इगित भर कर दिया है ठा० रामसिंह और स्व० पारीकजी ने तीन ग्रथो की एक निश्चित सख्या दी है, पर स्फुट गीतो और दोहो आदि की सख्या नहीं दे पाये हैं प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने अपेक्षाकृत वज्ञानिक वर्गीकरण किया है जहाँ तक राम, कृष्ण और गगा से सबधित काव्यो की छद सख्या का वणन हैं, दोनो की सख्या समान है, पर स्वामीजी ने नख शिख नामक एक नई रचना का उल्लेख किया है, जो पिंगल भाषा मे है जिसका वण्य विषय राधाकृष्ण का शृगार है तथा जो छप्पय छद मे लिखी गई है वस्तुत राधाकृष्ण के शृगार से सबधित कई फुटकर छद हमे प्राप्त है, पर इस नाम की रचना का पता नही चला है श्री अगरचद नाहटा ने अपने भाषण मे राम, कृष्ण और गगा स्तुति के अतिरिक्त दसमभागवत के जिन १८४ दोहा का उल्लेख किया है, काफी चर्चा का विषय बन गया है स्वतत्ररूप मे दसमभागवत के दोहे आज तक प्राप्त नही हुये हैं मेरी अपनी मान्यता है कि दसमभागवत रा दूहा और वसदेवरावउत रा दूहा दोना एक ही हैं ऐसा स्वीकार कर लेने के पश्चात् भी दोनो की सख्या के अतर का प्रश्न तो खडा ही हैं श्री सीताराम लालस ने भी दसमभावगत के दोहा का उल्लेख किया है और उन्होने भी इसकी छद सख्या १८४ ही दी है पर दोनो ने कोई उद्धरण नही दिये हैं श्री हीरालाल माहेश्वरी ने जिन ठाकुरजी के दोहो का उल्लेख किया है उसका उल्लेख डॉ० तस्सितोरी के अतिरिक्त अन्य किसी भी विद्वान ने नहीं किया हैं

१ अकबरी दरबार के हिंदी कवि पृ० ४२, प्रकाशनकाल स० २००७

२ राजस्थानी साहित्य क ज्योतिष्पुज पृ० ३४, प्रकाशक चिन्मय प्रकाशन जयपुर।

डॉ० तस्सितोरी न तो कोष्टक मे कृष्ण लिखकर सारी शकाओ को निर्मूल कर दिया हैं वे यह मानते हैं कि ठाकुरजी के दोहो से उनका तात्पय वसुदवरावउत के दोहा मे ही है, पर डॉ० माहश्वरी के उल्लेख म किसी स्पष्टता के अभाव म ठाकुरजी के दोहो को क्या समझा जाये ' क्या इनको वसुदेवरावउत रा दूहा ही माना जाय या दसरथदेवउत तथा वसुदेवरावउत के दोहो के सम्मिलित रूप को ठाकुरजी रा दूहा नाम स अभिहित किया जाय ? इसके अतिरिक्त किस ग्रथ के कितने छद प्राप्त हुय हैं उसकी सख्या भी डॉ० माहेश्वरी नही दे सके हैं

डॉ० गोवद्ध न शर्मा ने अन्य ग्रथो की छद सख्या न देकर केवल गगालहरी क द० छदो का जिक्र किया है उनके मत से दसमभागवत रा दूहा' और वसदरावउतरा दूहा दोनो अलग अलग ग्रथ हैं पर दोनो का वण्य विपय कृष्णभक्ति ही है

हमारे पास जो हस्तलिखित सामग्री है उसमे इन्ही वसदेवरावउत के दोहो का वर्गीकरण श्री परमेसरजी रा दूहा तथा दसमभागवत रा दूहा की भाँति किया गया है अतएव अब यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि वसदेवरावउत रा दूहा परमेसरजी रा दूहा, ठाकुरजी रा दूहा तथा दसमभागवत रा दूहा, सब एक ही हैं सभी दोहो की अन्तिम अर्द्धाली मे वसदेवरावउत से भगवान श्री कृष्ण को सबोधित किया गया है इसीलिये इसका 'वसदेवरावउत रा दूहा' ही अधिक सायक नाम है

अथ श्री परमेश्वरजी रा दूहा

पूठी रय परमेस आगल रय तु ईसवर ।
भुज दाहिणै सुरेस, वामै वसदेरावउत ॥

अथ दसमभागवता रा दूहा

तु लिपमी उर लागि पनग गाद नद पालणै ।
काइ पौढीयो पिरागि, वड सिर वसदेरावउत ॥

अपने भाषण मे श्री अगरचद नाहटा ने दो सौ बावन वष्णवन की वार्ता म से एक प्रसग का उद्धृत करते हुये कहा कि वेलि के अतिरिक्त पृथ्वीराज ने स्यामलता ग्र थ का निर्माण भी किया था—

'सो वे पृथ्वीसिहजी कविता बहोत करत सो उनन कवित्त, सवया, दोहा चौपाई एस अनक प्रकार की कविताएँ रची हैं और रुक्मणी वेल और स्यामलता इत्यादि ग्र थ हू बनाय । इसी प्रकार मिश्रबधु विनोद म कवि द्वारा रचित प्रम दीपिका का उल्लेख है पर उसका आधार अज्ञात है दोनो ही कृतियो के स्वतन्त्र रूप म अस्तित्व म होन की शका है प्रा० स्वामी न जिन सत शिल नामक ग्र थ

का उल्लेख पृथ्वीराज की अन्य रचनाओ के अन्तगत किया है, वह भी एक स्वतत्र रचना न होकर कुछ पदो का सग्रह भर है रुकमण रमणाविषयक पद जा पृथ्वीराज द्वारा रचित हैं इसी ओर सूचित करता है सभव है कि स्यामलता भी इसी कृति का अपर नाम हो

साहित्य जगत के सम्मुख प्रथम बार राजस्थान भारती के माध्यम से मैंने इनकी रचनाओ पर विस्तृत प्रकाश डाला था और कई नई रचनाएँ प्रकाश म आई थी विठ्ठल रा दूहा सवथा नई रचना है, जिसका उल्लेख अद्यावधि किसी विद्वान ने नहीं किया है इसी प्रकार अनेक गीत, दोहे और पद, जो पहिले अज्ञात थे अब अनेक ग्र थो के अवलोकन के पश्चात् हमे प्राप्त हैं इससे इन दोहो, गीतो और पदो की सख्या में काफी वृद्धि हुई है स्व पारीकजी ने वसदेवरावउत रा दूहा की सख्या १६५ बतलाई थी पर अब वह बढ कर १८३ हो गई है गगाजी रा दूहा की सख्या जहाँ पहले ७८ मानी गई थी, अब वही सख्या ८८ हो गई है इसी प्रकार पदों और गीतो की सख्या म भी वृद्धि हुई है और अब हमारे पास इतनी सामग्री एकत्रित हो गई है कि उसका पुनर्वैज्ञानिक विभाजन आवश्यक हो गया है

वेलि के अतिरिक्त पृथ्वीराज राठौड की समस्त मुक्तक रचनाओ को मोटे तौर से दो भागों मे विभाजित किया जा सकता है—(१) भक्ति परक और (२) स्फुट भक्तिपरक रचनाओ के अन्तगत कवि की निम्न रचनाएँ आती हैं—

(१) भक्ति परक रचनाएँ

(क) गुरभक्ति बल्लभदेवउत (विट्ठल) रा दूहा	१२ दोहे
(ख) रामभक्ति दसरथरावउतरा रा दूहा	५५ ,,
(ग) कृष्णभक्ति वसदेवरावउत रा दूहा	१८३ ,
(घ) ईश्वर स्तुति विषयक पद	१५ पद
(च) उद्बोधन	
(।) उद्बोधन के छप्पय	२१ छप्पय
(॥) उद्बोधन के पद	४ पद
(॥।) उद्बोधन के दोहे	६२ दोहे
(छ) गगाजी रा दूहा (भागीरथी ५८, जाह्नवी २६, मदाकिनी १)	८८ दोहे

(२) स्फुट रचनाएँ

(ट) प्रशस्ति काव्य (वीर, जूझार और राजाश्रय आदि के प्रशसात्मक गीत)	३८ गीत
(ठ) प्रताप रा दूहा	१४ दोहे

(ड) प्रशसात्मक दूहा (गाधोदास १, केसो १, मालो व आढो १, गाडण रामसिंह, १ — ४ „
(ढ) चपा से सबधित दोहे — १६ „
(त) लालादे सबधित दोह — ३ „
(थ) गुरु सबधी दोहे — २ „
(द) अकबर से प्रताप सबधी वाद पर चपावती को दिया गया उत्तर — १ पद

पृथ्वीराज राठौड की भक्ति, शौय, विद्वत्ता और काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर अनेक उच्च कोटि के कवि व भक्तजनो ने कविवर की प्रशसा मे उपयुक्त समय पर विशिष्ट गीत व छद लिखे हैं जो उनकी प्रभविष्णता के साक्षी हैं भक्तमाल के रचयिता नाभादास, भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास, राष्ट्रकवि दुरसा आढा, कविवर मोहनरामजी तथा भोजक यादव आदि कुछ ऐसे ख्यातनाम कवि हैं, जिन्होने पृथ्वीराज की भूरि-भूरि प्रशसा की है कई आधुनिक कवियो ने भी उनकी प्रशसा म उन्हें भावभीनी काव्याजली अर्पित कर कवि ऋण से उऋण होने का प्रयत्न किया है इस सबध मे शार्दूल राजस्थानी रिसच इस्टीट्यूट, बीकानर, उसके द्वारा प्रकाशित शोध पत्रिका 'राजस्थान भारती' और उसके विद्वान सम्पादक आचाय प० बदरीप्रसाद साकरिया का आभारी होना पडेगा जिन्होने देश के विविध प्रतिष्ठित विद्वानो से कवि के विभिन्न पहलुओ पर प्रकाश डलवाकर पृथ्वीराज विशेषाक व परिशिष्टाक के माध्यम से हमे नई दिशा दी

उपयु क्त वर्गीकृत सामग्री को निम्नाकित दो विभागा मे विभाजित कर प्रकाशित किया जा रहा है—

(क) पृथ्वीराज कृत ग्र थ (वेलि के अतिरिक्त)

(ख) प्रकीणक

पृथ्वीराज कृत ग्र थो मे—(१) विट्ठल रा दूहा (२) वसदेरावउत रा दूहा, (३) दसरथदेवउत रा दूहा तथा (४) भागीरथी रा दूहा का समावेश है जबकि प्रकीणक मे शेष सामग्री को निम्न उपविभागो मे विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है—(च) ईश्वरभक्ति विषयक पद (छ) उद्बोधन के पद और दोहे आदि, (ज) महाराणा प्रताप रा दूहा, (झ) प्रशस्ति गीत, (ट) स्फुट, (ठ) पृथ्वीराज राठौड सबधी प्रशसात्मक सामग्री

वल्लभदेवउत (विठ्ठल)

रा

दूहा

विठ्ठल रा दूहा

भारतीय सस्कृति म गुरु की महिमा अनत है गुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती और बिना ज्ञान के मुक्ति प्राप्त करना असभव है कही गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि मानकर उसको साक्षात् परब्रह्म की कोटि मे रखा गया है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वर ।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नम ।।

तो दूसरे स्थान पर गुरु को परमात्मा से भी शीर्षस्थान दिया गया है—

गुरु गोविंद दोनो खडे, किसके लागू पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, जिन गोविंद दियो बताय ।।

इसी प्रकार 'आचार्य देवो भव' आदि कई ऐसे उद्धरण हैं, जिनसे गुरु के अपरिहार्य महत्व को समझा जा सकता है पृथ्वीराज राठोड ने भी गुरु किया, पर उन्होने जिन गुरुगणो के नामो का सकेत किया है, उससे भगवान दत्तात्रेय का स्मरण हो आता है उन्होने कुत्ते से लेकर अन्य अनेक पशुपक्षियो तक को अपना गुरु बनाया वेलिकार इस सीमा तक तो नहीं गये हैं, पर उन्होने दो छदो मे सात गुरुओ के नामो का साभार उल्लेख किया है एक दोहा हम दयालदास कृत आर्याख्यान कल्पद्रुम से प्राप्त हुआ है वह इस भाँति है—

दीक्षा गुरु विठलश है गुरु गदाधर व्यास ।
चतुराई गुरु रामसिंह, तीन गुर पृथिदास ।।

आचार्य वल्लभाचार्य के पुत्र और वल्लभ सम्प्रदाय के द्वितीय आचार्य श्री विट्ठलनाथजी महाराज इनके धर्मगुरु थे, गदाधर व्यास इनके विद्या गुरु तथा लौकिक व्यवहार के गुरु इनके अग्रज रामसिंह कल्याणसीओत रहे अपने भाई रामसिंह की प्रशसा करते हुये पृथ्वीराज ने उन्हें तीन युगो म तीन भिन्न भिन्न रामावतारो के समान और कलियुग म राम का ही चौथा अवतार रामसिंह को बताते हुये कहा है कि इस पृथ्वीतल पर केवल चार राम हुये हैं इनके अतिरिक्त पाँचवाँ राम होने वाला नहीं है—

अेक फरसराम सुतन जमदगन नरेसर ।
अेक दसरथ सुत सु तो सारग धनुपधर ।
इक वसुद सुत सम सु तो हळधरण महाबळ ।
अेक कलावत राम खडगधारी खाटण खळ ।
अेक अेक हुआ अेक अेक जुग, अत अता द्वापर कळि ।
हुवो न हुइये पाचमो, चार राम रविचक्र तळि ॥

(क्रमश चार युगो मे चार राम हुये हैं एक महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम, द्वितीय सारग नामक धनुप को धारण करने वाले दशरथी भगवान् श्रीराम, तृतीय वसुदेव की पत्नी रोहिणी से उत्पन्न हल को शस्त्ररूप म धारण करने वाले श्रीबलराम और चौथ शत्रुविनाशक तलवारधारी, बीकानेर के राजा कल्याणमल के पुत्र रामसिह)

अन्यत्र रामसिह की प्रशसा करते हुये कवि ने उन्ह मन पर विजय प्राप्त करने वाले परमज्ञानी शुकदेव, रूप म कामदेव, युद्ध म अर्जुन, दान मे कर्ण, सत्य भाषण करने मे युधिष्ठिर और तेज मे सूय के समान अकित करते हुय कहा है कि जिस प्रकार दूहो में श्रेष्ठ दूहा 'चोटीआळो दूहो होता है, ठीक इसी प्रकार इन सब मे शीर्षस्थ रामसिह हैं 'चोटीआळो दूहो' राजस्थानी भाषा मे प्रचार और प्रसार की दृष्टि से चोटी (मुख्य व सर्वोपरि) के समान है यह दूहा दूहो के विभिन्न रूपो मे शरीर मे शिखा की भाँति सर्वोपरि है दूहे के रचयिता पृथ्वीराज राठौड कहते हैं कि मेरे बडे भ्राता भी ऐसे ही चोटी के गुणों से युक्त हैं—

मन सुकदेव तन कामदेव कळि अरजुण दति क्रन, कळी वखाणिस केहा ।
वाच जुजिठ्ठल तेज रवि सम राम कल्याण सुतन अ दूहइ जेहा ॥

जिस अन्य दोह मे दूसरे चार गुरुओ का वर्णन किया गया है वह वस्तुत गाडण रामसिंघ द्वारा पृथ्वीराज की प्रशसा म कहे गये गीत का उत्तर है पृथ्वीराज ने यहाँ अपनी विनम्रता प्रदर्शित करते हुये कहा है कि मैं जो कुछ भी हूँ, उसका श्रेय मेरे सवगुण सम्पन्न गुरुओ को ही है—

गुण पूरा गुरु सुगुरा, सायर सूर सुभट्ट ।
रामो रतनो खेतसी, गाडण गांधी हट्ट ॥

उपर्युक्त दोहा हमे अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर के राजस्थानी विभाग के गुटका न० १२६ मे से प्राप्त हुआ है इन चार गुरुओ से सबधित अधिक जानकारी के लिये विस्तृत शोध की अपेक्षा है

गुरु की सहज कृपा को देखते हुये उनसे उऋण होने के लिये उनके प्रति जितना भी पूज्यभाव रख कर उनके गुणो का वर्णन और प्रशसा की जाय, वह

थोडी ही समझी जाती है अपने आध्यात्मिक और दीक्षा गुरु श्री विट्ठलनाथजी के प्रति जिस पूज्य भावना और उनकी अवर्णनीय सहज कृपा का दिग्दर्शन पृथ्वीराज ने अपने बारह दोहो मे किया है, वह बहुत ही महत्वपूर्ण और उपयुक्त दोनो प्रकारो के गुरुओ से सर्वोपरि है आध्यात्मिक गुरु ही एक ऐसा महान पुरुष होता है, जो मनुष्य रूप धारी जीव मे अनूठी चित्शक्ति भरकर उसे अपने स्वरूप को समझने वाला वास्तविक मानव बना देता है, परमानदमय भगवद् स्वरूप बना देता है। अत गुरु का अमर उपदेश होता है कि—

> किमाम रोदिषि सखे त्वयि सवशक्ति,
> आम त्रयस्य भगवन् भगदस्वरूपम् ।।

पृथ्वीराज द्वारा कह गये बारह के बारह दोहे गुरुमहिमा और गुरुभक्ति के साकार रूप हैं गुरु की कृपा बिना अज्ञानाधकार दूर नही होता अधकारमय जगत म अधे को प्रकाश देने की सामर्थ्य गुरु के बिना है ही किसमे ? उसके नाम और रूप का प्रभाव उसका सुमिरन एव उसकी कृपा सातत्य ही से मनुष्य का त्राण है, इसीलिये कवि ने बडे चमत्कारिक ढग से कहा है कि उसे तीन लोको म प्रयत्न करने पर भी जब कुछ दिखलाई नही पड रहा था, तब गुरु ने उसे ज्ञान-दर्पण और ज्ञान दीपक प्रदान कर उसके हृदयाकाश मे प्रशस्त प्रकाश फैलाकर अज्ञानाधकार को दूर कर दिया—

> आनि त्रिलोकि त्रिवाह, सोझता सूझै नही ।
> आरीसौ आपाह, दीठो वल्लभदेवसुत ।।
> जिण वीठळ जूथेह, पूछ प्रभु ज्या पेखियौ ।
> दीपक दीह करेह, जाण जग चख जोईयौ ।।

इस आशय के एक सस्कृत श्लोक को देखिये—

> अज्ञानतिमिराधस्य नानाजनशलाकया ।
> चक्षुरुन्मिलित येन तस्म श्रीगुरवे नम ।।

गुरु तो एक ऐसी पारसमणि के समान है जो लोह को स्पश कर कचन ही नही बना देती, पर उसे अपने समान पारस ही बना देती है ऐसे ही ये गुरु हैं, जिन्हाने मुझे आत्मज्ञान का उपदेश देकर यह प्रतीति करवा दी कि त्रिलोक मे यदि कोई सत्य है तो वह परमानद स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण ही हैं, शेप सब असत्य है—

> लोहे पारस नीव श्री विण आधारै धाम ।
> कूड मो, साचो कृसन, मेळणहार प्रणाम ।।

गुरवय श्री विट्ठलनाथजी ने मेरा माग दशन करते हुये यह भी निर्देश किया कि जिस प्रकार चतुर्थी का चद्रमा और विशेषकर भाद्र शुक्ल चौथ का चद्रमा देखना

अमगलकारी है ठीक उसी प्रकार असतजनो का साथ तो क्या उनका मुख देखना भी अमगलकारी है—

> चदा चौथि तणाह, सुकला भाद्रव सगमे ।
> अभगत मुख अेहाह, श्रीवल्लभ सुत बाल ससि ॥

पृथ्वीराज के जीवन मे परिवर्तन लाने वाली एक उल्लेखनीय घटना वल्लभ सप्रदाय मे सादर कही जाती है कहा जाता है कि अपने गुरु विट्ठलनाथजी के शरण मे जाने के पश्चात्, कवि ने मानव गुण गाथा गाना बद कर दिया था कवि को यह अनुभव हुआ कि उसने अब तक अपना जीवन व्यथ गँवा दिया था अब वह घोर पश्चाताप करता है—

> मैं हरि तजि गुण मानव्याँ, जोडै किया जतन्न ।
> जाणि चित्तभ्रम बाधिया, गळि गाघाह रतन्न ॥

और—

> प्रिथ जु मैं अवरापणं, गुण छड गोपाळ ।
> मणि गूथं मोताहळा, मड गळ घाती माळ ॥

'गदहे के गले मे रत्नों को बाधना,' और 'मुर्दे के गले मे मोतियो की माला पहिनाना' आदि उक्तिया कवि के पश्चाताप की सूचक हैं

हमारे निजी सग्रह में अनात कवि चद का लिखा 'श्री हरिगुण कष्टहरण स्तोत्र'[1] ग्रथ उपलब्ध है, जिसके प्रारम्भ के छदो से मालूम पडता है कि स्वय कवि चद को भी मानव यशोगान से घोर विरक्ति हो गई थी और वह प्रारम्भ के छदो म अपना पश्चाताप प्रकट करता है कवि कहता है कि मैंने अपने जीवन मे निम्न श्रेणी के मनुष्यो की असत्य और अतिशयोक्ति पूण प्रशसा की है अपढ और मूर्खो को कविराय, कायरो को सेन थभ, कृपणो को दाता सूर, कुलक्षणी और कुलहीना को कुलीन, साधारण पढे लिखो को पडित ब्राह्मण आदि कहा है आगे कवि कहता है कि आजतक एक मूख की भाँति हे भगवान ! आपको भूल कर तथा आपके गुणानुवाद को तज कर अक्षम्य अपराध किया है आप मुझे क्षमा कर दीजियेगा—

> अेह गुनो मोमें अधिक पडियो लिखमी पीव ।
> बगस बगस मा बाप हिव दयानिधान दईव ॥

---

१ वरदा, वष १२ अक १ श्री हरिगुण कष्टहरण स्तोत्र लेखक आचाय प० बदरीप्रसाद साकरिया

लोभ घण घण लालच, जोवा नर बहु जाच ।
कूड़ रचा सहु को कहण, (पिण) साई हुदौ साच ।।

मानव प्रशसक काव्य से स्वय सत तुलसीदास को भी विरक्ति थी अतएव उ होने लिखा है कि जब जब कोई कवि किसी मनुष्य का यशोगान गान लगता है तो वाणी की अधिष्ठात्री वागेश्वरी बडी अप्रसन्न होती है—

'सिर धुनि गिरा बहुत पछितानी'

ऐसी दशा मे यह स्वाभाविक है कि भक्त कवि पृथ्वीराज ने ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् मानव प्रशसायुक्त काव्यो को सवथा तिलाञ्जली दे दी हो स्वय कवि ने अ यत्र लिखा है कि—

हू ऊजड हालियो, वार आसनो हूतो ।
म्है कोहर सीचियो, तीर सुरसरी वहतो ।।
मेल्है चदण कठ, आवि बावळियो घासियो ।
छाड सज्जण सयण, वीडरा भीतर वसियो ।।

कीरतन न कीधो श्रीक्रिसन, कर जोडे त्रयभुवण कर ।
वासियो जु मैं वाखाणियो, नारायण विणि अवर नर ।।

विट्ठल रा दूहा

(१)

लोहै पारस नीव श्री, पिण अधार धाम।
कूड मो साचो क्रसन, मेळणहार प्रणाम ।।

(२)

जिण भ्रम सु आलोज, दामोदर दरसावीयो।
सगळा पायो सोज, वाल्हो वलभदेवऊत ।।

(३)

पाए पाणेजाह, ग्रहि वाल्हा गोकळ तणा।
वीठळ वादेवाह, आतम ऊमाहो कियो ।।

(४)

वाउवो वीठळ केह, चलणे चालेवा करै।
काही क्रम्म तणेह, बधणे बाधाणू रहै ।।

(५)

प्रिथु प्रिथमी पिंड पार, माथो ताइ मथुरा मडळि।
सु यो निलाट ससार, वीठळ तिलक वहारै ।।

---

१ पिण — क्षण। कूड — झूठा, अज्ञानी। साचो — सत्य स्वरूप सच्चिदानद। मेळणहार — भेंट कराने वाला, गुरु।

२ आलोज — मन के भाव, सकल्प। सगळा — सभी सब। सोज — १ शोध, २ वही ३ सामग्री। वाल्हो — प्रिय। वलभदेवऊत — विट्ठलनाथजी।

३ पाणे — हाथो से। पाए — परों से। वादेवाह — वदना करने के लिये। ऊमाहो — उत्साह, उमग, उल्लास।

४ वाउवो — वातग्रस्त। चलण — पांवो से। काही क्रम्म तणेह — अशुभ कर्मों के कारण। बधण — बधन से, रस्सी स। बाधाणू — बँधा हुआ।

५ निलाट — भाल। वहारै — रक्षा करने को, सुधि लेने को।

पाठान्तर—

१ नीव। खण।

४ बधाणो।

५ प्रिथमी पट।

(६)

नर अन नीच ठाम, वसतौ वेसासँ नहीं ।
वाइस मन विसराम, वीठळ धजा वहा रँ ।।

(७)

आनि त्रिलोक त वाह, सोझता सूझै नही ।
आरीसौ आपाह, दीठौ वल्लभदेवरूत ।।

(८)

जिण वीठळ जूथेह, पूछै प्रभु ज्या पेखियौ ।
दीपक दीह करेह, जाण जग चख जोइयौ ।।

(९)

काही कपट करेह का हु जु तू होड किय ।
लोहे लाकड केह, वीठळ वेदन वेखिय ।।

(१०)

चदा चौथि तणाह सुकला भाद्रव सगमे ।
अभगत मुख अेहाह, श्री वल्लभसुत बाख ससि ।।

(११)

अवरा मत्र अपार, कूवा ना कूरम जिही ।
बैठा करि बाधार, विठलेसर दीधा वयण ।।

(१२)

जग वैसे जगतोइ रहै, प्रिथ करि छाई परवख ।
तू घर वल्लभदेव सुत, वीठळ [1] बिया विरख ।।

---

६ अन – अन्य । ठाम – स्थान । वेसासँ नही – विश्वास नही करता है । तसल्ली नही होती है । वाइस – कौआ ।

७ सोझता – ढूढने पर भी । आरीसौ – दपण, शान । आपाह – आप मे । आरीसौ आपाह – स्वात्म रूप दपण ।

८ जूथेह – समूह मे । ज्या – जि होने । जगचख – सूय । जाणे – मानो ।

९ होडे – स्पर्धा । करेह – करता है । वेखिये – दखिय । वेदन – वेदना । लोहे लाकड – एक न्याय दृष्टात ।

१० अभगत – भक्ति नही करने वाला अभक्त । अेहाह – ऐसा ।

११ अवरा – दूसरो को । कूरम – कूम । कछुआ । बाधार – बधिर ।

१२ जगतोइ रहै – जाग्रत रहे । परवख – पारख । बिया – दूसरा । विरख – वृक्ष ।

पाठान्तर—

१ बदन सीरिखये ।

वसदेरावउत रा दूहा

यदा यदा हि धमस्य ग्लानिभवति भारत ।
अभ्युत्थानम् धमस्य तदात्मन सृजाम्यहम् ।
परित्राणायाम् साधुनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धम सस्थापनार्थाय सभावामि युगे युगे ।
(अ ४, श्लोक ७ ८, गीता)

गीता के उपयु क्त श्लोकानुसार यह सब विदित है कि जब जब ससार मे धम की हानि होती है और पाप का भार बढ जाता है भगवान इस पृथ्वी पर अवतरित हो दुष्टो का सहार कर भक्तो का उद्धार करते हैं जिस प्रकार राम का अवतार लेकर रावण सहित अनेक राक्षसो का सहार किया इसी प्रकार यमुना के किनारे मथुरा में कृष्णावतार लेकर कस सहित अनेक दुष्टों का दलन किया—

मथरा नगर मझार, तट जायो जमना तण ।
बाळा तिणि बळिहार, वेळा वसदेरावउत ।
अवतरियो अवतार, तू मेटण भगता तणा ।
भगवत टालण भार, वसुधा वसदेरावउत ।।

भगवान श्रीकृष्ण ने अवतार तो अवश्य लिया पर अन्तत वे सवव्यापी सव शक्तिमान एव सर्वान्तरयामी हैं इसीलिये वेलिकार ने कहा—

पूठी रख परमेस, आगे रुख तू ईसवर,
सुजि दाहिणै सुरेस, वाम वसदेरावउत ।

ऐसे परमेश्वर का भजन नही करन पर ही तो मनुष्य को चौरासी लाख योनियो में से पसार होना पडता है आवागमन के इस चक्कर से वच निकलन का आधार कोई मानव अथवा कोई मानवी शक्ति न होकर मात्र हरिनाम है—

जपिया मानव जाप, जीहाँ हरि जपियो नही
भू पडियउ मा बाप, वासौ वसदेरावउत ।

वैसे मनुष्य गुणहीन है पर प्रभुभक्ति से ही वह गुणो से युक्त हो जाता है पृथ्वीराज ने तिल के पुष्प की एक मौलिक उपमा के सहारे इस भाव को अत्यन्त सदरता से अभिव्यक्त किया है और प्रायना की है कि हे प्रभु ! मैं आपका कृपाकाक्षी हूँ, मुझे भी गुणयुक्त कर दीजिये—

श्रेह ग्रम्हा ग्ररदास, प्रिथु जपै तिल-पुहुप पर।
वाया तो जस वास, वास वसदेरावउत।

अगर किसी प्रकार सच्ची भक्ति के बिना यह अमूल्य मणि के समान जीवन, काच की भाति फूट कर नष्ट हो गया तो हे लक्ष्मीपति ! इसकी उपादेयता क्या होगी ? इसी तथ्य पर गभीरता पूवक विचार कर कवि कहता है कि मुझे अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा न होकर केवल आपकी सच्ची भक्ति ही चाहिये—

श्रीवर सू विण साच, जेहै मिण मानव जनम।
केसव थियो ज काच, विणसै वसदेरावउत।

घडियाल और हथोडे की एक अभिनव उपमा से कवि ने हरि विमुख जनो के कपाल को कूटने की बात कह कर यह अभिव्यक्त करना चाहा है कि ऐसे लोगो से किसी प्रकार की आत्मीयता की आवश्यकता नही है, वे तो ताडन क अधिकारी हैं—

किरि कूटियै कपाळ, श्रीकम ! तो विमुखा तणा।
घडी घडी घडियाल, वाजै वसदेरावउत।

कृष्ण भक्ति के अप्रतिम कवि और भक्त सूरदास की भाँति कवि न कृष्ण की बाल लीलाओ को अनेक दोहो मे चित्रित किया है उनके ये चित्ताकर्षक शब्द चित्र घटना के उल्लेख के साथ साथ एक मानव सहज आश्चय को प्रकट करता है कि इतना नन्हा बालक यह सब कसे कर सका होगा ? भगवान न तो खेल खेल ही मे यमलार्जुन वृक्षो को उखाड दिया और इसी प्रकार बक रूप बने बकासुर राक्षस को उसकी चोच पकड कर चीर कर दो टुकडे कर दिये—

भाड उखेडै जाड, जिम रमत जगदीसवर।
वग कीधो वे फाड, वार न वसदेरावउत।

प्रत्यक नन्हा बच्चा माता पिता के डाँटने-पीटने पर भी मिट्टी खा लेता है भगवान कृष्ण भी लीला के अन्तगत मिट्टी खा लेते हैं माँ, यशोदा के डाँटने पर बालक अपना मुँह फाड दता है और मिट्टी के बदले कृष्ण के मुँह मे समस्त ब्रह्माड के दशन कर माँ तो आश्चय चकित रह जाती है—

माहव ! तै मुख माहि जणणी दाखवियो जगत।
कीन्ह भगण अदवाह, ब्याज वसदेरावउत।

कृष्ण के माखन चुरा कर स्वय खाने व गोपों को खिलाने और गोरस से भर मटका आदि के उलटन की घटनाओं के कारण जब उपालम्भ आने लगे तो मद यशोदा

उनके पाँवो के चिह्न देखते हुये ढूढने जाते हैं उनके आश्चय की सीमा नही रहती जब वे यह देखते हैं कि किस प्रकार यह अलग अलग घरा मे चले जाते हैं—

सीका सगठि थयाह, मिणि मिणि पग जोवै महर ।
अहि जूजुवा गयाह, विध किण वसदेरावउत ।

कालीय दमन के अवसर पर जिम प्रकार आप उसके प्रत्येक फन फन पर पाव रख नृत्य करने लगे, तो माता पिता सहित अनक ग्वाल बाल व्याकुल हो गये पर आपने तो उसे निद्व न्द्व भाव से नाथ ही दिया—

प्रभु ! दे फणि फणि पाग, थइ-थइ तत करतो थिया ।
नाथवियौ तै नाग, विह्वल वसदेरावउत ।

चीर-हरण लीला की कवि ने एक नई व्याख्या ही दी है स्त्रियो का नगे होकर जल क्रीडा करना मर्यादा भग करना है और इसीलिये भगवान श्रीकृष्ण उनके वस्त्रो का हरण कर, वृक्ष पर जा बठे उनका सदाशय यह था कि ऐसी घटनाग्रा की पुनरावृत्ति नही होनी चाहिये—

नारी अतरि नीर, निरख अवगुण ओ नगन ।
चढियो तरु ले चीर, वसि करि वसदेरावउत ।

श्रीकृष्ण की रासलीला तो अति प्रसिद्ध है जब वे एक के अनेक बन कर गोपियो के बीच रास खेलने लगे तो गोपियो के आश्चय की सीमा नहीं रही—

रमत तै निसि रासि, का्हड एता रूप किय ।
पदमणि सो वणि पासि, विचि विचि वसदेरावउत ।

भगवान की मुरली तो गोपिया और ग्वाल बाला की प्राण थी उसकी मधुर ध्वनि मे देवताओ, देवागनाओ, ऋषियो, नागो, मृगा और पक्षिया को तो क्या, समग्र चराचर विश्व को मोहित करने की शक्ति थी—

वसी रव व्रज-नारि, देव पनग देवागना ।
म्रग मोहिया मुरारि, विहगे वसदेरावउत ।

इस प्रकार अगणित व अदभुत पराक्रमपूर्ण बाल लीलाओ के पश्चात् जब श्रीकृष्ण द्वारिकाधीश बने तब भी उनकी भक्तवत्सलता मे किसी प्रकार की कमी नहीं आई जब जब घोर सकटो में फँसे भक्तों ने आतभाव से पुकारा तो वे अविलब सहायताथ दौडे आये—

तू आयौ तू आव सब ही दिन भगता सगट ।
सिमरीजता सहाय, विलब न वसदेरावउत ।

गरुडारूढ होकर गज का उद्धार भी आपने तत्क्षण किया—

धायौ धावन्ताह, गुरड ही माठौ गिणै ।
ग्राह उग्राहण ग्राह, वारण वसदेरावउत ।

अतर्यामी परमात्मा तो घट घट की जानते हैं अपने प्रियतम मित्र सुदामा के सकोचवश कुछ न मांगने पर भी उन्हें अपार सम्पत्ति का स्वामी बना दिया—

घर मोकळियौ घेर, श्रीपति श्रीदामा सखा।
मण ले तणौ कुमेर, वित दे वसदेरावउत।

ससार को सार समझ कर मैं उसमे भटकता रहा और अत मे हार कर आपकी शरण मे बडी देर से आया हूँ आप मेरा जल्दी उद्धार कर लें—

हू आयौ भव हारि, श्रीवरजु तू सभारि लै।
मोडो चरण मुरारि, वेगौ वसदेरावउत।

भगवान ही सार है यह ससार तो असार है वे हमारे सवस्व हैं माता, पिता, मित्र दव सब कुछ वे ही तो हैं इसीलिये कवि ने सस्कृत के इस भाव के एक बहु प्रचलित श्लोक का सुदर अनुवाद अपने दोहे मे किया है—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बधुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव
त्वमेव सव मम देव ।

तू दाता तू देव, प्रभु मौर माता पिता।
तीकम मीत तमेव, वीत त वसदेरावउत।

ऐसे सवस्व प्रभु के चरणो मे सब कुछ न्योछावर है पृथ्वीराजजी कहते हैं कि मैं मन वचन, और कम से हे प्रभु ! आपका ही हू, मैं आपका गुलाम हूँ और हृदय से आपका नाम स्मरण करना चाहता हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये—

आतम काया आथि, मनसा वाचा करमणा।
हरि मैं तोरै हाथ, वेच्या वसदेरावउत।
गोविंद हू गोलाम, केसवराय ताहरो कर।
नित समरिस हरि नाम, रिदय त वसदेरावउत ।।

और अत मे भक्त पृथ्वीराज कहते हैं कि हे प्रभु ! आपके चरणो का पूजन करने से, आपके गुणो का कीतन करने से, उसे सुनने से मेरे जीवन का सदुपयोग हो गया है और मेरी वाणी साथक हो गई है—

पूजि तुम्हीणा पाग, करता सुणतौ कीरतन।
लागी लेत लागि, वेळा वसदेरावउत।
म्हारी थयी मुरारि, गोविंद तो लागी गुणे।
सुधयारथी ससार, वाणी वसदेरावउत।

वसदेरावउत रा दूहा

(१)

मथरा नगर मझार, तट जायौ जमुना तणै
वाळा तिणि बळिहार वेळा वसदेरावउत

(२)

रथ वणियौ पख राव, वाम अग राधा वणी
विच ताहरौ वणाव, वणियौ वसदेरावउत

(३)

जपिया मानव जाप, जीहा हरि जपियौ नही
मू नडियउ मा बाप, पाँस वसदेरावउत

(४)

पूठी रख परमेस आगैरख तू ईसवर
सुजि दाहिणै सुरेस वामै वसदेरावउत

---

१ जायौ – ज म लिया । जमुना तण – यमुना के । तिणि वेळा – उस समय ।

२ वणियौ – शोभित हुआ । पखराव – गरुड । वणी – सुशोभित हुई । ताहरो – तेरा । वणाव – शोभा ।

३ जपिया – उच्चारण किया । मानव जाप – मनुष्य की प्रशसा । जीहा – जिह्वा से । मू – मैं । पाँसै – पीछे ।

४ पूठी – पृष्ठ भाग मे, पीछे । ईसवर – ईश्वर । सुजि – पुन., फिर, ग्रोर । रख – १ रक्षा करिये, २ रक्षा करने वाला । दाहिण – दाहिनी ग्रोर । सुरेश – सुरेश्वर, ईश्वर । वाम – बाँई ग्रोर ।

पाठान्तर—

३ विवसी बसुदेरावउत ।
४ पूठी रख । आगल रख ।

(५)

करतळ सह करियाह, चत्रभुज तो चीतारियँ
वीसरिय वरियाह, वरजित वसदेरावउत

(६)

कुदण छाडै काच, काइ ग्रहै ग्रातम तिकल
मळम मँडळ म राच, विमळ त वसदेरावउत

(७)

तो आग तरुआरि, नाख नर नमिया नही
हार्या आगळि हार, व्हैसी वसदेरावउत

(८)

हरि सू हेक-मनाह, आगळि जइ ऊभा नही
बससि तिकँ बियाह, वास वसदेरावउत

---

५ करतळ = हाथ मे वश म । सह = सब । करियाह = कर लिय । चत्रभुज = हे चतुभुज ! चीतारिये = स्मरण करके । यू = इस प्रकार । वीसरिय = बिसारने से । वरियाह = श्रेष्ठजनो को भी । वरजित = निषिद्ध हो गय, त्यागन याग्य हो गये ।

६ कुदण = साना, सुवण । छाडै = छोडकर । काइ = क्या । मळमँ = मलमय । म राच = आसक्त मत हो । त = १ उस, २ वह ।

७ नाखे = डाल करवे, छोड करवे । हार्या आगळि हार व्हैसी = पराजितो के आगे भी वे पराजित होगे ।

८ सू = से । हेक मनाह = एक मन होकर, दत्तचित्त से । आगळि = आगे, सम्मुख । जइ = जाकर । ऊभा नही = खडे नही हुए । बससि = बठेंगे । तिकँ = १ जिनके २ वे । बियाह = १ दूसरे २ दूसरी पंक्ति म । वास = पीछे ।

---

५ कह तल हस करियाह ।
कह तल से कहियाह ।
कह तल सहि करियाह ।

६ आतम तिमक । आतम त्रिकल । मल में मडन म माच ।

७ नाखे नर नमीया नहीं । नाखे नर समिया नहीं । वह सो, हुसी बदर ।

८ हरि हक मुनि होयाह, आगलि तो ऊभा नहीं ।

(९)

आणद घण उरि आण, आणद आणदिया नहीं
दीसै ताइ दिवाण विलखा वसदेरावउत

(१०)

राधा वर पद रेण, भ्रगुट धरै नह भेटिया
तू लख लीज तेणि, वाए वसदेरावउत

(११)

जपियो जा जगदीस, जगदीसर जपियौ नही
वधिया घटिया वीस, विसवा वसदेरावउत

(१२)

श्रीवर सू विण साच, जेहै निण मानव जनम
केसव थियो ज काच विणस वसदेरावउत

(१३)

ग्रेह ग्रम्हा ग्ररदास, प्रिथु जप तिल पुहप परि
वाया तो जस वास, वासै वसदेरावउत

---

९ आणदधण = आनदघन श्रीकृष्ण। उरि आण = हृदय म स्थित कर, सुमिरण कर। आणद नहीं = परमानन्द को प्राप्त नही किया। दीस = दिखाई देन हैं। विलखा = उदास, दुखी।

१० पद रेण = चरण रज। भ्रगुट = १ सिर २ भृकुटि।

११ जा = जिन्होंने। विसवा = विश्वा एक परिमाण। वीस विसवा = बीस विस्वे निश्चय ही।

१२ विण = बिना, रहित। जेहै = जाता है, खोता है। थियो = हो गया। काच = १ शीशा २ कच्चा ३ झूठा। विणस = विनाश होकर।

१३ ग्रेह = यह। ग्रम्हा = हमारी। ग्ररदास = विनती। जप = कहता है। तिल-पुहप = तुच्छ छोटा। परि = समान, माना। तिल-पुहप परि = तिल पुष्प के समान, अति तुच्छ। जस = १ यश २ जसा। वाया तो जस वास वासै = जसा बोया है वसी ही वास आयगी।

पाठान्तर—

९ ताइ दीससी न्विाण। देख ताइ दवाण।
१० भ्रगट धर नह भारिया।
तू इस लीज तूलम लीजै
मूल स लीज।
१२ श्रीवर सवणो साच। विणसइ।

(१४)

नरहर तेह नरेह, लाधो फळ लाधे तणो
जस वरणवियो जेह, वाया वसदेरावउत

(१५)

विणजै वाणीकाह, मधसूदन माटै मुगति
वाउवो विणज वाह, वाछै वसदेरावउत

(१६)

माहरी थयी मुरारि, गोविंद तो लागी गुण
सुक्यारथी संसार, वाणी वसदेरावउत

(१७)

नायक जग तो नाम, लखमीवर थ्यो लागना
सुजि फळदायक साम, वायक वसदेरावउत

---

१४ लाधो = प्राप्त हुआ । तणो = का । वरणवियो = वर्णन किया । जेह = जि होंने ।

१५ विणजै वाणीकाह = यही बनिज किया जाय । माटै = लिये । वाउवो = वातुल । वाह = यश । वाछ = इच्छा करता हो ।

१६ माहरी = मेरी । थयी = हुई । तो = तेरे । सुक्यारथी = सुकृति, सुकृतात्मा सुकृतार्थी ।

१७ नायक जग = जग नायक । लखमीवर = लक्ष्मीपति । सुजि = व्ही । वायक = वचन ।

पाठांतर—

१४ नाहर तेह मरेह, साधो फल साधो तणो ।
वो सवरण वियोजह वाया तु वसन्देरावउत ।।

१५ वणज वणिवाह
वांण ज वाणीकह,
वाणि ज वाणीकाह
वाया वणजै वाह
वाया विणजै वाह,

१६ नायक जग तू नामि, नायक जग तुव नाम ।

(१८)

हुवि तुम्हींणा पाग, करता हुण्ना कोरठन
लागी लेखै लागि वेळा बखतेरावत

(१९)

माया नह गोपाळ, श्रीवर तो माया सरीष
केसव ग्यो ज काळ, त्रिया ज बखतेरावत

(२०)

गोविंद विण तो गाथ, जाइ जिके अदरीसवर
निस सारीखा नाथ ! वासर बखतेरावत

(२१)

फिरि कूटियै कपाळ, श्रीकम ! तो विमुखा तणा
घड़ी घड़ी घड़ियाळ, बाजै बखतेरावत

(२२)

मास बरस दिन मे न पास पहर खिण घड़ी पलक
कान्हवा मनां कदे न, बीसरि बखतेरावत

---

१८ तुम्हीणा — तुम्हारे, आपके । पाग — चरण । लागी लेखै लागि — सदुपयोग हो गया । वेळा — समय ।

१९ श्रीवर = लक्ष्मीपति । तो — तेरे । माया — नहीं माना । त्रिया गयो — वृथा बीत गया ।

२० विण — विना । गाथ — कथा, गाथा । जाइ — बीत जाते है । जिके — जिनके । निस — रात । वासर — दिन ।

२१ घड़ियाळ — घड़ी, घंटा, झालर । फिरि — १ उसी प्रकार, २ मानो ।

२२ मना — १ मन से २ मुझे । पास — पक्ष । खिण — क्षण ।

पाठान्तर—

१९ १ केसव गयो सुकाल
२ केसव गयो जु काल, ३ कै रथ गयो त्रिकाल ।

२१ फिरि कूटिये कृपाल,

२२ पख्य पहर खिण घड़ी पल कान्हवा मुना कदेग ।

(२३)

जाप तुम्हीणा जाज, परमेसर करता पडी
तो भाज तो भाजि, वेथी वसदेरावउत

(२४)

अवतरियौ अवतार, तू मेटण भगता तणा
भगवत टाळण भार, वसुधा वसदेरावउत

(२५)

सगळा थयौ सतोख, आयौ तू नद आगण
घर घर मगळ घोख, व्रज मे वसदेरावउत

(२६)

तू लिखमी उर लागि, पनग गोद नद पालणै
प पोढियौ पिराग, वड सिर वसदेरावउत

(२७)

प निध पोढणहार, श्रीक्रम नद घरणी तणै
किम धाप्यौ करतार, बोवै वसदेरावउत

---

२३ जाज – कमी, किंचित् । वेथी – अतर, दूरी । तो भाज तो भाजि – तू टाल तो टल सकती है ।

२४ अवतरियौ – अवतार लिया । टाळण – दूर करने वाला । भार – कष्ट ।

२५ सगळां – सबको । घोख – घोष ।

२६ पनग – शेष नाग । पै – प्रलय वारि । पिराग – प्रयाग । वड – अक्षय वट । सिर – ऊपर ।

२७ प निध – क्षीरसागर । बोवै – स्तन पान से । धाप्यौ – पेट भर गया अघाया ।

पाठान्तर—

२३ जाप तुम्हीणा जोग
तै भाजै तू भाज

२७ प निध पोढणहार ।
किम धपियो करतार बूबे वसदेरावउत । किम धाया किरतार, बूबै वसदेरावउत ।

(२८)

दै तैं मुख दीधाह, प्रभू पयोधर पूतना
पीधै तैं पीधाह, विख तैं वसदेरावउत

(२९)

सीका सगठि थयाह, मिणि मिणि पग जोव महर
ग्रहि जूजुवा गयाह, विध किण वसदेरावउत

(३०)

करि उर ऊपर काम, त्रणा वर त्रिसणा तणा
रमियो आतमराम, विगतौ वसदेरावउत

(३१)

फूले फळिया ताइ, मोती माता आगण
रमतै जादव राइ, वाया वसदेरावउत

(३२)

निलवि निलवि नवनीत तै सिगळा गोकळ तणा
पोस्या पूरव प्रीत, वानर वसदेरावउत

---

२८ विख — विष।

२९ सीका — छीका। सगठि — सगठित। मिण मिण — बहुत ध्यान पूवक देखना। खोज — खोजकर। जूजुवा — अलग अलग। ग्रहि जूजवा — घर घर, एक एक घर। महर — १ व्रज जन २ वसुदेव।

३० करि — हाथी। त्रणावरैं — तृणावत ने। रमियो — रमण किया, खेला। विगतौ — १ प्रकट किया, २ समाप्त किया।

३१ मोती — मुक्ताफल। वाया — उगाया।

३२ निलवि निलवि — घर घर में। पोस्या — पोषित किया। वानर — बन्दर। पूरब प्रीत — पूव जन्म की प्रीति।

पाठान्तर—

२९ मिणि मिणि पग जवै महल। नमि नमि दग जोव महर। मिणमिण मग जोवैं महलि।

३० तिणा प्रतरत का प्राण तणु। त्रणा वरैं त्रिमणा तणा।
२ तिण्ह धारत का प्राण तण

३२ नीत घरण नवीनीत, तैं सकल गोकल तणो।
निस घन साइ नवनीत, तैं जु सकल गोकल तणो।

(३३)

माहव ! तैं मुख माहि, जणणी दाखवियो जगत
कान्ह भखण अदकाह, व्याज वसदरावउत

(३४)

गळ सूती गयतूळ, बाळक ऊखळ बाधियो
ऊपाड आमूळ, व्रिख बे वसदेरावउत

(३५)

मोर मुगट वनमाळ विन्न विन्न धरि धात वन
वण वखाणि विसाळ, विहरत वसदेरावउत

(३६)

क्रिसन वछासुर काह, पूछ ग्रही पाछाडतैं
गात्र जूजुवा गयाह, विछूड वसदरावउत

---

३३ माहव — माधव । दाखवियो — दर्शन करवाया दिखाया । अदकाह — मिट्टी । व्याज — बहाने । जणणी — माता को ।

३४ गळ — गला । गयतूळ — रेशमी डोरी । ऊखळ — ओखली । आमूळ — जड़ सहित । व्रिख — वृक्ष । बे — दो ।

३५ विन्न — बेंत छड़ी । विन्न — गो-समूह । धात — धावत । वण — वणु । वखाणि विसाळ — बहु प्रशंसित । विहरत — विचरण करते हुए ।

३६ वछासुर — वत्सासुर । जूजुवा — अलग अलग । गात्र — शरीर । गयाह — हो गए ।

पाठान्तर—

३४ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

३५ विन्न विन्न धर धातवन
वेण वखाण विसाळ विहरत वसदेरावउत ।

३६ गत्र जूजवा गयाह

(३७)

झाड उखेडै जाड, जिम रमत जगदीसवर
बग मीधौ बे फाड, वारज वसदेराव उत

(३८)

अतर नद अवासि, हींडत किम लहुओ हुओ।
अथ अंत लग आकासि, वधियौ वसदेराव उत

(३९)

रचना तो अवरेखि, हू केतिक केतां कहु हरि
पड्यौ विघाता पेखि, विसमै वसदेराव उत

(४०)

भुवग असुर सिस भाण, तो माया मानव त्रिया
आळुधा ईसांण, ब्रह्मा वसदेराव उत

(४१)

तो सरिसो तिरलोय, वळि-बधण नह बापडा
त्रिसन न हालै कोय, वाद ज वसदेराव उत

---

३७ झाड – वृक्ष। जाड – मोटे। बग – बकासुर, बगुला। फाड – टुकडे फाड – दो टुकडो मे। वार – समय।

३८ अवासि – निवास स्थान। हींडत – भुलते हुए। लहुओ – छोटा। वधियं विराट रूप मे बढा।

३९ अवरेखि – देख कर। पेखि – देखकर। विसम – आश्चर्य।

४० भुवग – सप। आळुधा – उलझा हुआ। ईसांण – शिव।

४१ सरिसो – समान। तिरलोय – त्रिलोक। अनि – दूसरा। बापड बिचारा, विवश, २ पिता।

पाठान्तर—

३८ अतर नद आवासि हींडत किम लहुओ हुओ
अथ अत लग अकासि वधियो वसदेराव उत।

४१ तू सरिसो तीलोइ बलि-बंधन अनि बापड़ा
कमव निहालै कोइ बन्ना वसदराव उत।
बा[illegible] वस[illegible]राव उत।

(४२)

प्रभु! दे फणि फणि पाग,थइ थइ तत करतो थियो
नाचवियो तैं नाग, विहवळ वसदेरावउत

(४३)

दमि कीधो निरदोस, काळी काळिंद्री किसन
रमणिक गो तजि रोस, विसहर वसदेरावउत

(४४)

अनल सखा अवनाइ, जु तैं ज वन वन जाळिवा
पीध थयो प्रभाइ, विसनर वसदेरावउत

(४५)

महा असुर खर मारि माहव बीजा मारिया
राते कीधी रारि, विरतैं वसदेरावउत

(४६)

हाथळ हणियउ जाइ, रूप जु तैं बळराम कै
सत्र सिर मानी साइ, वजर कि वसदेरावउत

---

४२ थिया = हुए । नाचवियो = नचवाया । विहवळ = विह्वल, व्याकुल ।

४३ काळी = कालिय नाग । विसहर = विषधर । काळिंद्री = यमुना नदी ।

४४ अनल = अनल, अनेक । अवनाइ = साथ लेकर । जुतैं = इकट्ठे हो गये । जाळिवा = जलाने के लिए । थयो = हुआ । विसनर = वैश्वानर, अग्नि । प्रभाइ = चमत्कार ।

४५ रारि = युद्ध । कीधी = किया । विरत = निर्लिप्त रहा ।

४६ हाथळ = हथेली । हणियउ = विनाश किया । सत्र = शत्रु (गर्भासुर) वजर = वज्र ।

पाठान्तर—

४३ गुर मन करतो रोस
गोरि मणक तजि रोग
गो गिम मनु धरि रोस,

४४ ज तैं जाग नव न जालिवा, जु तैं अवन नव जालिवा ।
विसहर वसदेराव उत

४५ मारिवा रानी ।

(४७)

वदन विहाणि विहाणि सूभरता कीहा सफळ
एह नयण आपाणि, विकसे वसदेरावउत

(४८)

नारी अतरि नीर, निरखे अवगुण अो नगन
चढियौ तरु ले चीर, वनि करि वसदेरावउत

(४९)

सरव मआ साच, देता वळि तन ग्रहि दिजो
आरोगी तैं आच वामे वसदेरावउत

(५०)

वनिता करै विनोद, आवता सिस अेकेठा
कामणि वदन कमोद, विकसै वसदेरावउत

(५१)

दिन आथुणि ग्रहि-द्वारि, आवै वनि हु आवतै
निरखण तो व्रज नारि वणि वणि वसदरावउत

---

४७ विहाणी विहाणि = दख देख कर। सूभरता = सुदरता। आपाणि = अपने। विकसै = विकसित हुए।

४८ नारी अतरि नीर = सभी गोपियाँ पानी म थी। चढियौ = चढ़ा। वनि करि = (१) वास करके, बठ करके (२) सम्मोहित करके।

४९ आच = हाथा से। दिजा = द्विजो से, ब्राह्मणो से। आरोगी = भोजन किया। वाम = स्त्रिया।

५० सिस = सखा लोग। अकेठा = साथ।

५१ आथुणि = अस्त। वनि हु = वन से। वणि वणि = बन बन कर, शृगार कर।

पाठान्तर—

४७ वदन विहान विहान, सुभरता कया सकल
इण नयण आपांण, विकइ वसन्दरावउत
सूभर ताइ कीया सकल।
विणि नयणि आपाणि॥

४९ देवता वली तन ग्रही।

५० कांमणि नयन कमोद

५१ आथमि।

(५२)

आकरखण अबळाह, थभण नै वाई थयी
आसा वण द तांह, वसी वसदेरावउत

(५३)

तु मिळि पट रितु त्यागि,सरद हेम श्यामा सिसिर
निज सुप वसत निदाघ, वरिया वसदेरावउत

(५४)

वसी रव वृज नारि, देव पनग देवागना
म्रग मोहिया मुरारि, विहगे वसदेरावउत

(५५)

मन मारुत सिसि मागि, वळा न वसी तण
रहिया थारै रागि, वहता वसदेरावउत

(५६)

तै मुरली सुर मागि, गूडी ज्यु गोपागना
ग्रह हुती गैणागि, वळीक वसदेरावउत

---

५२ आकरखण = (१) आकर्षण, कामदेव के पाच बाणो मे से एक। अबळाह = अबलाएँ। थभण = रुकने को, कामदेव का एक बाण स्तभन। वाई = व्याकुल। थयी = हुइ। आसा = पीडा। वण = वन।

५३ पट = षड छ। निदाघ = गर्मी ग्रीष्म ऋतु। वरिखा = वर्षा।

५४ बसी रव = बासुरी की ध्वनि। पनग = पन्नग, सप। म्रग = मृग, पशु। मोहिया = मोह लिए।

५५ मागि = मार्ग में। वेळा = लहरें। रागि = आकर्षण से। रहिया वहता = बहते हुये रुक गये।

५६ गूडी = पतग। गणागि = आकाश। वळीक = पुन।

पाठान्तर—
५३ निज मुख।

(५७)

प मुरली मुख रोपि, सुर देतै सारेळतै
गोडियौ तैं गोपी, विहरौ वसदेरावउत

(५८)

रमत त निसि रासि, कान्हड एता रूप किय
पदमणि सो वणि पासि, विचि विचि वसदेरावउत

(५९)

सगि गोपिया सहेण, प्रभु रमियौ जमुना-पुलिण
त्रिभुवन विथका तेण, विभ्रम वसदेरावउत

(६०)

भूलि सग भाळति, गोविंद तो गोपागना
फिरि कुरगणि कत, वनि वनि वसदेरावउत

(६१)

गोप वधू गोपाळ लागी गळि ग्रहवी लसति
तणियौ कनक तमाळ, विलसत वसदेरावउत

(६२)

सरण साम सभाळ, रीसाण इद रासिया
गोपो गाइ गुवाळ, वाछा वसदेरावउत

---

५७ रोपि — रखकर, लगा कर। सरेळन — (१) इकट्ठा करते हुए, (२) संचित करते हुये। गोडीयौ — गान किया। विहरौ — विहार किया।

५८ एता — इतने। पदमणि — गोपियाँ। विचि विचि — बीच बीच में।

५९ पुलिण — पुलिन, किनारा। विथका — शिथिल हो गये। विभ्रम — भ्रमित।

६० भाळति — ढूंढते हुए। फिरि — मानो। कुरगणि — मृगी। कत — पति (मृग)

६१ ग्रहवी — ऐसी। लसति — शोभायमान लगती है। तमाळ — तमाल वृक्ष, श्यामवर्णी वृक्ष (कृष्ण)। कनक — कनक बेलि, गौर वर्ण गोपियाँ।

६२ सरण — शरण में। रीसाण — गुस्सा होने पर। इद — इन्द्र। रासिया — रक्षा की। वाछा — बछड़े।

पाठान्तर—

५७ गुडी हुता गोपि।

५८ पदमणि विन्हा विन्हा पासि। [illegible] विचि विचि [illegible]।

६१ [illegible] वसदेरावउत।

६२ १ सरणै साधन मास [illegible] [illegible],
गोपि सहित गुवाल [illegible] [illegible]॥
२ सरणै साम सोभाय
३ सरणै सोमित साम

(६३)

उतारण मद इद, ऊगारण गोकळ अखिल
गिरि धरियौ गोविंद, वणिया वसदेरावउत

(६४)

प्रभु गोपिया पगेह, सुलभौ उरि जोगेसरा
मधुसूदन माथेह, वेदा वसदेरावउत

(६५)

कूरा काट कद, जीतौ जळ पैस करे
नाथ छुडावै नद, वरण वसदेरावउत

(६६)

नरदेही नर लोय, व्रज-नायक व्रजवासिया
तै देखाळिय तोय, वैकुंठ वसदेरावउत

(६७)

कुडूंब जात करावि, देव देव देवी तणा
मोख्या नद मोखावि, व्याळ वसदेरावउत

(६८)

सखासुर सघारि, व्रज तणी अवनी विहरत
मोख्या तै मोरारि, विनता वसदेरावउत

---

६३ उतारण = उतारने के लिए। ऊगारण = उद्धार करने के लिए। वणिया = बने, शोभायमान हुए।

६४ पगेह = पग पग पर। सुलभौ = सुलभ। जोगेसरा = योगीश्वरो को।

६५ कूरा = क्रूर, झूठे। कद = जड, मूल। पैसे = प्रवेश करके।

६६ नरलोय = नरलोक, मृत्युलाक। देखाळिय = दिखा दिया।

६७ कडूंब = कुटुम्ब मे, कुटुम्ब को। जात = यात्रा। तणा = का, की। मोख्या = छुडाया। मोखावि व्याळ = नागराज को मुक्त करके।

६८ तणी = की। विहरत = विचरण करते हुए। मोखिया = छुडाया। विनता = वनिता।

पाठान्तर—

६३ १ प्रहि प्रहि गिरि गोविंद वणियूं वसदेरावउत
२ वणियौ

६५ कोरा काट पं~।

६८ प सखचूड सघारि व्रज तणियु बन वहरता। मोखावियौ मुरारि, वनिता वसु~रावउत।'
तै सखचूड सघारि तणियउ वन विहरत।
मोखाविउ मरारि विनता वसदेरावउत ॥

(६९)

धरि तू सनमुख धाइ, किरि गिळियौ परि काकडौ
केसी पहियौ काइ, विकस वसदेरावउत

(७०)

गोवळ ग्रापि गिवार, महा ग्रसुर तैं मारियौ
वैरी रूप वणार, वागे वसदेरावउत

(७१)

काढण दइता कद, गोविंद कजि गोवळ तण
तैं मारिया मुकुंद, वामैं वसदेरावउत

(७२)

मजण करिया मूढ, पग देख दाणवपती
रिप सिर थायैं रूढ, विरतै वसदेरावउत

---

६९ किरि = मानो । गिळियौ = निगल गया । परि = तरह । केसी = एक ग्रसुर जिसका सहार श्रीकृष्ण ने किया था ।

७० गिवार = मूर्ख । वरी = शत्रु । वणार = बना करके ।

७१ काढण कद = निकदन करने के लिये नाश करने के लिये । दइता = दत्यो का । कजि = लिये, वास्ते । तण = का । गोवळ तणे = गोकुल वासियो के ।

७२ मजण करिया = सफाया किया, नाश किया । मूढ = मूढ लोगो का, ग्राततायियो का । मूढ दाणवपती = मूर्ख दानवपतियों का । पग देखे = खोज खोज करके, खोज कर कर के । रिप = रिपु, शत्रु । थायै रूढ = सवार होकर के, ग्राक्रमण करके ।

पाठांतर—

६९ धरतो । विहस वसदेरावउत ।
७० गमार । विणार वणाइ ।
७१ काटण । प मारियौ । वोमे । विमहा ।
७२ पठो पेख दान पति ।
१ रुपि जु राखियो रुढ । रूप स रथ आरूढ ।
२ रूप जु रथिया रूढ ।
१ वारित वसदरावउत । वारिज ।
२ धारत वसदेरावउत ।

(७३)

जाचिय नटिया जाइ, मारि रजक पुर माल्हियौ
पाण जा पहिराइ, वेससि वसदेरावउत

(७४)

कुसम चदण ले काम, ऊधरियौ पोहुत ग्रहति
ग्रहिनिस इद सुदाम, वाइक वसदरावउत

(७५)

हरि कीधौ जस हस, किसन कस का कस कौ
धनख जगन विधवस, विरतै वसदेरावउत

(७६)

दीधा पाड दत, खविया गै चाढइ खव।
कस दिसा श्रीकत ग्रीखा वसदेरावउत

(७७)

कसासुर काएह, चूरण जे चाणूर के
वरजाए वाएह, वाजित वसदेरावउत

---

७३ जाचिय = याचना की। नटिया = मना किया। रजक = धोबी। माल्हियौ = आनद किया। पाण = हाथो से। वेससि = वेश वस्त्राभूषण।

७४ ऊधरियौ = उद्धार किया, बच गया। पोहुतै = पहुँच गया। ग्रहति = बिना प्रहारो के। वाइक = वचन।

७५ धनख जगन = धनुष यज्ञ।

७६ पाड = गिरा दिया। ग = हाथी। खव = कधे पर। ग्रीखा = चाल। खविया = प्रकाशित हुए।

७७ चाणूर = कस का एक योद्धा जिसे कृष्ण ने मारा था। वरजाए = वर्जित किया। वाजित = तार वाद्य।

पाठातर—

७३ पुर मेलियो। पणजा। १ वेस तसु २ वसत सु।

७४ उधरिया पहि अहिनी। ऊधरिया ले सहलि ता। १ अहिनिस सो इद्रियो २, इद्रियो सुनामा वारित।

७५ हरि कीधा जस हौस निसन किसन कै कस को। किसन कसका कस कौ। धानख जिगनि विघू सि। धनक जगन विधौस वारिस वसदेरावउत।। विग्रह।

७६ पिखिआ ग चाहै पव।

७७ कस मुगी कामाह, चोरण अप चाणूर को।
वर वायां वाह वाजित्र वसन्देरावउत।।

(७८)

अगिलूणी असहृति गिरधर घस स केस गहि
वही अणी विसरति, विकरख वसदेरावउत

(७६)

निगम पढे गुर नेस, दखिणा सुत जीवाढि दे।
सतोखिया सदेस, विरहृणि वसदेराषउत

(८०)

भ्राण्या वरण अढार, मागध बाघे मूकियौ
सेन कियौ सघार, विढत वसदरावउत

(८१)

जाळेवा जवनेस, माहव दिठ मुचक्द री
पँ जाणी परमेस, वहवा वसदेरावउत

(८२)

समरि समरि सत्र साथ हृणि केता केताइ हृरि
हालाव वळि हाथ, विमहा वसदेरावउत

---

७८ अगिलूणी – पहिले की । असहृति – शत्रुता । विसरति – भूल करके । विकरख – खीच करके ।

७६ नेस – घर । दखिणा – दक्षिणा । सतोखिया – सतुष्ट किया ।

८० भ्राण्या – लाये । वरण अढार – समस्त जातियाँ । विढत – युद्ध करके ।

८१ जाळेवा – जलाने के लिये । जवनेस – कालयवन । माहव – माधव । दिठ – दृष्टि । मुचक्द – इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न मान्धाता राजा का पुत्र । प – १ प्रतिज्ञा २ वरदान ।

८२ समरि समरि – स्मरण कर कर के । सत्र-साथ – शत्रु समूह । विमहा – विमुख ।

पाठान्तर—

७८ घस स कस ग्रहि। वहे आणी।
७६ निगिम पट गुरव नेस नि क्षणासुत जीवाडिने। सतोखियौ से देस।
८ आया वार अढार, मगध बधिय मूकियौ ।
८१ हवि मुचकद की। प जांण। विसरत।
८२ वलि।

(८३)

महि महमहण मभारि, इमि न हुव प्रघखण प्रतरि
मडीजतं मुरारि, वसती वसदेरावउत

(८४)

प्रभु त्रिण कीट पतग, पाळया ब्रह्मादिक प्रळ
साचौ तू श्रीरग, ग्रविया वसदेरावउत

(८५)

सिर सिसपाळ समारि, सिखरे नव नव सेहरा
वरवा नारि कुमारि, वेरक वसदेरावउत

(८६)

दामोदर दातार, तू सुदर दातार तू
सत्र सघरि करि सार, वीरति वसदेरावउत

(८७)

भ्रम चौ की भणियाह, होडा होडा हालिया
विदरभ वीदणियाह वीद त वसदेरावउत

---

८३ महमहण = समुद्र । मझारि = बीच मे । ग्रधखण = आधे क्षण का समय । मडीजतं = रचना करते हुए को ।

८४ प्रळ = प्रलय काल मे । ग्रवियो = कहा ।

८५ समारि = काट कर । सिखरे = सिर पर । वेरक = एक बार ।

८६ सत्र = शत्रु । सघरि = नाश किया । सार = तलवार । वीरति = विरता ।

८७ विदरभ = विदर्भ । वीदणिवाह = दुल्हिनें । वीद = दूल्हा । होडा होडा = शत करके ।

पाठान्तर—

८३ अनिन हुइ अधखिणि । मांझी जत ।

८४ पल । वाद्य ।

८५ शिखिरि । सेहुरा । मर क नारि । वरक ।

८६ तू सुन्दर करता सु । विरत ।

८७ भरम चौकि मिलियाह डाहो हुइ डाहलिया ।
विदर्भि वीदणियाह वीदित वसदेरावउत ॥

(८८)

विढि सिसपाळ विडारि, आणी रुकमणि आवतै
बळि-बयण बळिहारि, वाटा वसदेरावउत

(८६)

लसति हसति करिलाज, इम रमति रामा उरसि
किरि बीजळी विराज, वादळ विसदेरावउत

(६०)

जामवती जीपेह, जादम मणि कजि जादमा
पै आणी पैसेह, विमर त वसदेरावउत

(६१)

आणी सत्र जिति आचि, दीधी मणि जगि देखता
सतभामा तिणि साचि, व्याही वसदेरावउत

(६२)

अरक सुता अनुरागि, तो कजि तप तपती तरुणि
लोयण इणपरि लागि, विभ्रम वसदरावउत

---

८८ विढि = युद्ध करके। विडारि = मार दिया। आणी = लाए। वाटा = माग।

८६ लसति = शोभा पाती हुई। इम = इस प्रकार। रमति = क्रीडा करती है। रामा = लक्ष्मी। उरसि = हृदय म।

६० जामवती = श्रीकृष्ण की एक पत्नी, जाम्बवान की कन्या। जीपेह = जीत करके। जादम = जादव, यादव, कृष्ण। विमर = गुफा। जादमा = यादवों को। कजि = कारण, लिये। मणि = स्यमतक मणि।

६१ सत्रजिति = सत्राजिति राजा, सत्यभामा के पिता। आचि = हाथ। सतभामा = सत्यभामा।

६२ अरक सुता = यमुना। लोयण = नेत्र। इण परि = इस प्रकार। विभ्रम = शोभा।

पाठान्तर—

८६ इमि रमति रासा उरसि।
६१ सत्रजित। तिणि साचि।
६२ अर सुता अनराग। तरणि। लोयण अमि नर।

(८३)

महि महमहण मझारि, इमि न हुव अधखण अतरि
मडीजतं मुरारि, वसती वसदेरावउत

(८४)

प्रभु त्रिण कीट पतग, पाळया ब्रह्मादिक प्रळै
साचो तू श्रीरग, अवियो वसदेरावउत

(८५)

सिर सिसपाळ समारि, सिखरे नव नव सेहरा
वरवा नारि कुमारि, वेरक वसदेरावउत

(८६)

दामोदर दातार, तू सुदर दातार तू
सत्र सघरि करि सार, वीरति वसदेरावउत

(८७)

भ्रम चौ की भणियाह, होडा होडा हालिया
विदरभ वीदणियाह, वीद त वसदेरावउत

---

८३ महमहण = समुद्र । मझारि = बीच मे । अधखण = आधे क्षण का समय । मडीजत = रचना करते हुए को ।

८४ प्रळ = प्रलय काल मे । अवियो = कहा ।

८५ समारि = काट कर । सिखरे = सिर पर । वेरक = एक बार ।

८६ सत्र = शत्रु । सघरि = नाश किया । सार = तलवार । वीरति = विरता ।

८७ विदरभ = विदर्भ । वीदणियाह = दुल्हिनें । वीद = दूल्हा । होडा हाडा = शत करके ।

पाठान्तर—

८३ अनिन हुइ अधखिणि । मांडी जत ।
८४ पलै । आइयै ।
८५ सिखिरि । सेहुरा । भरै क नारि । वरक ।
८६ तू सुदर करता सु । विरतं ।
८७ भरम चौकि भिलियाह डाहो हुइ डाढलिया ।
विदर्भि बीन्णियांह बीन्दि वसदेरावउत ॥

(८८)

विढि सिसपाळ विडारि, आणी रुक्मणि आवत
बळि-बंधण बळिहारि, वाटा वसदेरावउत

(८६)

लसति हसति करि लाज, इम रमति रामा उरसि
किरि बीजळी विराज, बादळ विसदेरावउत

(६०)

जामवती जीपेह, जादम मणि कजि जादमां
पै आंणी पैसेह विमर त वसदेरावउत

(६१)

आणी सत्र जिति आचि, दीधी मणि जगि देखता
सतभामा तिणि साचि, व्याही वसदेरावउत

(६२)

अरक सुता अनुरागि, तो कजि तप तपती तरुणि
लोयण इणपरि लागि, विभ्रम वसदेरावउत

---

८८ विढि = युद्ध करके । विडारि = मार दिया । आणी = लाए । वाटा = माग ।

८६ लसति = शोभा पाती हुई । इम = इस प्रकार । रमति = क्रीडा करती है । रामा = लक्ष्मी । उरसि = हृदय में ।

६० जामवती = श्रीकृष्ण की एक पत्नी, जाम्बवान की कन्या । जीपेह = जीत करके । जादम = जादव, यादव, कृष्ण । विमर = गुफा । जादमा = यादवों को । कजि = कारण, लिये । मणि = स्यमतक मणि ।

६१ सत्रजिति = सत्राजिति राजा, सत्यभामा के पिता । आचि = हाथ । सतभामा = सत्यभामा ।

६२ अरक सुता = यमुना । लोयण = नेत्र । इण परि = इस प्रकार । विभ्रम = शोभा ।

पाठांतर—

८६ इमि रमति रामा उरति ।

६१ सत्रजित । तिणि साथि ।

६२ अर सुता अनरागि । तरणि । लोयण अमि नर ।

(६३)

आणी परणी आइ, कालिंद्री काठ क्रिसन
माही जगत्र मडाइ, व्याही वसदेरावउत

(६४)

आणी छेतरि ईस, वरि मति व्रिदा सुप्रवर
प पदमणि पैंत्रीस, वरी तु वसदेरावउत

(६५)

हो भामी हरि हाथ, सातै कारणि सुदरी
नाथी ग्रेकणि नाथ, विभ्रम वसदेरावउत

(६६)

तैं परणता तोइ, मगळ रूपी मगळा
वाधाग्रे विस लोइ, वाडी वसदेरावउत

(६७)

का्हवा बाध काछ राई दुलभ ज राइकै
मद सरि आणी माछ, वेधी वसदेरावउत

---

६३ आणी = लाये। परणी = विवाह कर लिया। काठ = किनार। जगत्र = (१) यज्ञ (२) मडप।

६४ छेतरि = धोखा देकर। व्रिदा = तुलसी, शखचूड की पत्नी। सुप्रवर = दूसरा।

६५ भामी = न्योछावर। सात कारणि = सभी प्रकार।

६६ परणता = विवाह होने पर।

६७ काछ = घुटनो तक पहनी हुई धोती। दुलभ = दुलभ। माछ = मच्छी।

पाठातर—

६३ माह। वहा।
६४ चेतरि। वेरी मुत व्रिदा समर। वरीक।
६५ हू। नाथीया। व्रिप ल।
६६ परणीता। वाधाई। वाटी।
६७ का्हडि बधै। राइ दुलभी राइ कुआरि। मदरि। वेधै।

(६८)

अमुर वहू आणीह, सोळह सहस सु आगळी
पँ अठ पटराणीह, वरी त वसदेरावउत

(६६)

अेकणि अेकणि अेव, दुहिता दस दस दीकरा
वनिता वियौ विमेक, याइ त वसदेरावउत

(१००)

आंणै रोप्यौ ईस, पदमणि आगणि कलपतर
जीप पँ जगदीस, वासिव वसदेरावउत

(१०१)

चवर ढुळ लख च्यारि, आगळि वीजैं आरती
त पालखी पधारि, वणियौ वसदेरावउत

(१०२)

जो अतरिख जगदीस, सुदरि ग्रहि-ग्रहि समसमू
पँ आपणपौ ईस, विहचैं वसदेरावउत

(१०३)

परमेसुर करि प्यार, इम श्री गरब उतारि वी
सू तुलियौ सु तिवार, अदा वसदेरावउत

---

६८ पटराणीह — पटरानी । पँ — किन्तु । अठ — आठ । वरी — वरण की ।

६६ विमेक — विवेक । दुहिता — बेटी ।

१०० रोप्यौ — लगाया । कलपतर — कल्पतरु । जीप — जीत । वासिव — इन्द्र ।

१०१ वणियौ — शोभित हुआ ।

१०२ अतरिख — अतरिक्ष । आपणपौ — अपनाया । विहच — वितरित किया बाट दिया ।

१०३ इम — इस प्रकार । श्री — स्त्री । अदा — तुलसी । तिवार — उस समय ।

पाठांतर—

६८ सोल सहस सो अगली ।

६६ विसक, बसेख । वे अत ।

१०० रोपीयो । वासव ।

१०२ समसमो ।

१०३ अनि सी गरब उतारिवा । तिणिवार । विद्रा ।

(१०४)

घर मोकळियौ घेर, श्रीपति श्रीदामा सखा
कण ले तणौ कुमेर, वित दे वसदेरावउत

(१०५)

तू कासव का सेस, विलगा कूडै वासद
परळ तणौ प्रमेस, विहनिक वसदेरावउत

(१०६)

देख जरासघ दोग, समळा व्रन राजा सहस
मारि कियौ मद मोख, विहस वसदेरावउत

(१०७)

पूजा फळ पो पागि, जुग सगळौ जीपै करै
जुजिठळ केरो जागि, विह्द त वसदेरावउत

(१०८)

देव बळती दाट, सिरि देखै सिसपाळ कै
वैरी ग्या दहवाट, विडरि त वसदेरावउत

---

१०४ मोकलियौ = भेजा। श्रीपति = विष्णु, कृष्ण। कुमेर = कुबेर। श्रीदामा = सुदामा। वित दे = सम्पत्ति देकर। कण = अन्नकण।

१०५ कासव = कश्यप। का = अथवा। विलगौ = विलग्न हुआ। वासदे = वासुदेव। प्रमेस = परमेश्वर। विहनिक = अग्नि।

१०६ दोख = त्रुटि, अपराध, दोष। समळा व्रन = कुटिल वृत्ति वाला। मोख = मोक्ष, मुक्त। विहस = प्रसन्न होकर के।

१०७ पो = (१) प्रभु (२) प्राप्त करके, (३) प्रभात। पागि = पाँव, चरण। जीप करै = जीत करके। जुजिठळ = युधिष्ठिर। जागि = यज्ञ। विहद = असीम, वृहद्।

१०८ बळती = आती हुई। दहवाट = नाश, ध्वस्त। विडरि = (१) अत्यन्त क्रोध किया, (२) विदीर्ण किया। दाट = (१) प्रहार, (२) विनाश।

पाठान्तर—

१०५ तु केसव काकस। विहनक।
१०६ सामला जन। मारि किया विन। वीम।
१०७ पूया फूलो पाग। जग सघलौ। जिजविल कीधो ज्याग। वेह हत वसदेरावउत।
१०८ देवा बलती दाढ। गा दहवाट। वीडरि।

(१०६)

तैं एकणि अणपाल, आरण हणि पाड इता
सत दँतवक तसु साल, विदरथ वसदेरावउत

(११०)

आकरखता असत, पचाळी पोकारता
अनत ! न आयो अत, वसतरि वसदेरावउत

(१११)

भीरी हुइ भाराथ, अणखडित रथ आरुहे
जैं दीनी जगनाथ, विज त वसदरावउत

(११२)

राख तैं जदुराण, अगनी ही पस अजण
सतोग्न सुत आण, विरहै वसदेरावउत

(११३)

भगत हूत मनि भाय, मेटण अनि त्री कुळ मडण
उतिम कीधो आय, विदरो वसदेरावउत

---

१०६ अणपान — जो रोका नही जा सके । आरण — युद्ध । हणि — हनन करके । एकणि — (१) एक वार (२) अकेले । दँतवक — दतवक्र वक्रन्त ।

११० आकरखना — खींचने पर । असत — दुष्ट । पचाळी — द्रौपदी । पोकारता — पुकारने पर । वसतरि — वस्त्र । अनत — १ परमेश्वर श्रीकृष्ण २ अनन्त ।

१११ भीरी — सहायक । भाराथ — युद्ध । जैं — विजय । दीनी — दी । आरुहे — चढकर ।

११२ जदुराण — जदुराय, कृष्ण । अजण — (१) अर्जुन, (२) निजन, (३) अजन्मा ।

११३ मनिभाय — प्रिय । विदरो — विदुर ।

पाठान्तर—

१०६ प एकणि अणपानि । अरियण हणि । सत्र दँतवक्र । विदुर त

११० वसत्रा ।

१११ दीधो ।

११२ दाख । अगिनि कि पसतो अजन । संतोखियो । विग्रहै ।

११३ भाइ । मण्ण अनि कुलमद मदिरि । विदुरो ।

(११४)

आपणि मानी ईस, हुतासु त रमता सु हरि
छत्र धरि वस छत्रीस, विनडी वसदेरावउत

(११५)

नाभि स्रवण मुखि नैण, चोथै आवध कर चरणि
श्री सघासण सण, वारज वसदेरावउत

(११६)

मधि तनि ससिर मऊख, समद न नव कूड सरगि
प्रभु आखिया पिऊख, वरसित वसदेरावउत

(११७)

पुरिख स पुनवताह, त्रिय पसु पखी तेणि तर
हरि तौर हूताह वारं वसदेरावउत

(११८)

पेख नह निम्र पाप, कान्हव राधा सग किय
अतरि व्रज अदियापि, विलसत वसदेरावउत

---

११४ विनडी = विनाश किया ।

११५ स्रवण = कान । आवध = आयुध । सघासण = सिंहासन । वारज = (१) कमल (२) शख ।

११६ मऊख = (१) शोभा, (२) प्रकाश । ससिर = शिशिर ऋतु । आखिया = आखो मे । पिऊख = पियूष, अमृत ।

११७ पुरिख = पुरुष । पुनवताह = पुण्यशाली । तौर हूताह = तेरे ऊपर से, तरे होने से । वार = निछावर करते हैं ।

११८ पख = देखता है । निम्र = निज । अदियापि = अद्यापि ।

पाठातर—

११४ हुता अ त रमत स हरि । विनड ।
११५ श्रमण मुख । चोथो आवध करि चलण । सैण । वारिज ।
११६ मझि तन सिसर मयूष समद्रि न नव कुडसरगि । आंपीया पयष । वरसै ।
११७ पुरख ज पुण्यवताह ग्रोय पसुपखो त्रिणि थें तरव ।
११८ कान्हो राधा सगि कियो । अतरि अज आमाप । जुअभा माण । विलस ।

(११६)

परळ जळ पैसेह, विढियै सखासुर वहे
ब्रहमड विड ग्राणेह, वळिया वसदेरावउत

(१२०)

दाढा अग्रि धरि दाखि, तू वाराहा मोघ वरि
हौफरियौ हिरणाखि, वाढै वसदेरावउत

(१२१)

रहचै राकस राज, रूप थियौ भ्रगराज रै
गाज्यौ तिण ग्राग्राज, ब्रहमड वसदेरावउत

(१२२)

हरि पूठा हरि हाथ, मदिर रइ गोळी महण
नेत्र गू थियौ नाथ, वासिग वसदेरावउत

(१२३)

माखण रतन मथेह, काढै प लीधा किसन
छाड्यो छाछ करेह, वारिध वसदेरावउत

---

११६ परळ — प्रलय। विढियै — लडाई की। सखासुर — एक राक्षस। ब्रहमड — ब्रह्माड। विड — शत्रु। वळिया — लौट आये।

१२० दाढा — डाढो के। अग्रिधरि — आगे रख कर। दाखि — प्रकट किया। हौफरियौ — (१) क्रोध करके। हिरणाखि — हिरण्याक्ष। वाढ — नाश किया। मोघ — असभव।

१२१ रहच — चीर डाला। ग्राग्राज — घोर गरजन। भ्रगराज — सिंह। थियौ — हुआ।

१२२ पूठा — पुष्ट। मदिर — मद्राचल। रइ — मथानी। महण — समुद्र। नेत्र — मथानी की रस्सी। वासिग — नाग, सप। गोळी — दही मथन का बडा पात्र, बडा मटका।

१२३ माखण रतन — मक्खन रूपी रत्न। मथेह — मथकर, मथन कर। वारिध — समुद्र।

पाठातर—

११६ विटप। ब्रहम गमाडया वेद। वीलाया।
१२० दाढ अग्रधर। तै वाराहा मोघ वरि होफरियो।
१२१ रूप थयो मृघराज रो। गाजीया तिणि।
१२२ पूठो रई गोली। नेत्रै गू थ।
१२३ छाडियो छाछि।

(१२६)

प्रायो तू प्राइ, सब ही दिन भगता संगठ
मरीजता सहाइ, विलब न वसदेरावउत

(१३०)

है प्राराधि, कारणि तिणि भगता क्रिया
काजि प्रसाध, वूहा वसदरावउत

(१३१)

छोइ न रोक, लिखमीवर करता लहै
जियो त्रीलोक, वेगा वसदेरावउत

(१३२)

गो मिथलोय, जा नान्हा ई नारियण
त्वा सु जोय, वडा त वसदेरावउत

(१३३)

। करेह, जग सिर देवळ डड जिम
। धरेह, विसनव वसदेरावउत

ता — स्मरण करते ही। प्राइ — प्रायेगा।
। कारणि — कारण निमित्त हेतु। साधा —
— दुष्ट। वूहा = (१) मारा (२) चला।

मेलन से क्रीडा करने से। लिखमी

— छोटा, साधारण। ई — भी।
महान, (बडा)। नारियण —

— जसे। घ्रू — ध्रुव।

(१२४)

कजि इँद्र मघ कर पोइ, धेन अछर है गं धनख
जेवड वाधी जाइ, वासग वसदेरावउत

(१२५)

पग पाताळि पइठु माथौ ब्रहमंड लग मिळ
दाणव अहवौ दिठु, वामण वसदेरावउत

(१२६)

बळि गमि तालावोलि, लोप ब्रह्म ड मुगति लगि
वधियौ असुर विरोळि, वप तू वसदेरावउत

(१२७)

गजण असुरा गाउ, भूधर तू भुवणा भुवण
रमियौ कर पखराउ, वाहण वसदेरावउत

(१२८)

धायौ धावताह, गुरड ही माठौ गिण
ग्राह उग्राहण ग्राह, वारण वसदेरावउत

---

१२४ धेन = धेनु । अछर = अप्सरा । है = घोडा, उच्चश्रवा । ग = हाथी ऐरावत । जेवड = रस्सी । वासग = सप ।

१२५ पइठु = धुस कर । दाणव = दानव, बलि राजा । अहवौ = एसा । दिठु = दिखाई दिया । वामण = वामन अवतार ।

१२६ तालावोलि = उतावल से, आतुरता से । विरोळि = नाश किया । वप = शरीर ।

१२७ गजण = नाश करने । भुवणा भुवन = प्रत्येक भुवन म भुवन प्रति भुवन । पखराउ = गरुड । गाउ = स्थान, गाँव ।

१२८ धायौ = भागा । धावताह = स्मरण करते ही । माठौ = मद । उग्राहण = उद्धार करने के लिए । वारण = हाथी । गुरड = गुरड को ।

पाठांतर—

१२४ किजि इंद्र मघ करूपोइ । जेवड ।
१२५ ब्रमंडम । नहीं एहो दीठ ।
१२६ मोर ब्रहमंड लगि । वप तो ।
१२७ भुवणा भुवणि ।

(१२६)

तू आयो तू आइ, सब ही दिन भगता संगठ
सिमरीजता सहाइ, विलब न वसदेरावउत

(१३०)

आग है आराधि, कारणि तिणि भगता किया
साधा काजि असाध, वूहा वसदेरावउत

(१३१)

रमता कोइ न रोक, लिखमीवर करता लहै
तू भजियौ श्रीलोक, वेगा वसदेरावउत

(१३२)

ता भजियो त्रियलोय, जा नान्हा ई नारियण
जग पुड हुवा सु जोय, वडा त वसदेरावउत

(१३३)

कीधा त्रिपा करेह जग सिर देवळ डड जिम
ध्रू साखियो धरेह विसनव वसदेरावउत

---

१२६ सगठ = सकट । सिमरीजता = स्मरण करते ही । आइ = आयेगा ।

१३० आराधि = आराधना की । कारणि = कारण, निमित्त हेतु । साधा = सत्पुरुषो के, भक्तो के । असाध = दुष्ट । वूहा = (१) मारा (२) चला । आगै = विगत काल, पहिले ।

१३१ रमता = (१) रमण करने से, (२) खेलने से, क्रीडा करने से । लिखमीवर = लक्ष्मीपति ।

१३२ ता = तेरे को । त्रियलोय = त्रिलोक । नान्हा = छोटा, साधारण । ई = भी । जग पुड = पृथ्वीलोक । सु = वह । वडा = महान, (बडा) । नारियण = नारायण ।

१३३ देवळ डड = मदिर का दड (सर्वोच्च) । जिम = जसे । ध्रू = ध्रुव । साखियो = साक्षी । विसनव = वष्णव ।

पाठान्तर—

१२६ सगठि । विलम ।
१३१ को लग वो सलोक ।
१३२ तू भजियो त्रैलोइ जिये नान्हे ही नारीयण । जगपुडि हुआ साजोइ ।
१३३ जुग सिरि देउल डड जिम ।

(१२४)

कजि इँद्र मघ कर पोइ, घेन ग्रछर है गँ धनख
जेवड कीधी जाइ, वासग वसदेरावउत

(१२५)

पग पाताळि पइठु माथौ ब्रहमड ल मिळ
दाणव ग्रहवौ दिठु वामण वसदेरावउत

(१२६)

वळि गर्मि तालावोलि, लोपं ब्रह्म ड मुगति लगि
वधियौ ग्रसुर विरोळि, वप तू वसदेरावउत

(१२७)

गजण ग्रसुरा गाउ, भूधर तू भुवणा-भुवण
रमियौ कर पखराउ, वाहण वसदेरावउत

(१२८)

धायौ धावताह, गुरड ही माठौ गिण
ग्राह उग्राहण ग्राह, वारण वसदेरावउत

---

१२४ घेन – धेनु । प्रछर – ग्रप्सरा । है – घोडा, उच्चश्रवा । ग – हाथी, ऐरावन । जेवड – रस्सी । वासग – सप ।

१२५ पइठु – घुस कर । दाणव – दानव, बलि राजा । ग्रहवौ – एसा । दिठु – दिखाई दिया । वामण – वामन ग्रवतार ।

१२६ तालावोलि – उतावल से, ग्रातुरता से । विरोळि – नाश किया । वप – शरीर ।

१२७ *गजण – नाश करने । भुवणा भुवन – प्रत्येक भुवन म भुवन प्रति भुवन ।* पखराउ – गरुड । गाउ – स्थान, गाँव ।

१२८ धायौ – भागा । धावताह – स्मरण करते ही । माठौ – मद । उग्राहण – उद्धार करने के लिए । वारण – हाथी । गुरड – गुरड को ।

पाठांतर—

१२४ किजि इंद्र मघ कमतोइ । जोवड़ ।
१२५ वमहम । दईनै एहो दीठ ।
१२६ लोनै ब्रह्मंड मझि । वर लो ।
१२७ भुवणा भुवणि ।

(१४०)

मो मन मधुप मुरारि, परिमळ घूट ता पिय
गोपीचदण गारि, वीधौ वसदेरावउत

(१४१)

पायौ रस तू पाय, माणदघण जे अमृत अभ्रित
स्याम थयै इ पसाय, विस होइ वसदेरावउत

(१४२)

ताहरौ समरण जिम तुज्झ, श्रीवछ लछण उरि सदा
माहव तिम तू मुज्झ, वसियौ वसदेरावउत

(१४३)

आठो पहर अनत, गोविंद तू गावण तणौ
लागो लखमी-कत, वसन त वसदेरावउत

(१४४)

लागी प्रीति ज लोइ जिम पचाळी पगरणि
तनि ताणिती तोइ वाधी वसदेरावउत

(१४५)

चढियौ तू चढियाह, चीत ज मद चेतन तणौ
अजु ऊतरियौ नाह, विलसत वसदेरावउत

---

१४० मधुप – भौंरा। परिमल – सुगध। गारि – गार के लेपन से। वीधौ – विध गया, उलझ गया।

१४१ पाय – चरणो से। पसाय – कृपा, प्रसाद।

१४२ श्रीवच्छ – श्रीवत्स, विष्णु। लछण – चिन्ह (भृगुलता)। माहव – माधव।

१४३ वसन – व्यसन।

१४४ पगरणि – वस्त्र। वाधी – बढ गई।

१४५ चीत – हृदय। चेतन – परब्रह्म परमात्मा। अजु – अभी तक। नाह – नही।

पाठान्तर—

१४० प्रेमल घूटे ता पयो।

१४१ सो पाइ समप पियो विपसाहि। विस्या वसुदेरावउत।

१४२ ताहरो साम ज तुझ। माहव तू मनि मूज।

१४३ सो गावण। विसनत।

१४४ पागुरिण। तन ताणीतां तोद।

१४५ चढीयै तै। चीतिज मद चेतन तणा। अज न ऊतरियाह। वेल स।

(१३४)

श्री भागवत सु भेद, भारथ रामायण भळ
व्रजपति तू जस वेद, वाचै वसदेरावउत

(१३५)

गोविंद एहज गुज्झ, व्रज भूखण वेदा तणो
तू जा लगता, तुज्झ, वाता वसदेरावउत

(१३६)

कविता पूज कराइ, वसपायन वालमिक
सुक मुनि नारद साइ, व्यासँ वसदेरावउत

(१३७)

माया असुर महेस, महि महि तु वपता मही
श्री सुरपती नर सेस, वेदे वसदेरावउत

(१३८)

जळि मजता जकाइ, प्रभु ज करै लोका प्रवित
प्रवित थइ तो पाइ, वेणी वसदेरावउत

(१३९)

रस लोभिया रसाळ, तु प मन भगती तणा
फिरि महुवर महवाळि, विलगा वसदेरावउत

---

१३४ भारथ = महाभारत। भळै = और। वाचै = कहता है, पढता है

१३५ गुज्झ = गुप्त भेद। एहज = यही। वेदा तणो = वेदो का।

१३६ कविता = काव्य ग्रथ (वे काव्य ग्रथ जिनमे भगवान की यशोगाथा हो)

१३७ महि महि = पृथ्वी मे। वप = शरीर।

१३८ जळि = जल मे। मजता = स्नान करते हुए। जकाइ = जो। प्रवित = पवित्र। तो पाइ = तेरे चरणो से। वेणी = त्रिवणी।

१३९ महुवर = महुवा (शराब)। विलगा = पलग। प = पाँव चरण। महवाळि = तरफ, ओर। रसलोभिया = रस के लोभी। रसाळ = रसीला।

पाठातर—

१३४ स भद। तो जम।
१३५ गोविं' एहो गूढ। तण। तू अ लाग तो तूझ।
१३६ कवि तो। बिसपाइन वालमी।
१३७ महिर तो वपता मही। वा", वांदे।
१३९ तो पै मन भगता तणा। करि महू वर मोहाम।

(१४०)

मो मन मधुप मुरारि, परिमळ छूट ता पिय
गोपीचदण गारि, वीधौ वसदेरावउत

(१४१)

पायौ रस तू पाय, भ्राणदघण जे भ्रमृत
स्याम थयै इ पसाय, विस होइ वसदेरावउत

(१४२)

ताहरौ समरण जिम तुज्झ, श्रीवछ लछण उरि सदा
माहव तिम तू मुज्झ, वसियौ वसदेरावउत

(१४३)

भ्राठो पहर भ्रनत, गोविंद तू गावण तणो
लागो लखमी-कत, वसन त वसदेरावउत

(१४४)

लागी प्रीति ज लोइ जिम पचाळी पगरणि
तनि ताणिती तोइ वाधी वसदेरावउत

(१४५)

चढियौ तू चढियाह, चीत ज मद चेतन तणौ
भ्रजु उत्तरियौ नाह, विलसत वसदेरावउत

---

१४० मधुप — भौंरा। परिमल — सुगध। गारि — गार के लेपन से। वीधौ — बिध गया, उलझ गया।

१४१ पाय — चरणो से। पसाय — कृपा, प्रसाद।

१४२ श्रीवच्छ — श्रीवत्स, विष्णु। लछण — चिन्ह (भृगुलता)। माहव — माधव।

१४३ वसन — व्यसन।

१४४ पगरणि — वस्त्र। वाधी — बढ गई।

१४५ चीत — हृदय। चेतन — परब्रह्म परमात्मा। भ्रजु — भ्रभी तक। नाह — नहीं।

पाठान्तर—

१४० प्रेमल छूटे ता पयो।

१४१ तो पाइ समप पियौ विपसाहि। विहया वसुदेरावउत।

१४२ ताहरो साम ज सूझ। माहव तू मनि मूज।

१४३ सो गावण। विसनत।

१४४ पागुरिण। तन ताणीता तोइ।

१४५ चढीयै तै। चीतिज मद चेतन तणा। भ्रज न ऊतरियाह। वेल स।

(१४६)

पूत कलित परिवार, मात भ्रात पति मीत मन
आतम हूत अपार, वाल्हो वसदेरावउत

(१४७)

तू दाता तू देव प्रभु मोर माता पिता
तीकम मीत तमेव वीत त वसदेरावउत

(१४८)

आतम काया आथि, मनछा वाचा करमणा
हरि म तोरें हाथ, वच्या वसदेरावउत

(१४९)

वाइ स वारिधि काह, प्रिथमी मन प्रिथिदास मा
नाव चलण विण नाह, वासौ वसदेरावउत

(१५०)

समदर माहि ससार भमर जाळ पडियो भमण
ईस ! न को आधार, विण तो वसदेरावउत

---

१४६ कलित = कलत्र पत्नी । हूत = से । वाल्हो = प्रिय ।

१४७ तीकम = त्रीकम । तमेव = त्वमेव तुम्ही । वीत = वित्त ।

१४८ आथि = (१) धन (२) भी (३) सवया । मनछा = मनसा, मनसे । वेच्या = बेच दिया ।

१४९ वाइ = वायु । प्रिथमी = पृथ्वी । वासौ = विश्राम । विण = बिना । नाह = नाथ ।

१५० विण तो = तेरे विना ।

पाठान्तर—

१४६ पुत्र कलत्र । मात भ्रात पित ।

१४७ प्रभ तोरे । त्रीकम ।

१४८ मनछा वाछा क्रमणा । वेचीया ।

१४९ वाइ हुम । नाम चलण विण नाह ।

१५ समुद्र । भवर । पुवणि । इमो न को आधार ।

(१५१)

बूडता दे बाथ, भवसागर भैंवातिया
वहै न को व्रजनाथ, वाइ स वसदेरावउत

(१५२)

ओलाडै उर वारि, पार ज तो पायो नही
माला काळीधार, वहसी वसदेरावउत

(१५३)

एह वडो आधार, सिरी हरि समरण तणौ
सहि बीजो ससार, वार्वरि वसदेरावउत

(१५४)

काटा मातो कोडि मन लागा माया तणा
व्रज नायक वीछोडि विनतो वसदेरावउत

(१५५)

रस जाळता राग, सवि लागौ ससार क
पालण नाम प्रयोग, वद सु वसदेरावउत

---

१५१ वूडता = डूबते हुए को । द बाथ = (१) सहारा देकर (२) बाहुपाश
लेकर । भैंवानिया = भयान्वित । बाइ = वायु ।

१५२ ओलाड = अवना करते हैं । काला = पागल । काळीधार = काली
भयकर आफत ।

१५२ वार्वरि = (१) व्यय, (२) वाड के कांटो के समान । सहि = समस्त, सब

१५४ कोडि = करोड । वीछोडि = छोड करके ।

१५५ जाळ तां = नाश होने मे । पालण = पथ्य, नाम प्रयोग = नाम सुमिरण
चिकित्सा ।

पाठान्तर—

१५१ वह न वय व्रजनाथ । बाहम ।
१५२ उलड । पार हतो ।
१५३ यह अवम आधार । सरी हरि समरणतणा । सह । बाहरि ।
१५४ वनसी वसदरावउत ।
१५५ जालीवा । सक मायो समार को । पालण नाम प्रीयोग ।

(१५६)

निरखि भुयगमनाथ, रसिया विखिया रोगिया
हरि ग्रहि छडे न हाथ, वदे वसदेरावउत

(१५७)

तो पायै त्रीलोई, माहव मुन मोरां तणी
क्सिन न जाण कोइ, वेदन वसदेरावउत

(१५८)

घर चक्र कर धाइ, आप उवेळण आपणा
किसन न बीजी काइ, वाहर वसदेरावउत

(१५९)

त्रिपा कर करतार, दामोदर दासा तणी
सामि सवाहणहार, वासो वसदेरावउत

(१६०)

हू आयौ भव हारि श्रीवरजु तु सभारि लै
मौडौ चरण मुरारि वेगौ वसदेरावउत

---

१५६ भुयगम नाथ — विष्णु । विखिया — विषयी । रोगिया — रोगी । हरि ग्रहि छडे न हाथ — जिसका हाथ एक बार हरि ग्रहण कर लते हैं, फिर उसे नहीं छोडते है ।

१५७ तो पाय = तेरे चरणों मे । त्रीलोइ — त्रिलोक । मुन मोरा तणी — मेरे मन की ।

१५८ उवेलण — सहायता करने । वाहर — कष्ट मे सहायतार्थ चढ़ना ।

१५९ सामि — स्वामी । सवाहणहार — सभालने वाला ।

१६० मौडौ — देर से । वगा — शीघ्र ।

पाठांतर—

१५६ हरि ग्राह छडै हाथ ।
१५७ जो पावै त्रीलोइ । मन मोरा तणी ।
१५८ आप वण काज आपरा ।
१५९ दामोदरदासा तणी । सामी निरजणहार । मोहिम वसन्दरावउत ।
१६ श्रीवर म्हन समारियै । मोड़ो सरणि मुरारि ।

(१६१)

काटा कळिजुग काह, वाटा लूटाणो विमम
नाता नाम तणाह, ग्रविया वसदेरावउत

(१६२)

सिरि तुळछी गळि सूत, तोरो ध्रम राजा तणो
देख टळिया दूत वानो वसदरावउत

(१६३)

पति ज तू परमेस, सब दीहे ही सपज
लागै तिह लवलेस, विपत न वसदेरावउत

(१६४)

सरणै नद किसोर, ग्राया सतन सुर ग्रसुर
चीतै तीह न चोर वाध न वसदेरावउत

(१६५)

दीह देव पति दास, पनग ग्रसुर प पाधर
विसन न इते वणास, वाके वसदेरावउत

---

१६१ काह — कै। काटा — रास्ते में। विसम — विपम। नाता — रिश्ता, सबध। ग्रविया — कहा गया।

१६२ गळि — गले मे। सूत — जनेऊ, माला। ध्रम — धम। टळिया — टल गये। दूत — यमदूत। वानो — वेश।

१६३ लवलेस — अत्यन्त अल्पमात्रा। सपज — प्राप्त करते हैं। सब दीहे ही — सबकाल में।

१६४ चीतै — याद करते हैं। तीह — तुझे। चोर — दुप्टगण।

१६५ पनग — पन्नग, सप। पाधर — सीधे। वणास — विनाश। वाकै — टेढे प्रतिकूल। दीह — दिन (भाग्य)।

पाठांतर—

१६१ कटक कटको विसव। विसन। तणोह। वकियो।
१६२ तुलसी तोरो धम। दहा टलिया। वानै।
१६३ सबंहीहे संपजै संपति, सब हा दिन संपज संपति। लागै तेहन लस। विपती।
१६४ तेह ताह।
१६५ देह देव पतिदास। पनग। विस नही न विनास। बांकउ।

(१६६)

आय इणि अवतारि, वाया नह जपिया विसन
सु जु रुना ससारि, विडिय वसदेरावउत

(१६७)

जे हरि मदिर जाइ, केसव ची न सुणी कथा
नगरे काठी न्याय, वेच वसदेरावउत

(१६८)

दडवत करे दुवार, नरे जु उर घसिया नही
ते सिरजिया ससार, विसहरि वसदेरावउत

(१६९)

पाये घणे पिग्राह, लहवी लोकाइ तणी
अंक न ओळगियाह, वाकिम वसदेरावउत

(१७०)

मोर मुगट वन माळ, वेत चीत घरि घात वन
वेण वखाण विसाळ, वाहरत वसदेरावउत

(१७१)

मुच विचि मातो कीच जळ काजळ भेळा हुआ
वसीयो हियडा वीच, रसियो वसदेरावउत

---

१६६ वाया — उत्पन्न किये (ग्रच्छे कम किये)। वाचा। रुना — रोये। विडिय — नष्ट होते हैं। सु जु — वे।

१६७ ची — की। नगरे काठी न्याय — नगर-काष्ठ न्याय, एक दृष्टान्त वाक्य।

१६८ सिरजिया — सृजन किया। विसहरि — सप।

१६९ पिग्राह — प्रयास पान किया। लहवी — ग्रानद। लोकाइ — समार से सबधित। ग्रोळगियाह — स्तुति की। वाकिम — प्रतिकूल, बाँका।

१७० वेत — वेत्र। घात — खाते हैं। वाहरत — रक्षा करने वो। वेण — मुरली।

१७१ मातो — ग्रधिक। कीच — कीचड।

पाठान्तर—

१६६ वाचा। सुवि। विडिये।

१६९ प्रिग्राह। साहवो।

१७० विहूरत।

(१७२)

अधिका गुळ अजवाणि, सोधीणा लाडू सखर
उमगि जसोदा आणि, वाट वसदेरावउत

(१७३)

हरि डोली इक वार, लाजता लीधी नही
मसकै काइ कहार, वहतो वसदेरावउत

(१७४)

हरि डोली हिक वार हर करि हल्लावी नही
सिरजिया से ससार, वणकर वसदेरावउत

(१७५)

लाग नही लिगार, तनु टाची पातिक तणी
आडो तू ओदार, वडफर वसदेरावउत

(१७६)

रज्या राख तणेह पागुरणे आठे पहर
पदमणि से परणेह रमसी वसदेरावउत

---

१७२ अजवाणि – अजवायन साधीणा – पौष्टिक पाक। सखर – सुन्दर, स्वादिष्ट। वाट – बांटती है। आणि – ला करके।

१७३ मसक – दुख होता है। काइ – क्या। लाजता – शरमाते हुए। वहतो – चलता हुआ।

१७४ हल्लावी नहीं – उठाई नही। उठाकर चलाया नही। हिक वार – एक वार। हर करि – उमग के साथ। वणकर – बुनकर। स – उ है।

१७५ लिगार – थोडा सा भी। टाची – चोट, प्रहार। ओदार – उदारमना। वडफर – ढाल।

१७६ रज्या – रग गये, मिल गये। पांगुरणे – वस्त्र आदि से। आठे – आठो। परणेह – विवाह किया। रमसी – क्रीडा करेंगे।

पाठान्तर—

१७२ सधाणा। वांटत।
१७३ हिकवार। लाजै तू।
१७४ सह सरज्या।
१७५ पातगि।
१७६ पगुरणि आठू पहोर

(१७७)

मिळो नद घरि मेळि, दसूठण आलम दुनी
कवळ रही ज केळि, विस्तर वसदेरावउत

(१७८)

दासी कंस दुवारि, कुछित रूप कूबडी
कीधी राज कुंवारि, रीझे वसदरावउत

(१७९)

कर साथरा करेह, विण साथै वसिया वन
घेरिया घणे जणेह, रहिस वसदेरावउत

(१८०)

झालरि रो झणकार, श्रवणे साभळियो नहीं
अजगर रै अवतार, वहिसै वसदेरावउत

(१८१)

जिण घरि हेक जणोह, एकार न कहै अनंत
ते जाण तब तणोह, वाडो वसदेरावउत

---

१७७ दसूठण = दसोठन पर किया जाने वाला भोजन समारम्भ। आलम = (१) ईश्वर, (२) ससार। कवळ = द्वार पर। केळि = कदली। विस्तर रही = फली हुई, फल रही है।

१७८ कुछित = कुत्सित। कूबडी = कूबड वाली, कुब्जा। रीझे = प्रसन्न होकर।

१७९ साथरा = १ घास का बिछौना, शव समूह। रहिस = नाश कर दिया।

१८० झालरि = घंटा। झणकार = झनकार ध्वनि। श्रवणे = कानो से। साभळियो = सुना।

१८१ हेक = अेक। जणोह = जन। एकार = अेक बार। तब = बल। वाडो = कांटों की वाड से घिरा हुआ स्थान, बाडा, पशु शाला। जाण = मानो।

पाठान्तर—

१७८ जऊँ घरीयां घणा जणेंह। रहचै।

१७९ बसहे वसिस।

१८१ जाण तब तणोह।

(१८२)

गोविंद जिण गोवाडि, कीज नही तोरी कथा
रखिय ताहि उजाड, वसती वसदेरावउत

(१८३)

गोविंद हू गोलाम केसवराय ताहरो करूं
नित समरिस हरि नाम, रिदय त वसदेरावउत

---

१८२ गोवाडि – वश, गली । उजाड – निजन ।

१८३ हू – म । ताहरो – तेरा । गोलाम – गुलाम दास । समरिस – सुमिरण करूंगा । रिदय – हृदय ।

पाठांतर—

१८२ थारी कथा ।

१८३ थारो कर ।

दसरथदेवउत

रा

दूहा

दसरथदेवउत रा दूहा

अपने जीवन के अंतिम समय तक अकबर के विश्वासपात्र सेनापति रहते हुये भी ऐसा प्रतीत होता है कि वे तन से युद्धों का संचालन अवश्य कर रहे थे, पर मन से उन्हें संसार से विरक्ति हो गई थी वे अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में निरंतर प्रभु भक्ति में लीन रहे, अतएव उनके दैनिक कार्यकलापों पर भक्ति का व्यापक प्रभाव पड़ा व अधिकाधिक सरल चित्त बनते गये और परिणाम स्वरूप इनकी उत्तर कालीन रचनाओं में अपेक्षाकृत सारल्य है और वे भक्ति रस से लबालब हैं इनमें वेलि सी क्लिष्टता रूपी दुर्गम चढाई न होकर सरलता का सपाट मैदान है, जिसे सामान्यजन अनायास ही समझ सकता है

'दसरथदेवउत रा दूहा' अर्थात राजा दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्रजी की स्तुति में कहे गये चौवन दोहे हमें अद्यावधि उपलब्ध हैं कवि ने इन दोहों में भगवान राम के जीवन की अनुपम घटनाओं में से कुछ को दोहाबद्ध किया है राम जन्म का मास, पक्ष और तिथि बतलाते हुये कवि कहता है कि संतों का उद्धार करने के लिये ही सब समर्थ भगवान राम ने अवतार लिया है—

> नमि अवतरियउ नाथ चैत्रमासि पखि चादण ।
> संत ऊधरण समाथ, दुपहरि दसरथदेवउत ।।

माता कौशल्या के आंगन में श्याम-कमल सी आभा वाला बालक दिन प्रति-दिन लावण्य गुण और वय में बढ़ता गया और एक समय ऐसा आया कि अयोध्या के सिंहासन पर आरूढ होने के बदले लक्ष्मण और सीता सहित वन को चले गये तथा वहीं गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या का उद्धार किया—

> शिला परसि पग श्याम, अज प्राणदयण ऊधरी ।
> रिप गौतम ची वाम, देता दसरथदेव उत ।।

यह बात पवन वेग से सारे जगत में प्रसारित हो गई और जैसे ही गंगा पार करने के लिये घाट पर खड़े होकर जब भगवान केवट से विनती करने लगे तो बिचारा केवट घबरा गया उसने दीनता भरे शब्दों में कहा कि यदि मेरी छोटी नैया, जिस पर मेरा सारा परिवार आधारित है, स्त्री बन गई तो मैं अपने कुटुम्ब की भूखजन्य पीड़ा का आपके सामने क्या वर्णन करूं—

माहरी वेडी माहि, हरि ज शिलावाळी हुइ ।
कुटुम्ब क्षुधा दुख काहि, दाखा दसरथदेवउत ।।

भगवान राम के बार-बार कहने पर उसकी घबराहट और बढ गई बिचारा केवट असमजस मे पड गया और अपनी नाव लाने म हिचकिचाने लगा पर सब समय भगवान केवट की द्विधा को चुपचाप देख भर रहे थे—

सिल ऊधरती सारि, नाण भीवर नाव ल ।
महिमा चलण मुरारि, देख दसरथदेवउत ।।

इसी घटना का चित्र तुलसीदासजी ने भी कवितावली मे अकित किया है अ तर केवल इतना ही है कि जहा तुलसी का केवट अपने विचारो पर अडिग रहता है वहा पृथ्वीराज का केवट अधिक आग्रही नही है

घनाक्षरी छद मे तुलसीदासजी न ब्रज भाषा मे इस चित्र का इस प्रकार अकित किया है—

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछु वेद न पढाइहो।
सब परिवार मेरो याहि लागि, राजा जू ! हौं
दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढाइहौं ?
गौतम की घरनी ज्यो तरनी तरगी मेरी,
प्रभु सो निषाद ह्व क बाद न बढाइहौं।
तुलसी के ईस राम ! रावरे सो साची कहौं,
बिना पग धोय नाथ नाव न चढाइहो ।।

तुलसी का उपयुक्त छद जहाँ व्याख्यात्मक है वहाँ पृथ्वीराज ने दोह जस छोटे छद मे गागर मे सागर भर दिया है

अजामिल, गज गणिकादिक जसे भक्ता का भी उद्धार करने वाले राम तो बडे कृपालु हैं वे भक्ता के कष्टों को सहन नही कर सकते और इसीलिय उनकी आत पुकार सुन कर क्षणभर की भी देरी किये बिना सहायताथ दौडे आते हैं—

रहै नही रघुराइ साहुळि मर्भळ्ये स्रवणि
तू सेवगा सहाइ दौड दसरथदेवउत ।।

सर्वशक्तिमान और सर्वान्तर्यामी परमात्मा क सिवाय इस ससार ससार म कोई भी तो ऐसा नहीं है जिस पर आधार रखा जा सके ? ए सुधानिधि राम अपन भक्तों के प्रेम के वश मे होकर और अनुमा का सागार कर, ससार क अपरिमित दुखा मे उनका त्राण करते हैं—

प सेवगा प्रमेस सदा सुधानिधि सारिखो ।
राम दईतां रेसि दारण दसरथदेवउत ।।
सत्रहरा सधारि, त्रिभुवन तू वड श्रीकमा ।
इवडो को आधार दासा दसरथदेवउत ।।

पृथ्वीराज ने राम नाम की महिमा का वणन करते हुये कहा है कि जो नाम की महिमा को जान गया है उसके समस्त सकट नाश हो जाते हैं—

राघव रघुपति राम, सीतावर सारगधर ।
नासै आया नाम, दोरिम दसरथदेवउत ।।

अहकार, भक्ति बाधक होन के साथ साथ मनुष्य के घारतम पतन का कारण होता है, अतएव इसके निवारण की ओर ही हम अभिमुख होना चाहिये 'अहकार तो राजा रावण का भी न रहा' उक्ति को लक्ष्य कर ही कवि ने कहा कि अपार शक्तिशाली दुर्जेय रावण जब सीता का हरण कर अहकारवश हँसा तो उसे अपनी पराजय के फलस्वरूप दाँतो मे तिनका लेना पडा—

जुगपति रामण जेह, हसियो करि सीता हरण ।
त्रिण लीधो ए तेह, दात दसरथदेवउत ।।

इतना ही नही, न तो वह स्वय की रक्षा कर सका और न अपने परिवार तथा अनुचरो की महाबली रावण के दसकध कट गये और उसकी वैभवपूण स्वणमयी लका का सवनाश हो गया रावण रूपी आकाश मे आच्छादित पाप रूपी घटाओ मे भगवान राम की तलवार बिजली बन कर चमकी—

करि अबहर कराग्नि, घर रामण मीतरि घटा ।
गिवी तुहारइ खागि, दामणि दसरथदेवउत ।।

और जब पाप रूपी अधकार की काली घटाएँ समाप्त हो गइ और सूयवशी राम (दिनकर) प्रकाशित हुआ तो पाप और पापी के छिपने का कोई स्थान ही शेष न रहा—

तुक जु किरणा लाकि सरण तो आगा असुर ।
रावण मक्यो राखि दिणियर दसरथदेवउत ।।

अत म कवि कहता है कि मरा अपना क्या है जिसके लिय मैं गव कर सकता हूँ सभी वस्तुएँ भगवान की ही ह और उसी को समर्पित है त्वदीय वस्तु गोविंदम् त्वदीय शरणम् की भावना स अभिभूत होकर वह अत्य त विनम्रता स कहता है कि मेरे ये सारे छद (दूहा गाथा, कवित्त, गीत) आदि ह प्रभु ! आपको ही समर्पित हैं और क्योंकि वे आपको समर्पित हैं, इसलिये वे भी पवित्र हो गये—

प्रभु ताई थिया प्रवीत जाइ समरपिया सखधर ।
गाह, कवित्त छद, गीत, दूहा दसरथदेवउत ।।

और अत म कवि आत्मश्रद्धा के साथ व्यक्त करता है कि सबका तारनहार भगवान मुझ जसे डूबते हुओ का उद्धार कर मेरी जीवन नया अवश्य पार लगा देंगे-

इवडा गिरिवर आप हाल बेडा डइ हुव ।
बोड तार वाप, दाय दसरथदेवउत ।।

चौवन दोहो मे श्री राम मे सबधित घटनाओ और राम नाम के माहात्म्य का जो मनोहारी वणन किया है वह राजस्थानी भक्ति साहित्य को कवि द्वारा प्रदत्त चिरस्थायी योगदान है

दसरथदेवउत रा दूहा

(१)

पिंड ब्रहमंड पळोइ, क्रम पासा जुग सारि करि
केसव भूलउ कोइ, दाव न दसरथदेवउत

(२)

जग गूडी जगनाथ, भूधर जे बाधी भमइ
हरि ! मावसि तू हाथ, दोरी दसरथदेवउत

(३)

नमि ग्रवतरियउ नाथ, चत्र मासि पखि चादण
सत ऊधरण समाथ, दुपहरि दसरथदेवउत

(४)

सुंदर स्याम सरीर ग्रब कउसिल्य ग्रागण
वाधण लागउ वीर दिनि दिनि दसरथदेवउत

---

१ पिड – शरीर । पळोइ – फलाकर, देखकर । क्रम – कर्म । पासा – चौसर की गोटी । क्रम पासा – शुभाशुभ कर्म रूपी चौसर का खेल । सारि – जुआ खेलने का पासा । जुग सारि – द्विपक्षी (शुभ अशुभ) कर्म रूपी सारी ।

२ गूडी – पतग । बाधी – बंधी हुई । भमइ – चक्र खाती है । मावसि – धारण की हुई । दोरी – डोरी, डोर ।

३ नमि – नौमि तिथि । सत ऊधरण – सतो का उद्धार करने के लिए । समाथ – समर्थ । दुपहरि – दोपहर को ।

४ ग्रब – माता । कउसिल्या – कौशल्या । ग्रागण – आंगन मे । वाधण – बढने । दिनि दिनि – दिन प्रतिदिन ।

पाठांतर—

२ धावसि तो हाथ ।
३ उधरण सत समाथ ।
४ दिन दिन ।

(५)

बळ तू बळ बळिवत, किय भजिवा पिनाक कजि
अं तोलिया अनत, दिगजै दसरथदेवउत

(६)

परठ पाट प्रवीत, बैठा सिखर बधियै
सोहै दुलहणि सीत, दूलह दसरथदेवउत

(७)

मोडै धनख महस पै पाळै परणी परम
पज जाक परमस, दुहिता दसरथदेवउत

(८)

सिला परसि पग स्याम, अज आणदघण ऊधरी
रिख गोतम ची राम, देतां दसरथदेवउत

(९)

सिल ऊधरती सारि, नाठो भीवर नाव नै
महिमा चलण मुरारि, देख दसरथदेवउत

---

५ भजिवा = तोड़ने के लिए। कजि = लिये । तोलिया = तोल किया ।
दिगजै = दिग्गजों को ।

६ परठ = प्रतिष्ठित किया । पाट = सिंहासन । प्रवीत = पवित्र । सिखरै = शीष मे (मौर) । सीत = सीताजी ।

७ मोड = मोड दिया, तोड दिया । धनख = धनुष । प = १ प्रतिष्ठा २ प्रतिज्ञा । पज = प्रतिज्ञा । परणी परम = परम शक्ति रूपा सीताजी को ब्याहा ।

८ घण = पत्नी, स्त्री । ऊधरी = उद्धार किया । रिख = ऋषि । देतां = देकर के, स्पर्श करके ।

९ सारि = सुन करके । नाठो = भाग गया । भीवर = धीवर । चलण = चरण ।

पाठांतर—

६ सेहरो बधिय ।

८ आणदघण । गोतम की राम ।

९ नाग भीवर, दखी दसरथदेवउत ।

(१०)

माहरी वेडी माहि, हरि ! जे सिल वाळी हुव
कुटव खुध्या दुग काहि दाखा दसरथदेवउत

(११)

नाम समो हरि नीर, आग ऊतरिया अनत
श्रीक्रम तो हू तीर, दूरि न दसरथदेवउत

(१२)

राजि तिरता राम, नीर कितीह्कि मात्र नइ
नर ले तिरिया नाम, दूतर दसरथदेवउत

(१३)

रहै नही रघुराइ, साहूळि सभळिय स्रवणि
तू सेवगा सहाइ, दोडै दसरथदेवउत

(१४)

बैठो तू अणबीह, प्रसयानै परमेसवर
आसू अजवाळीह, दसमी दसरथदेवउत

(१५)

रामण होमण रीसि, ले चाल लका दिसै
जुधि जिक के जगदीस, दीठा दसरथदेवउत

---

१० माहरी — मेरी, अपनी । वेडी — नाव । सिल वाळी — शिला का स्त्री रूप बनने की अदभुत बात । खुध्या दुग — क्षुधाजन्य दुख । दाखा — कहू सुनाऊ ।

११ समो — समान । तो — तेरी । तीर — तट । हू — म ।

१२ तिरता — तरते हुए । कितीहिक — कितनी सी । दूतर — दुस्तर । तिरिया — तिर गये ।

१३ साहुळि — पुकार । स्रवणि — कानो से । सेवगा — सेवको की भक्तो की ।

१४ अणबीह — निडर । प्रसथान — रावण का सहार करने के लिये प्रस्थान होने को । आसू — आश्विन मास । दसमी अजवाळीह — चन्द्र पक्ष की दशमी तिथि ।

१५ रामण — रावण । होमण — होमने के लिए । रीसि — क्रोध । जुधि — युद्ध मे । दीठा — देखा ।

पाठान्तर—

१२ दुसतर ।

१५ रीछ । जुध जीतण जगदीस ।

(१६)

अति भळभळयइ अभ, दळ तोरौ देखैं करैं
प्रभु केहौ पारभ, दधि सिर दसरथदेवउत

(१७)

काइ न देखइ कत, काल्हा मदोवर कहै
ओ आवियौ अनत, दळ लइ दसरथदेवउत

(१८)

आयौ महिमा आणि, ताहरी रघु कुळ रा तिलक
पोत थयौ पाखाण, दोस दसरथदेवउत

(१९)

ज्या बूडण चौ वग तोई सिल तार तर
सुजि तोर श्रीरग दाखणि दसरथदेवउत

(२०)

इवडा गिरवर आप, हाल बेडा डड हुव
बोडै तार बाप, दाय दसरथदेवउत

(२१)

हरि अे तोरी हीर रीछे रावस माहि रिण
वानरि खाजइ वीर, दाणव दसरथदेवउत

---

१६ भळभळयइ = १ डरता है, २ क्रोधित होता है। अभ = पानी, समुद्र। पारभ = (१) प्रारभ (२) आक्रमण। दधि सिर = समुद्र पर।

१७ काल्हा = पागल। मदोवर = मदोदरी। ओ = यह। अनत = श्रीराम।

१८ ताहरी = तरी। थयौ = हुआ। पाखाण = पाषाण, पत्थर। पोत = जहाज।

१९ ज्या = जहाँ। बूडण = डूबने का। चौ = का। वग = ढग। सुजि = वही। श्रीरग = लक्ष्मीपति राम। दाखणि = देखने से ही।

२० इवडा = ऐसे। हाल = चलना, हिलना। बेडा डड = नाव। बोडै तार = डूबे हुए को तारना। बाप = पिता। दाय = इच्छा से।

२१ हीर = १ सहायता, २ शक्ति। खाजइ = मार देते हैं। दाणव = दानव।

पाठान्तर—

१८ पोत भयौ।

१९ बूडण चौ ज्या बंग।

(२२)

प्रणत करता प्राळि वानर पइ विहुडाविया
सै रावत रिण ताळि, दूणा दसरथदेवउत

(२३)

सहिया ससमाथेह पत्रभुज करि धावी चकर
मारी प्ररि माथेह दळिया दसरथदेवउत

(२४)

करि मगळ करिमाळि, पौरिस पडगरियइ पमण
तर राखस रणताळि, दहिया दसरथदेवउत

(२५)

करि एकणि कर काप, धरियौ बिय देखैं धनख
धाका फाटा बाप, दइता दसरथदेवउत

(२६)

करि प्रवहर कराणि घर रामण भीतरि घटा
खिवी सुहारद खागि, दामणि दसरथदेवउत

---

२२ प्रणत – प्रनत श्रीराम । करतां – करते हुए । प्राळि – खेल युद्ध । पइ – चक्र । विहुडाविया – डराये । रावत – राजा । रिण ताळि – १ युद्ध, २ युद्ध भेत्र ।

२३ सहिया – सहन किया । ससमाथेह – सुसमथ । चकर – चक्र । दळिया – दलन किया ।

२४ मगळ – अग्नि । करिमाळि – तलवार । पौरिस – साहस, शक्ति । पमण – १ पवन २ पकड कर । पडगरियइ – नाश करते हैं । राखस – राक्षस । रणताळि – युद्ध ।

२५ करि एकण – एक हाथ से । काप – तोड दिया । बिय – दूसरे से । धाका फाटा – भौंचक्के रह गये । दइता – दैत्यो के ।

२६ प्रवहर – बादल । कराणि – १ तलवार २ हाथों से । खिवी – चमक गई । खागि – तलवार से । दामणि – दामिनी बिजली ।

पाठांतर—

२४ किरमाल ।

२६ कराळि ।

(२२)

अणत करता आळि वानर पइ विहडाविया
तैं रावत रिण ताळि, दूणा दसरथदेवउत

(२३)

सहिया ससमायेह चत्रभुज करि चाकी चक्कर
मारी अरि मायेह दळिया दसरथदेवउत

(२४)

करि मगळ करिमाळि, पौरिस पडगरियइ पमण
तर राखस रणताळि, दहिया दसरथदेवउत

(२५)

करि एकणि कर काप, धरियौ बिय देख धनख
थाका फाटा बाप, दइता दसरथदेवउत

(२६)

करि अवहर करागि घर रामण भीतरि घटा
खिवी सुहारइ खागि, दामणि दसरथदेवउत

---

२२ अणत — अनत श्रीराम। करता — करते हुए। आळि — खेल युद्ध। पइ — चक्र। विहडाविया — डराये। रावत — राजा। रिण ताळि — १ युद्ध, २ युद्ध भेष।

२३ सहिया — सहन किया। ससमायेह — सुसमथ। चक्कर — चक्र। दळिया — दलन किया।

२४ मगळ — अग्नि। करिमाळि — तलवार। पौरिस — साहस, शक्ति। पमण — १ पवन २ पकड कर। पडगरियइ — नाश करते हैं। राखस — राक्षस। रणताळि — युद्ध।

२५ करि एकण — एक हाथ से। काप — तोड दिया। बिय — दूसरे से। थाका फाटा — भौंचक्के रह गये। दइता — दत्या के।

२६ अवहर — बादल। करागि — १ तलवार २ हाथों से। खिवी — चमक गई। खागि — तलवार से। दामणि — दामिनी बिजली।

पाठांतर—

२४ किरमाल।

२६ कराळि।

(१६)

अति भळभळयइ अभ, दळ तोरौ देखँ करै
प्रभु केहो पारभ, दधि सिर दसरथदेवउत

(१७)

काइ न देखइ कत, काल्हा मदोवर कहै
ओ आवियो अनत, दळ लइ दसरथदेवउत

(१८)

आयौ महिमा आणि, ताहरी रघु कुळ रा तिलक
पोत थयौ पाखाण, दीसँ दसरथदेवउत

(१९)

ज्या बूडण चौ वग तोई सिल तार तरै
सुजि तोर श्रीरग दाखणि दसरथदेवउत

(२०)

इवडा गिरवर आप, हालै वेडा डड हुव
बोडँ तार बाप, दायँ दसरथदेवउत

(२१)

हरि अे तोरी हीर रीछे राक्स माहि रिण
वानरि खाजइ वीर, दाणव दसरथदेवउत

---

१६ भळभळयइ = १ डरता है, २ क्रोधित होता है। अभ = पानी, समुद्र। पारभ = (१) प्रारभ (२) आक्रमण। दधि सिर = समुद्र पर।

१७ काल्हा = पागल। मदोवर = मदोदरी। ओ = यह। अनत = श्रीराम।

१८ ताहरी = तेरी। थयो = हुआ। पाखाण = पाषाण, पत्थर। पोत = जहाज।

१९ ज्या = जहाँ। बूडण = डूबने का। चौ = का। वग = ढग। सुजि = वही। श्रीरग = लक्ष्मीपति राम। दाखणि = देखने से ही।

२० इवडा = ऐसे। हालै = चलना, हिलना। वेडा डड = नाव। बोडँ तार = डूबे हुए को तारना। बाप = पिता। दाय = इच्छा से।

२१ हीर = १ सहायता, २ शक्ति। खाजइ = मार देते हैं। दाणव = दानव।

पाठान्तर—

१८ पोत भयो।

१९ बूडण चो ज्या वग।

(२२)

अणत करता आळि वानर पइ विहडाविया
तैं रावत रिण ताळि, दूणा दसरथदेवउत

(२३)

सहिया ससमाथेह चत्रभुज करि चाकी चकर
मारी अरि माथेह दळिया दसरथदेवउत

(२४)

करि मगळ करिमाळि, पौरिस पडगरियइ पमण
तर राखस रणताळि, दहिया दसरथदेवउत

(२५)

करि एकणि कर काप, धरियौ बिय देख घनख
थाका फाटा बाप, दइता दसरथदेवउत

(२६)

करि अबहर करागि धर रामण भीतरि घटा
खिवी सुहारइ खागि, दामणि दसरथदेवउत

---

२२ अणत – अनत श्रीराम । करता – करते हुए । आळि – खेल, युद्ध । पइ – चक्र । विहडाविया – डराये । रावत – राजा । रिण ताळि – १ युद्ध, २ युद्ध श्रेत्र ।

२३ सहिया – सहन किया । ससमाथेह – सुसमथ । चकर – चक्र । दळिया – दलन किया ।

२४ मगळ – अग्नि । करिमाळि – तलवार । पौरिस – साहस, शक्ति । पमण – १ पवन २ पकड कर । पडगरियइ – नाश करते हैं । राखस – राक्षस । रणताळि – युद्ध ।

२५ करि एकण – एक हाथ से । काप – तोड दिया । बिय – दूसरे से । थाका फाटा – भौंचक्के रह गये । दइता – दैत्या के ।

२६ अबहर – बादल । करागि – १ तलवार २ हाथो से । खिवी – चमक गई । खागि – तलवार से । दामणि – दामिनी बिजली ।

पाठांतर—
२४ किरमाल ।
२६ करालि ।

(२७)

रण कीधो श्रीरंग, करि वाटी खग झाळि करि
प्रजळइ प्रसण पतंग, दीपक दसरथदेवउत

(२८)

लुक जु किरणा लाखि, सरण तो आगा असुर
रावण सकियौ राखि दिणियर दसरथदेवउत

(२९)

केसव छेद कथ, सरि एकण वाहर श्रिया
विहू त्रिहू वळि वध, दूणा दसरथदेवउत

(३०)

वळि बधण बाणेह, पइ पाड पूजी परम
दससिर दससिर केह, दस दिसि दसरथदेवउत

(३१)

जुगपति रामण जेह हसियौ करि सीता हरण
तण ए पडियौ तेह दात दसरथदेवउत

---

२७ वाटी = बत्ती। खग झाळि = खग रूपी ज्वाला। प्रसण पतंग = शत्रु रूपी पतंग। प्रजळइ = जल जाते हैं।

२८ लुकै = छिप जाते हैं। किरणा लाखि = सूर्य। आगा = सम्मुख। असुर = रावण। दिणियर = सूर्य।

२९ कथ = कथा। श्रिया = सीता। सरि एकण = एक ही बाण से। वाहर = लौटाने के लिये।

३० वळि बधण = वामन रूप धर कर बलि को बंधन में डालने वाले हे श्रीराम! बाणेह = बाणों से। पइ पाडै = शत्रु का विनाश करके। दससिर केह = रावण के। पूजी परम = सीता को प्राप्त किया।

३१ जेह = जो। हसियौ = हँसा। तण = तृण। तेह = जिसके। दात = दांतों में।

पाठान्तर—

२७ खग झाळि करि।

३१ त्रिण लीधो ए तेह।

(३२)

पइ पाडइ परमेस, पिंडि गिणि गिणि पडियाळगे
लग गुदडी लवेस, डाढा दसरथदेवउत

(३३)

कै भज दहकध, लका गयि लकाळ जिम
तू बठौ बळि-वध, दावहि दसरथदेवउत

(३४)

साची माहि ससारि ताहर श्रेकणि श्रीवमा
मुखि मूछा मे मारि, दाढी दसरथदेवउत

(३५)

रामण मत तू रेस हेकणि बभीखण हुवउ
सुत वाटत सोमेस, दससिर दसरथदेवउत

(३६)

रोया लाभ राज, रजा तुम्हार रामचद
इवडउ कोइ न श्राज, दूजौ दसरथदेवउत

(३७)

श्रजोधिया श्रणपार, तोरण श्रागम ताहर
मंडिजै मगळचार द्वार दसरथदेवउत

---

३२ पिंडि = युद्ध मे । पडियाळगे = खडगा द्वारा । गुदडी = गुद्दी, गरदन । लवेस = लकेश, रावण । डाढा = दाढो मे ।

३३ दहकध = रावण । लकाळ = योद्धा । जिम = उसी प्रकार । दावहि = श्रधिकार स ।

३५ रेस = १ नाश २ गव । हेकणि = एक वार । बभीखण = विभीषण । सोमेस = महादेव ।

३६ रोया = रोने स । लाभै = प्राप्त होता है । रजा = श्राज्ञा, कृपा । इवडउ = ऐसा । दूजो = श्रन्य ।

३७ श्रणपार = श्रसख्य । श्रागम = स्वागत । श्रागे मडिजै = रचे जाते हैं शोभित हैं । मगळाचार = उत्सव । द्वार = द्वार पर ।

पाठान्तर—

३२ दाढां ।

३४ हेकणि , मेमारि ।

३७ आजोध्या ।

(३८)

आस न जाई तेह, श्रीक्रम घर भगता तणा
माह्व वूठा मेह, दूधे दसरथदेवउत

(३९)

पँ सेवगा प्रमेस सदा सुधानिधि सारिखौ
राम दइता रेसि, दारण दसरथदेवउत

(४०)

सत्रहरा सघारि, त्रिभुवन तू वड श्रीकमा
को इवडौ आधार, दासा दसरथदेवउत

(४१)

निज कौसिल्या नद, धाता करता सखधर
माता पिता मुकुद, दाता दसरथदेवउत

(४२)

राघव रघपति राम, सीतावर सारगधर
नासै आया नाम, दोरिम दसरथदेवउत

(४३)

गिरि महले पुरि ग्रामि मारगि जळ थळ माहर
सरण विदेस सामि, देस दसरथदेवउत

---

३८ माह्व = माधव । दूधे वूठा मेह् = दूध की वर्षा हुई अर्थात् अत्यत शुभ प्रसग उपस्थित हुआ ।

३९ प = पर, ऊपर । प्रमेस = परमेश्वर । सारिखौ = एक समान । दईता = दैत्यो का । रेसि = नाश किया । दारण = दारुण भयकर ।

४० सत्रहरा = शत्रुओ को । वड = बडा । दासां = सेवको को, भक्तो को । इवडो = १ ऐसा, २ इतना ।

४१ धाता = रक्षक पालक, २ विष्णु ३ विधाता ।

४२ सारगधर = सारग धनुष्य धारण करने वाले श्रीराम । नास = नाश होते हैं । दोरिम = सकट ।

पाठान्तर—

४० इवडो को आधार ।

(४४)

हरि तू हेकइ वार, जीहा जे जपियउ नहीं
पुणिसइ ताइ बिण पार, दे दे दसरथदेवउत

(४५)

सपेखियौ ससारि, पाळ जिहि पदमथ्थ
भीज तीह दुवारि दसरिप दसरथदेवउत

(४६)

तू दीठा थी लोइ, राम जु रळियाइत हुवा
ताइ मानव है तोइ, देवत दसरथदेवउत

(४७)

प्रभू ताइ थिया प्रवीत, जाइ समरपिया सखधर
गाह कवित छद गीत, दूहा दसरथदेवउत

(४८)

निजि कजि तजि प्रिथनाथ, भुगति थयी करता भगति
साम सय ज सक म्राथ, देही दसरथदेवउत

(४९)

दीनानाथ दयाळ, तू जोइ आधख ताहरौ
काइ अम्ह समौ क्रपाळ दख दसरथदेवउत

४४ जीहा = जीभ से । पुणिसइ = कहेगा । सतुष्ट करेगा । बिणपार = अपार ।
४५ सपेखियौ = देखा । पाळ = धारण करता है, झुकाता है । पदमथ्थ = मस्तक को चरणो मे । दसरिप=श्रीराम दशरिपु ।
४६ लोइ = लोक । रळियाइत = प्रसन्न ।
४७ प्रवीत = पवित्र । समरपिया = समर्पण किया । गाह = गाथा कथा ।
४८ निजि कजि = अपने लिये । प्रिथनाथ = पृथ्वीनाथ । भुगति = सुख । म्राथ = सर्वथा । देही = देह ।
४९ आधख = १ प्रभुत्व २ विरुद । काइ = क्या । समौ = सामने ।

पाठान्तर —

४६ रलियावत ।
४७ प्रभुवे । जहि समपिया सखधर ।
४८ निज कज । सक साथ ।
४९ की अम्हि समो त्रिपाल ।

(५०)

जग नाइक जग जाइ, दाणव दळवळ दाखता
तो दीठा खळ ताइ, दुडिया दसरथदेवउत

(५१)

राम सग्राम रमेह, त्रिगुट भ्रगुट कटक तणा
गमिया दसे गमेह, दससिर दसरथदेवउत

(५२)

जा नाखियो निराट, नाम तुमीणो नारियण
कडुवै ताहरै काट, दीसै दसरथदेवउत

(५३)

राम ज रोळवीयाह, रूठै दळ रावण तणा
सरगै साभळियाह, देवे दसरथरावउत

(५४)

गइ गइ किसन गुणेह, नर पाई नमिया नही
हाको करि हिरणेह दौडे दसरथदेवउत

---

५० जगनाइक — जगदीश्वर । दाणव — दानव । दाखता — दिखाते हुए कहते हुए । खळ — दुष्ट, पापी । दुडिया — नाश हो गये, भाग गये ।

५१ सग्रा रमेह — युद्ध करके । त्रिगुट — लका । कटक — काटा रूप रावण । भ्रगुट — सिर । दसे गमेह — दशा दिशाओ पे । गमिया — खो गए, नाश हो गये ।

५२ नाखियो — छोड दिया । निराट — बिलकुल । तुमीणो — तेरा । नारियण — नारायण । कडुव — कुटुम्ब मे । ताहर — जिसके । काट — कलक ।

५३ रोळवीयाह — नष्ट कर दिया । रूठ — रुष्ट हो करके । सरग — स्वग म ।

५४ गइ गइ — गा गा कर । गुणेह — गुणो को । नमिया नहीं — मुडे नही । हाको — पुकार । हिरणेह — हरिणो क समान । पाई — पाँवो मे ।

पाठान्तर—

५२ नाख्यो जिहा निराट । कडूव ग्यार काट । जहो कडूव काट ।

५४ गाइ राम गुणह । गाता कुहिन गुणह ।

भागीरथी-

जाह्नवी

रा

दूहा

श्री गगाजो रा दूहा

भारतीय जनता को गगा के महत्व को समझाने की आवश्यकता नही है हमारा रोम रोम उससे परिचित है फिर भी गगा हमारे देश की पावनतम सरिता है यह हमारी गरिमामय सम्यता व सस्कृति की सदियो से मूक साक्षी रही है सहस्रो वर्षों से चले आ रहे इसके अविरल प्रवाह ने भारतभूमि को सिंचित कर सस्य शामला ही नही बनाया है पर ज्ञान विज्ञान की उच्चतम उपलब्धियो का श्रेय भी इसके रमणीय व आकर्षक वातावरण का है

यह स्मतव्य है कि भारतवर्ष की अति पवित्र नदियो में भी भगवती गगा नदी की जो महिमा है, वह सबसे बढ चढ कर मानी गई है, महाभारत[1] मे पुलस्त्य तीर्थ यात्रा मे कहा गया है—

> "न गगा सदृश तीर्थ न देव केशवात्पर ।।६६।।
> यत्र गगा महाराज सदेशस्तत्तपोवनम्
> सिद्धिक्षेत्र च तज्ज्ञेय गगातीरसमाश्रितम् ।।६७।।

अर्थात् गगा के समान दूसरा तीर्थ नही है और भगवान केशव से बढ कर दूसरा देव नही है हे महाराज! जिस देश मे गगा है, गगा के तीर पर समाश्रित हो उस प्रदेश को तपोवन और सिद्धिक्षेत्र समझना चाहिये

भारत मे सहस्राब्दियो से स्त्री पुरुषो की महत्वपूर्ण कामना गगा मे स्नान करके पाप मुक्त होने की चलती आ रही है इसमे निमज्जन कर वे अपने को कृतकृत्य समझते है यही नहीं, गगा जसे तीर्थों पर जाकर स्नान, जप, हवन श्राद्ध तथा दानादि करने से, ऐसी भावना थी कि कुल के सात पुरुष तक पवित्र हो जाते है

भूगोल की दृष्टि मे इसका उद्गम हिमालय मे अवस्थित गगोत्री भले ही हो पर पौराणिक दृष्टि मे इसका मूलागम तो शेषशायी भगवान विष्णु के दाहिने पर के अँगूठे मे विजडित द्रवित मणि से है परमपावनी गगा, विष्णु शिव और पृथ्वी तीनो का भूषण है—

> माइ पाय तणउ मुरारि, तणउ कठ प्रिथमी तणउ
> तणउ सीस त्रिपुरारि, भूषण तू भागारथी।

---

१ वन पर्व अध्याय ५८

सच तो यह है कि अपवग की दात्री यह गगा स्वत प्रवाहित हो भारत भूमि मे नही आई है, इसके लिये राजा भगीरथ को घोर तपस्या करनी पडी है उनके भगीरथ प्रयत्ना के कारण ही इसका नाम भागीरथी पडा एसी गगा के महात्म्य का वणन नही किया जा सकता गीता और गगा को समकक्ष स्वीकार करते हुये पृथ्वीराज कहते हैं कि—

गगा अरु गीताह, स्रवण सुणी अर साभळी
जुग नर वे जीताह, भेदक है भागीरथी।

अन्य देवता तो प्रसन्न होने पर एक जन्म के पापो को ही दूर करते हैं, पर गगा की बात निराली है, वह तो जन्म जन्मान्तरो के विविध पापा को एक साथ ही काट देती है—

कीया पाप जिकेह जनम जनम मइ जूजूवा
तइ भजिया तिकेह, भेळा ही भागीरथी।

और जो फल अन्य तीर्थस्थानो की यात्रा करने से नही होते, जो फल अन्य देवतागण नही दे सकते केवल शुद्ध भावना से इच्छा करने पर उन्हीं फलों को गगा माता तुरत दे देती है—

अन तीरथे अघात, अन देवते न आपियै।
मात सुगति तिल मात, भावे तो भागीरथी॥

गगा मे निमज्जन की बलिहारी है उस का तो कहना ही क्या है ? वह तो जन्म मरण के सारे सासारिक बधनो से अपने भक्तो को मुक्त कर देती है—

जाइ लोग्रे लागाह माता जामण मरण की।
भव सगळा भागाह भेटइ तू भागीरथी॥

यह जानते हुये कि मनुष्य जिन सासारिक कार्यों को कर रहा है, वे असार हैं, वह उनके चित्ताकर्षक मायाजाल मे फँसता ही जाता है और अन्त मे वही मनुष्य इन सारे कर्मों स थक जाता है थक कर वह गगा की शरण मे जाता है और वही पुण्य सलिला उसे इतने भटकने के बाद चिर विश्राम देती है—

करि करि घरि घरि काम, थारइ तट थाका थिया।
वड नदि! दे विसराम, भ्रमिया बहु भागीरथी॥

जब परमात्मा रूपी सिकलीघर भी शरीर रूपी लोह मे पाप रूपी काट को नही उतार सकता तब हे गगा माता, तेरे जल म [illegible] सार पाप दूर हो जाते हैं कवि ने मौलिक उपमा से गहन अर्थ की बडी [illegible] स स्पष्ट कर

काया लागो काट, सिक्लीगर सुधर नहीं।
निरमळ होई निराट, भेट्या तू भागीरथी ।।

गगा के अद्भुत तेज का लोहा ससार मानता है प्रत्येक देवी दवना अपने अपने भक्तो का उद्धार घोर तपश्चर्या के बाद परीक्षा लेकर करते हैं, पर गगा मया तो केवल उसके पानी को मुँह मे डालने वाले के सारे पापो का नाश कर देती है—

ताहरउ अदभुत ताप, मात ससारे मानियउ।
पाणी मुहडइ पाप, जाळइ तू जाहरणवी ।।

पृथ्वीराज की इच्छा है कि उह नित्यप्रति नहाने के पश्चात् गगाजल पान करने को मिले वे सदव सुर सरिता गगा का स्मरण करते रहे, गगा के किनारे पर वास कर तपश्चर्या करने को मिले और प्रतिक्षण पतित पावनी गगा के दशन करने को मिले तो मेरा जीवन धय धय है—

न्हाये पीयू नीर समरू जपता सुरसरी।
तपत वसू तो तीर, जोता तो जाहरणवी ।।

अन्य कोई रास्ता न देख कर यह भयभीत बालक आपकी शरण मे आया है हे मा! यम के फदो को काट कर इस दास पर दया कर, इसका उद्धार कीजिये—

आया सरणि ससारि, बीहता तो बाळका।
आई! लेह उबारि, जम हूता तू जाहरणवी ।।

भागीरथी-जाह्नवी रा दूहा

(१)

हुवइ सु नामइ होई, ब्रह्म सरेसो वास तव
तू नइ श्रीकम तोइ, भेद नही भागीरथी

(२)

हरि गगा हेकार, कहइ जिके मजन कर
भू डां ही श्रम भार, भवि न हुवइ भागीरथी

(३)

मोटा पाप जिकेह, जनम जनम मइ जूजुवा
तइ भाजिया तिकेह, भेळा ही भागीरथी

(४)

कापाळि कापाळी, तीरथ सरगे ताहरइ
पटतरि पाताळि, तन भूतळि भागीरथी

---

१ हुवइ — जो होता है। नामइ — नाम के प्रभाव से। सरेसो — समान। वास — निवास। तोई — वह उस, मे।

२ मजन कर — स्नान करते हैं। भू डा ही — पापी जनो को। श्रमभार — कर्मों का बोझा। हेकार — एक बार। भवि — भविष्य म, कभी भी।

३ जूजुवा — भाँति भाँति मे। जिकेह् — जो। तिकेह् — उनको। भेळा — इकट्ठे ही। भाजिया — नाश किया।

४ कापाळी — शिव। कापाळि — कपाल (सिर) मे। सरगे — स्वग मे। ताहरइ — तेरे। पटतरि — अतर पट। भूतळि — धरातल, ससार।

पाठान्तर—

१ सरीसो।

२ हिकवार। भवे।

४ पट अतर। भूतल तन भागीरथी।

(५)

सुरसरि ! दीप सात, नवे खडे, चहुए निगम
मानीजइ तउ मात, भवण त्रिहू भागीरथी

(६)

देवो तू देवेह, जणणी करि मारइ जगति
मानी मानवियह, भुवंगे ही भागीरथी

(७)

अलक्नदा आइह, सुरधुनि गगा सुरसरी
जे जाह्नवी जीह, भोगवती भागीरथी

(८)

माइ ! पाय तणउ मुरारि, तणउ कठ प्रिथमी तणउ
तणउ सीस त्रिपुरारि, भूखण तउ भागीरथी

(९)

परि केही परिवाह, सरिखां मत अम्ह सारिखा
निज पथ रावत नाह, भागीरथ भागीरथी

---

५ दीप सात = सात द्वीप । नव खडे = नव खडो म । चहुए निगम = चारा वेद । भवण त्रिहू = तीनो लोक, त्रिभुवन मे ।

६ दवेह = देवताओ द्वारा, देवलोक म । जणणी = जननी । मानवियेह = मनुष्यो द्वारा । मानव लोक म । भुवग = नागो द्वारा । पाताल लोक मे ।

७ सुरधुनि = देवताओ की नदी गगा । भागवनी = गगा, पाताल गगा । जाह्नवी = जाह्नवी, गगा ।

८ माइ = माता । पाय = चरण । त्रिपुरारि = शिव । तणउ = के । मुरारि = विष्णु । कठ प्रिथमि = पृथ्वी कण्ठ, गगा ।

९ परि = समान । परिवाह = (१) दान (२) नातार । सरिखा = समान । रावत नाह = राजाओ का राजा महाराजा (भागीरथ) ।

पाठातर--

५ नवखडा ।
६ भमगे ।
८ भूषण तू ।
९ परि केहो ।

(१०)

तरि थाकउ तउ तारि, सरमा कउ ए सक्ळप
कछ काइ मछकाइ कारि भेक चुकाइ भागीरथी

(११)

सुरसरि वाछउ सेव, थारइ तट कीयउ थकउ
देवि न वाछउ देव, भूपति ही भागीरथी

(१२)

हीडोळी तउ हास, छत विमाण श्राव छव
श्रब लहरी उजास, भाळिस कदि भागीरथी

(१३)

जांपयौ नाम न जीह, निज जळ तन पीधौ नही
देवि त घवळइ दीह भूला ताइ भागीरथी

(१४)

न्हाये गग नवार श्रणन्हाया फळ जो श्रम्हा
सो खारी ससार, भीखारी भागीरथी

---

१० तरि थाकउ = जो ससार रूपी सागर को तर कर थक गए। सरमा = शलूष गधव की कन्या। भेक = मढक। कारि = सीमा।

११ वाछउ = कामना करता हूँ। सेव = सेवा। थारइ = तेरे ही। कीयउ थकउ = (निवास) करते हुए।

१२ हीडोळी = हिलाते हुए। हास = गले का हार। छतै विमाणै = विमानो म स्थित (देवता)। छव = शोभा। श्रब = गगा माता। भाळिस = देखूगा। कदि = कभी कब।

१३ निज = तुम्हारा। धवळइ दीह = प्रकाश वाले दिन म भी, शुभ्र दिन म।

१४ नवार = निवारण करती है। श्रणन्हायां = बिना स्नान वालो का। श्रम्हा = हमको।

पाठान्तर—

१० तू तार। कछमछ कादा कार।

११ सेव।

१२ छतउ विमाण श्राव छव। श्रद्दी है।

(१५)

नित नित नवा नवाह, मजण करता मानवी
भव टाळियो भवाह, भव कीजइ भागीरथी

(१६)

भूखण चंद भुजंग, हाये ताइ पावइ निधू
गऊ कितीकइ गंग, भडारे भागीरथी

(१७)

महि सो जळि मजताह, जहवा हुइ तहवा जणणि
इन्द्र भउ मजण ताह, भल खपउ भागीरथी

(१८)

माता माणसियाह, जाया जाणीता नही
ताहरइ मजण थयाह, भूप थया भागीरथी

(१९)

मजण छेहै मात, सहु सारीखा सुरसरी
तजिय करमे तात भला बुरा भागीरथी

(२०)

गंगा निज जळि गात, धोयै आतम धोइयै
महमा चीतइ मात, भामी हू भागीरथी

(२१)

अम्हु कीयो अनुमान, विहु जणि लिखि विरतो थयो
सुरसरि वडइ सनान, भीसळिया भागीरथी

---

१५ नवा नवाह=नये नये । टाळियो=दूर किया । भवाह=भव भव का। भव कीजइ=जन्म को साथक कीजिए ।

१६ निधू=धन, सपत्ति । कितीकइ=कितनीक । भडारे=भंडार मे ।

१७ जहवा हुइ तहवा=जसे हैं वैसे । भल=अच्छा ।

१८ माणसियाह=मनुष्यो को । जाया जाणीता नही=जन्म लेने पर भी जो प्रसिद्ध नही हुए । थयाह=हुए ।

१९ छेहै=अत मे ।

२० आतम धोइय=आत्मा को उज्जवल बनाते हैं अर्थात् आत्म ज्ञान हो जाता है । भामी=बलिहारी । चीतइ=चिंतन करके । हू=मैं ।

२१ अनुमान=निश्चय, अदाज । विहु=विधाता । विरतो=निवृत्त । वडइ सनान=मात्र स्नान करने मे । भीसळिया=नष्ट हो गये ।

पाठांतर—

२१ सुरसरि करहि सिनान ।

(२२)

समरण परिया सात, समघरिया जे सुरसरि
मजण लाभइ मात, भाग किहि भागीरथी

(२३)

तूझ सनान तोइ, माता जे लाभइ मुगति
हरि अधिकारइ होइ, भजता तइ भागीरथी

(२४)

लाखा देव लोइ, माता नह थाय मुगति
हाडे पडिय होइ, भीतरि तइ भागीरथी

(२५)

अन तीरथे अघात, अन देवने न आपिय
मात मुगति तिल-मात, भावे तो भागीरथी

(२६)

माता लाभइ माग, तूझ सनाने सुरसरी
आफळइ को आग, भरवझप भागीरथी

(२७)

अन वाटिवा अनेक, काय साधन साधा करइ
हइ हइ काणव हेक, भगत तूझ भागीरथी

---

२२ समरण=स्मरण, भक्ति। सात=सातो पदार्थ। परिया=अलग, अप्राप्त। समघरिया=सामने रक्खे हुए हैं। किहि=जिनके।

२३ तोइ=जल। लाभइ=प्राप्त होती है।

२४ लाखा=लाखों। लोइ=लोक। हाडे पडिय होइ=गंगा में अस्थि विसर्जन करने ही से मुक्ति हो जाती है। देव=दान करते हैं। लाखा देव=लाखों का दान करने पर भी।

२५ अन=अन्य। आपिय=देते हैं। भाव=भावना से ही इच्छा करने से। तिलमात=तिलमात्र, थोडा सा।

२६ माग=मुक्ति मार्ग। आफळइ=पछाडे, नाश करे। आग=अग। भरवभप=मनवाछित प्राप्ति के लिए इष्ट आराधना स्वरूप बहुत ऊँचे से कूद कर प्राण त्यागने की क्रिया, भैरवभाप।

२७ काणव=१ न्यूनता २ महत्व।

पाठांतर—

२६ भैरवभप।

(२८)

लागी साकळि लोइ, छाटे छाटत हुइ छळी
तणी करम तण तोइ, भोळइ हुइ भागीरथी

(२९)

पथ कसट कीधाह, दान क तीरथ न्हाइ करि
लोके फळ लीधाह, भाखे तो भागीरथी

(३०)

जाइ ऊपाये अग, जाळे गाळे जोगिया
ताइ गति दीधी गग, भेळा हुइ भागीरथी

(३१)

सिध पामी तू स्रेव, माता । असुरे मानवे
दइते देवे देवि भूते ही भागीरथी

(३२)

मारग मात तणाह, उवरि जाइवा आइवा
घण मुखि वार घणाह, भागी तइ भागीरथी

(३३)

अवगाहे तू अग तन छळिये तन छेदिये
गळे जु दीजइ गग, भाजे तन भागीरथी

---

२८ साकळि=शृखला । छाटे=जल विंदु । छाटत=छाँटने से ।

२९ कसट=कष्ट । कीधाह=किये । भाखे=कहने से (नाम लेते ही) ।

३० ऊपाये=उत्पन्न किये । भेळा=मिलने से (तुझ मे) । जाळे=जला दिये । गाळे=मिटा दिये ।

३१ सिध=१ सिद्धि २ सिद्ध महात्माओ से । पामी=प्राप्त की । स्रेव=सेवा । भूत ही=भूत प्रेतादिक से ।

३२ जाइवा आइवा=आवागमन । उवरि=उदर मे, गर्भ मे ।

३३ अवगाहे=स्नान करने से । भाजे=नष्ट किये, नष्ट होने पर ।

पाठांतर—

२८ हुइवली ।
२९ भाखे ।
३० ऊपाये त्रिहि अंग जोगियां । जो गया , गति ताइ दीधी गग ।
३१ सेव ।
३२ उवरि ।
३३ छलिये मन तन छेन्दिये ।

(३४)

मिळिया उवरि न मात, जाय सु वळि जाळनळि
गिळिया माछ जु गात, भिळिया तो भागीरथी

(३५)

चद्राणणि चउरेह, आइ ज आगउ बाविजइ
तरगे तूझ तणेह, भीना जे भागीरथी

(३६)

सुख आ लाया जाह, मन सरि सुणिवा सुरधुनि
आवी आवे नाह, भावी सुख भागीरथी

(३७)

देवी दीवटियाह, आई ! आधारण तणउ
तो भजता भजताह, भव केहुउ भागीरथी

(३८)

जाइ लोग्रे लागाह, माता जामण मरण की
भव सगळा भागाह, भेटइ तू भागीरथी

(३९)

पडिया जे तू पाइ, केस ज नर का काटिवा
गगा ग्रहिया ताइ, भुजे निज भागीरथी

---

३४ जाळनळि=ज्वालानल । गिळया=निगल गये । माछ=मत्स्य, मछली ।

३५ चद्राणणि=चद्राननि । चउरेह=चारा ओर । तरगे=तरगो मे । तूझ तणेह=तेरी । भीना=भीगा (स्नान किया) ।

३६ सुरधुनि=गगा । सरि=सरिता ।

३७ दीवटियाह=दीये दीपक । आधारण=१ सहायता २ आरती । केहुउ=कैसा भी । भव=जन्म मरण का दुख ।

३८ जामण मरण=जन्म मरण । सगळा=सकल । भेटइ तू=तेरा दशन करते ही ।

३९ तू पाइ=तेरे चरणा म । केस 'काटिवा=चूडाकरण सस्कार के केश । भुजे=भुजाओ मे (तेरे जल मे) ।

पाठातर—

३४ जालानल ।

३५ आइज आँगण सांचिग्रइ ।

३८ लोए जाइ लागाह ।

३९ भुजा बीच ।

(४०)

आपो पेस आप, थारउ जण निरभय थयो
ग्रिसण सबळ जिम पाप, भीर सबळ भागीरथी

(४१)

आभी ! आडी थाइ, जमपुर जावेवा तणी
मजणहारा माइ, भोगळ तू भागीरथी

(४२)

अेक त्रि लागी पाप, अन देवते न ऊतरै
आई ! आय आप, भावी भित भागीरथी

(४३)

एक गुरड असवार एतज तउ कल ता उवरि
आइ ! आवणहार, भीड पडी भागीरथी

(४४)

तइ नीगरडा लोइ जणणी जाणेवा जठरि
हुता उ काहू होइ, भुइ अतरि भागीरथी

(४५)

आई ! आपाणाह, वाजम टाळै बालका
भणता मात भलाह भूडा ही भागीरथी

---

४० आपो=सहारा । ग्रिसण=शत्रु । थारउजण=तेरा भक्त । थयौ=हुआ । भीर=सकट ।

४१ आई=माता । आडी=कपाट । जाववा=जाने वालो के लिये । भोगळ= अगला रक्षा रूप आगल । मजणहारा=स्नान करने वालो को ।

४२ बि=दो । देवते=देवताओ से । न ऊतर=उतरता नही । लागी=लग गये । कित=कृत्य । अेक बि=अनेक ।

४३ गुरड=गरुड । गुरड असवार=विष्णु । भीड पडी= सकट पडन पर । आवणहार=आने वाला ।

४४ नीगरडा=निगुरा । जठरि=पेट । भुइ=पृथ्वी, । जाणेवा=जन्म पर ।

४५ आपाणाह=अपन । बाजम=वाजिब । बालका=बालका के (भक्तों के) भणता=याद करत ही । भूडा=दुष्टजनो को ।

पाठातर—

४४ हुता काहु होइ ।

४५ वाजप वाअब ।

(४६)

वारि मिहम ना वारि, थाका जग तू एक थिति
कीया जहनकुवारि, भेख घणा भागीरथी

(४७)

करि करि घरि घरि काम, थारइ तट थाका थिया
वड नदि ! दे विसराम, भ्रमिया बहु भागीरथी

(४८)

खीणा तन खिसियाह थाका जर जीरण थया
तू हि ज दिसि त्रिसियाह, भूखा ही भागीरथी

(४९)

गग पखाळै गात, जठर भरेवी कठि जळ
मइ क्रम कीधा सात, भसम सात भागीरथी

(५०)

मागिया मा मलियेह उवरि उदइगिरि आइवा
सुरसरि साभळियेह, भासकरइ भागीरथी

(५१)

जव तिल जितरो जाय, हेक कणूको हाड रो
मुवा पछ ही माय ! भेळ गत भागीरथी

---

४६ मिहम = महिमा । जहनकुवारि = गगा, जह्नु कन्या ।
४७ भ्रमिया = धोखे खाये । वड नदि = गगा ।
४८ खीणा = क्षीण । खिसियाह = भाग गये । जर जीरण = जरा से जीण, त्रिसियाह = प्यासे । तू हि ज दिसि = तेरी शरण मे आये ।
४९ पखाळै = प्रक्षालन करते हैं । मइ = मैं । सात क्रम = सात जन्मो के कम, अनक जन्मों के कम । भसमसात = भस्मसात् भस्मरूप ।
५० उदइगिरि = उदयाचल । भासकरइ = भास्कर को ।
५१ जव तिल = जो तिल के समान छोटा । जितरो = जितना के समान । कणूको = कण, छोटा टुकडा । हाड रो = मृतक की अस्थि का । भेळ गत = सद्गति कर देती है । मुवा पछ ही = मरने के बाद भी ।

पाठान्तर—

४६ मिहमत महीमत ।
५० माम सिएह ।

(५२)

काया लागो काट, सिकलीगर सुघर नहीं
निरमळ होइ निराट, तू भेट्या भागीरथी

(५३)

गगा ऊजळ गात, सिर सोहै सकर तणै
मुकट जटा मे मात, भळक तू भागीरथी

(५४)

गगा जळ गुटकीह, निरणै ही लीधी नही
भव भव मे भटकीह, भूत हुवा भागीरथी

(५५)

गगा ग्ररु गीताह स्रवण सुणी ग्रर साभळी
जुग नर वे जीताह, भेद वह भागीरथी

(५६)

मोडौ ग्रायौ माय, तै वेगो ही तारियौ
पडियो रहसू पाय, भाटो हुइ भागीरथी

(५७)

जाळया पुत्र जिकेह, साठ सहस सागर तणा
तै तारिया तिकेह, भेळा ही भागीरथी

---

५२ सिकलीगर = सुकृत रूपी सिकलीगर से । निराट = सर्वथा । काट = पाप रूपी जग ।

५३ भळक = चमकती है ।

५४ गुटकीह = एक घूट । निरणै = प्रात काल बिना ग्रन्न ग्रहण किए । भटकाह = भटकेगा, भटकेंगे ।

५५ जीताह = विजय प्राप्त की, ज म मरण के चक्कर स छूट गये । भेद = रहस्य ।

५६ वेगो = जल्दी । पडियो रहसू पाय = चरणो म पडा रहूँगा । भाटो हुइ = घाट का पत्थर होकर ।

५७ जाळया = जलाया । सागर तणा = सगर राजा के साठ हजार पुत्रो को । तिकेह = जिनको । भेळा ही = एक साथ ।

पाठान्तर—

५६ भागे हुई ।

(५८)

लाखा देवा लोय, मात न हू्वै भजता मुगत
हाडा पडिया होय, भीतर तोइ भागीरथी

(५९)

सरसइ सिध सपराइ, गोदावरि तू गोमती
बीजी बीजी माइ जणणी तू जाहरणवी

(६०)

अवर कुवण आणीह, सरिता तोरी तू सरिति
पइ मिळि ले प्रामीह, जमना ही जाहरणवी

(६१)

मारग आपो माइ, सातइ हुइ दीपा समद
सकइ न तू समाइ, जळनिधि हुइ जाहरणवी

(६२)

पहिलउ धोमे पाप निज निधि हुइ जीप जगत
बीजा हता बाप, तइ जीता जाहरणवी

(६३)

सिव करता सेवाह, सब ही चौमासे सुवइ
देवि मुगति दवाह, जागइ तू जाहरणवी

---

५८ न ह्व – नहीं होती है । हाडा – हड्डियो के ।

५९ सरसइ – सरस्वती । सिध – सिन्धु । सपराइ – मफरा, क्षिप्रा । बीजी बीजी – (इनके अतिरिक्त कावेरी नमदा आदि) भिन्न भिन्न रूपो मे । जणणी – जननी । जाहरणवी – जाह्नवी ।

६० कुवण – कौन (श्याम वण ?) । प्रामीह – प्राप्त हुई ।

६१ आपो – आपका । दीपा – द्वीप । समद – समुद्र ।

६२ बीजा – दूसरे । हता – ये (वध करने वाला ?)

६३ चौमासे सुवइ – चातुर्मास मे जब सब देव सो जाते है । देवाह – देने के लिये ।

पाठान्तर—

५९ सिधु सफराइ ।

(६४)

ताहरउ अदभुत ताप, मात मसारे मानियउ
पाणी मुहडइ पाप, जाळइ तू जाहरणवी

(६५)

दीपक देव खदोत, के तारा क तमीचर
अधिक अधार उदोत, जगिचख तू जाहरणवी

(६६)

माता आपी मूझ, वसणा खीराडे करे
ताहरइ सरिखउ तूझ जस ऊजळ जाहरणवी

(६७)

तइ सेवगा तणाह, कूट बीज काटे किया
आनम आपाणाह, जळ जेहा जाहरणवी

(६८)

काडी मुहि कीधाह, आई ! जे अपराध अम्ह
मात म मानेवाह, जाया मिटि जाहरणवी

(६९)

ताहरइ गग तवाह तीरथ सगळा ही तिलक
नीरा नीर नवा", जे न्हायइ जाहरणवी

---

६४ ताप = तेज, प्रताप । मुहडइ = मुँह म ।
६५ खदोत = खद्योत । तमीचर = चन्द्रमा । उदोत = प्रकाश तेज । जगिचख = सूय । के = कई । क = अथवा ।
६६ वसणा = निवास । खीराडे = तट पर (?) । जस ऊजळ = उज्वल यश ।
६७ सेवगा = सेवक, भक्त । कूट = पाप असत्य । आपाणाह जेहा = अपन समान उज्ज्वल ।
६८ कोडी = करोडो । मुहि = मैंने । (कोडी मुहि = अनेक प्रकार से ?) कीधाह = किये । आई = माता । जाया = जान से । अम्ह = हमन । म = मत नही ।
६९ तवाह = कहते हैं । तिलक = श्रेष्ठ ।

पाठान्तर—
६८ मातम ।
६९ तवाह नवाह ।

(७०)

वड नदि महिमा वारि, सुरसरि वहिवा कुण समथ
जो धारि जउ धारि, जटा मुगट जाहरणवी

(७१)

एक ज तू सक एव सब ही आछइ सुरसरी
दुहु लोके त्रिहु देवि, जुगे चहु जाहरणवी

(७२)

न्हाया थाइ अघ नास, आई घाटे औघटे
मिस्री चउ मीठास, जेही तउ जाहरणवी

(७३)

तन तीरथ त्री लोइ, देवे अवर न देवता
काटण पाप न कोइ, जा मिलि तो जाहरणवी

(७४)

माता माजता माइ, आया फळ ते आपिया
त्यागे थियइ न ताइ, जागइ थियइ न जाह्नवी

(७५)

जळ भजता जिकांइ, थारइ गंगा गति थियइ
तपइ न थायइ ताइ, जपइ न थायइ जाह्नवी

---

७० समथ = समर्थ । कुण = कौन ।
७१ सक एव = कर सकने वाली । आछइ = भलाई । लोके त्रिहु जुगे चहु = त्रिलोक में और चारों युगों (इन दोनों) में ।
७२ अघ = पाप । औघटे = (१) दुगम (२) कष्ट साध्य । थाइ = होते हैं ।
७३ अवर = अन्य । त्रीलोइ = त्रिलोक में ।
७४ आपिया = दिये । त्यागे = त्याग करने से । जागइ = यज्ञ करने से । थियइ न = नहीं होता है ।
७५ जिकाइ = जिनकी । गति थियइ = गति हो जाती है । तपइ = तपस्या करने से । जपइ = जप करने से । न थायइ = नहीं होती है ।

पाठांतर—
७३ जामलि ।
७४ मजन , आयां फल तैं आपिया ।

(७६)

सुरसरि थारइ सेवि, ताइ फळ तपै न तीरथै
दान न थायइ दवि, जोग न थायइ जाह्नवी

(७७)

तन तीरथ त्रीलोइ, मनवे दैते मानवे
जइ तउ मानी जोइ, जवनेही जाह्रणवी

(७८)

मागिया लाभ माइ, विसम प्रथम गगा विसन
निमखे नाम नियाइ, जगदीसे जाह्रणवी

(७९)

वड नदि ! दे विसराम, दीखाळै लोका दुहू
नारायण चउ नाम, जोड तइ जाह्रणवी

(८०)

देवी तमसि दीवीह, लाधी तु आधा लाकडी
निरघनिया नीवीह, जीवी तू जाह्रणवी

(८१)

कूची तरग करेह मोख तणी मोखाविया
ताळा तीरथडेह, जडिया नकि जाह्रणवी

---

७६ थारइ सेवि=तेरी सेवा करने से । तप=तप करने से । जोग न थायइ=योग साधना करने से भी प्राप्त नहीं होता है ।

७७ त्री लोइ = तीनो लोको म । जवने ही=यवनो ने भी । दते मानवे जवने ही मनवे=दैत्यो, मानवा और यवनों ने भी तेरी महिमा को माना है ।

७८ निमखे=निमिष मात्र ही । नियाइ=न्याय । लाभै=प्राप्त होता है । विसन=विष्णु ।

७९ विसराम=मुक्ति । जोड=साथ मे । दिखाळ=दिखलाती है, प्राप्त करवाती है । चउ=का ।

८० तमसि=अधेरा । दीवीह=दीवट, दीपक । लाधी=प्राप्त हुई । आधां=अधों को । नीवीह=आधार । जीवी=जीवन रूप ।

८१ कूची=चाबी । मोख=मोक्ष । मोखाविया=दिलाने वाली । करेह=बनाई । जडिया=लगे हुये, बद किये हुये ।

पाठांतर—

७६ थायइ सेवि ते फल ।

७९ नारायण वद नाम ।

(८२)

मा ब्रह्म मयगाहेह, माप लगँ लग ईसवर
मुवा ज तू माहेह, जीवाडिया जाह्नवी

(८३)

न्हाये पीयू नीर, समरू जपतां सुरसरी
तपत वसू तो तीर, जोवतां तो जाह नवी

(८४)

सुरसरि पखो सरीर, पीतां न्हातां पेखतां
तपता हुइ तो तीर, जपता हुइ जाहरणवी

(८५)

मायां ! हिरू माय, दया करँ दासां तणइ
माथा ऊपर माय, जीवाडिया जाहरणवी

(८६)

मायां सरणि ससारि बीहतां तू बाळका
माई ! तेह उबारि जम हूता तू जाहरणवी

(८७)

कीधी क्रिया करेह करतां सुणता कीरतन
तड छोरूडा छेह, जोखा हूता जाह नवी

(८८)

पुळियँ मग पुळियाह, दरस हुवां अदरस हुवा
जळ पठ जळियाह, मदाक्रम मदाकिनी

---

८२ मुवा = मरे, मृत्यु को प्राप्त हुये । माहेह = अन्दर, भीतर । जीवाडिया = अमर किये । ब्रह्म = ब्रह्म घाट, ब्रह्म कुड ।

८३ समरू = स्मरण करता हूँ । वसू = निवास करू । जोवता = देखते हुए दशन करते हुए । तपत = तपस्या करते हुए ।

८४ पेखता = देखते, दशन करते । पखो = सहारा ।

८५ मायां = माता । दासां तणइ = दासो पर । माथा = मस्तक ।

८६ बीहता = डरते हुये । हूता = से । माई = माता ।

८७ छोरडा = बालक । छेह = कष्ट, अन्त । जोखा = भय से ।

८८ पुळिय = जाने से । पुळियाह = नष्ट हो गये । अदरस = अदृश्य । जळियाह = जल गये । मदाक्रम = पाप ।

पाठान्तर—

८६ बीहता तो बालका ।

प्रकीर्णक

ईश्वर-भक्ति विषयक पद

ईश्वर भक्ति सबधी जो पद्रह पद हमे अद्यावधि उपलब्ध हुये हैं मोटे रूप से उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१	आरती विषयक पद	२	
२	करणीजी (माताजी)	१	
३	श्री राधाजी का शृगार वर्णन	१	व्रजभाषा मे
४	विवाहोत्सव पर गाया जाने वाला बधाई गीत	१	
५	सदेश पठन विषयक पद	१	
६	अन्य भक्ति पद	६	(एक पिंगल मे)

(१) आरती विषयक पद

दोनो आरती विषयक पदो मे प्रथम आरती अत्यन्त सरल है जबकि दूसरी साग रूपक लिये सुदर साहित्यिक कृति है प्रथम आरती मे विविध देवतागण अपने अपने ढग से आरती की शोभा बढा रहे हैं ब्रह्मा वेदो का उच्चारण कर रहे हैं तो नारद वीणा बजा रहे है शकरादि देवतागण जय जयकार कर रहे हैं तो सरस्वती स्तुति गा रही है इसी आरती के दूसरे छद म कवि उन सारे तीर्थस्थलो का वर्णन करता है, जिनको भगवान ने अपने चरण कमलो से पवित्र बनाया था यहाँ भूगोल वेत्ता की भाति उनके नामो को गिना कर उनकी भी आरती करने को कहता है—

> उडीस जगनाथ आरती बदरीनाथ आरती,
> वळि हरिद्वार हि आरती गगासगम आरती,
> गया अवतिहि आरती, अन रामेसर आरती,
> आरती पाणि कमळावती आरती द्वारामति,
> जिणि जिणि थानक गोविंद वस,
> तिणि तिणि ऊपर आरती ।

द्वितीय आरती एक पद्यबध रूपक है पृथ्वीराज ने एक सुकवि के लिये प्राण समा आवश्यक अक्षर, शब्द, छद, अलकार, गुण, अर्थ रसादि का मन्दिर मे बजते करताल, नगाडे और मृदग भगवान के पहिनने का मुकुट और फूलो के हार मदिर के आँगन मे चौक भरने के लिए मोती इत्यादि अनेक वस्तुओ से सुदर रूपक (परमानन्द) बाँधा है—

धुर कवियण धरहर, आगळी नट छंद अवसर ।
ऊजळे मोतियं आखर, भले गुण चवक भर ।।
दूहड़ा दमम दडीयडे, आद्दा अदग गडियड ।
भेरभह पिंगळ भडियड, रूपक श्रद रुड ।।
पुनि वेद साटक घडियड, पडसदा अथ गिर सिर पड ।
जस माइ माहव सिर जड, चवसरी माळा चड ।।
वातियां अरथ उत्तम वण घ्रत नेह सीचे घण घणे ।
बघ जोत राग प्रबघणं, करताळ थाळ भणकण ।।

(२) माताजी विषयक पद

भूतपूर्व बीकानेर राज्य की इष्ट देवी आई (करनी माता) है उनका प्रसिद्ध मंदिर देशनोक मे है यह पद आई माता के भक्तो मे अत्यन्त प्रचलित है इस पद मे देवी के आई काछराय, काछ पचाळी, सचाळी चाळक, भीभळियाळी, धाबळियाळी इत्यादि अनेक नामो का उल्लेख है इसमे कवि ने प्रार्थना की है कि सकट काल म भयभीत भक्तो का उद्धार करने वाली हे माता ! अन्य किसकी उपासना करूँ ? आप मेरी अति शीघ्र रक्षा कीजिये—

पीयळ नाहर काछ पचाळी, लाल मिळो मुझ हेकणताळी ।

(३) श्री राधाजी का श्रृंगार वर्णन

तीन षटपदियो वाले इस पद मे कवि ने भगवान श्रीकृष्ण के अत्यन्त निकट ऐसी श्री राधिकाजी के नख शिख का सर्वांग सुदर वर्णन किया है ब्रज की राधिका के अनुरूप कवि न ब्रजभाषा का ही व्यवहार किया है पारम्परिक उपमाओ के होते हुये भी इनके प्रयोग मे नवीनता दृष्टिगोचर होती है—

आनन बनी नयन बन पुनि दसन मुकटि गति ।
ससि सफिन मृग पिक अनार केहरि करानन पांत ।।

अपने पुष्ट व विकसित अवयवो वाली मदमस्त राधिकाजी बाग की ओर ऐसे चली मानो सुदरता के देवता कामदेव पर विजय प्राप्त करने चली हो—

भुँवरि नयण नासक दसन, कुच कटि जघव चरन ।
विमल बाग राधे चली मनु अनग को जय करन ।।

(४) बधाई गीत

विवाहोत्सव पर गाये जाने वाले बधाई गीत को राजस्थानी भाषा म सोहलो भी कहते है शादी के पश्चात् जब बारात लौट कर आती है तो दूल्हे और दुल्हिन

का घर के मुख्य दरवाजे पर माँ और बहिन आरती उतार कर उनका स्वागत करती हैं नदकुमार और राधिकाजी विवाहोपरात लौटते हैं तो जसोदा और सुभद्रा उनका स्वागत करती है कवि ने पारिवारिक जीवन के इस उल्लासमय चित्र को सजीवता से अकित किया है—

> चौक पुरावा माणक मोतिया जी, रतन भरावा थाळ।
> करो नी सहोद्रा बहिणि आरती, आया घर वीर गुपाळ।
> सोहलो गायो पृथ्वीराज राठौडजी कासू-कासू पायो दान।
> पाईजी खवासी दुहु की दुहु जणा, बिहु जण रहियो मान॥

पृथ्वीराजजी को तो श्रीकृष्ण और राधिकाजी की चाकरी (खवासी) मिल गई है उन्हें अब और किसी बात की अपेक्षा नही है

(५) सदेश पठन विषयक पद

गोपिकाओ द्वारा सदेश-प्रेषण के अनेक मधुर पद भक्त सूरदास द्वारा रचित हैं पर पृथ्वीराज कृत राजस्थानी भाषा का यह पद भी सारी स्मृतियो को सचेतन करता हुआ करुण रस से पूर्ण है—

> नयणे आँसू उर नेसासा,
> अबळा विह्वळ थई उदासा।
> उर अगलूणी बधै आसा,
> प्रिथु न छड जमना पासा।

(६) अन्य भक्ति पद

पृथ्वीराज कृत अन्य पदो मे 'हरि[1] जेम हलाटो तिम हालीज, काय घण्यासू जोर क्रिपाल पाला पद'[1] अत्यन्त प्रसिद्ध पद है जो अनेक भक्तो द्वारा गाया जाता है पद बडा सरल पर भाव पूर्ण है—

> रीस करो भाव रळियावत, गज भाव खर चाढ गुलाम।
> माहर सन्ना ताहरी माह्व रजा सजा सिर ऊपर राम॥

'अथ कन्हैया नत्याष्टक' वाला अमत ध्वनि पद नृत्य सगीत ताल और साहित्य तीनो ही दृष्टियो से अजोड पद है इसकी पंक्ति-पंक्ति स सगीत लहरी उठती है, जो तन मन को आह्लादित कर देती है इसके शब्द चयन से पता चलता

---

१ यह पद राजस्थान भारती में प० बदरीप्रसादजी साकरिया न प्रकाशित करवाया था

है कि शब्दों का समर्थ सारथी है, जो लगाम पकड़े इन शब्द तुरगों का मन चाहे ढग से चला सकता है श्रीकृष्ण के नृत्य का क्या ही भव्य चित्रण है—

द्रु द्रु द्रुकट द्रुकटि द्रुकटि धुनि धपमप धपमप धपमप धया।
त्रिट त्रिट ताल झंझरी झनक्त ततथई ततथई धुनिक्न थया।
घुघरू घनन घमक पग नेउर ता ता तननन बीन बजया।। सकल प्राण।।

चग उपग सग व्रजसुदरि रगराग प्रति हासु सुनया।
कटि पट पीत रीत बहु कछनि नट विकट विकट लट लटक लटया।
लटकत माल लाल गल मोतियन खटकत उरह कम जम देया।
सकल प्राण प्रिथीराज सुकवि कहि, बाजत मृदग तत नचत कन्हैया।।

(१)

आरती

ब्रह्मा वेद उच्चर नारद अलापै तुबरु ।
शनि क पान आडवै सभ जकार कर सुर ।।१।।
सपति जोतिक घर पाणि कज ब्रह्म प्रकास ।
फाणि मणि आडवै ठवति सारद्द प्रकासै ।।२।।
प्रभु पुहुप चपक कळी वार वार सिर आरती ।
उडीस जगनाथ आरती बदरीनाथ आरती ।।३।।
अजोध्या आरती अनै मथुरा आरती ।
वळि हरिद्वार हि आरती गगा सगम आरती ।।४।।
गया अवति हि आरती अन रामसर आरती ।
आरती पाणि कमळावती आरती द्वारामती ।।५।।
जिणि जिणि थानक गोविंद वस ।
तिणि तिणि ऊपर आरती ।।६।।

(२)

श्री ठाकुरजी री आरती रो गीत, पिरथीराजजी कहै

पद्यबध रूपक

कवि कवत सिघासण करे, चमर सुढाल चवसर ।
प्रभु सावळावत सिर परे, छत्रबध छत्र धर ।।घट।।
धुर कवियण घर हरे, आगळी नट छद अवसर ।
ऊजळै मोतियँ आखरँ, भल गुणे चवक भरे ।।१।।
दुहडा दमम दडीयडे गाहा मृदग गटियड ।
भैरभह पिंगळ भडियड रूपक ब्रद रुडँ ।
धुनि वेद साटक घडियडँ, पडसदा अध गिर सिर पडँ ।
जस मोड माहव सिर जड, चवसरी माळा चड ।।२।।
वातिया अरथ उत्तम वण, घ्रत नेह सींचै घण घण ।
बत्र जोत राग प्रबधण करताळ थाळ वणकर्ण ।।
भालरी सपत सुर भणहण, परठवै मिण नग पूरणं ।
आरती गीत उवारणं, कर कुवर नद चे कारण ।।३।।
ताप पेम काय न रही तपा, उपाय दाय न अप्रया ।
साभळै वायक समया इण आरती अरयाक्ळ ए कया ।
हरि हुआ रळियायत हया प्रसाद भगत सहै पिया
... ... जग अबरीक जथा ।।४।।

(३)

सोहलो

दुलह क्रिसन दुलहण राणी राधिकाजी, वधावो जगोमति माय।
पाट न सिंघासण प्रभुजी रै सोवनो, सोवन छत्र तणाय ।।दु।।१।।
कुवरी लाडली हा राजा वृषभाण री, प्राणी प्राणी नद कुमार।
उण गळि सोहै चउकी जडाव री उड गळि नवसर हार ।।दु।।२।।
तोरण घडावो चदण-बावनो, वधावो गोकुळजी री प्रोळि।
थळम भरावो केसर कपूर सू, भीति करावागी खोळि ।।दु।।३।।
चौक पुरावा माणक मोतिया जी, रतन भरावा थाळ।
करो नी सहोद्रा बहिणी आरती, आया घर वीर गोपाळ ।।दु।।४।।
सोहलो गायो प्रिथीराज राठोड जी, कासू-कासू पायो दान।
पाई जी खवासी दुहु की दुहु जणा, बिहु जण रहियो मान ।।दु।।५।।

(४)

अथ कन्हैयानत्याष्टक

अमृत धुनि

थागडदिक थागडदिव ततथई ततथई निरतत स्याम सबन सुख दईया।
सुन सगीत निरति अदभुन थकित चद जल उलट चलईया।
थक मृग थकित थक्ति सुर गन्धव सुर विमान सब थक्तित रहिया।
सकल प्राण प्रिथीराज सुकवि कहि, बाजत मृदग तत नचन कन्हैया। १।।
रुद्र इन्द्र अरु व्रह्म थकित भयै थक्ति भानु रथ चलन रखया।
मोहित भय सकल सुर नर मुनि सुनि अनग मनि गव धरया।
निरख स्याम छबि मूछ भय जब कहू धनुष कहू बान परैया ।।२।।
।।सकल प्राण०।।

घुग घुन घुन घरत फिरत पाय, स्याम वदन सब लेत बलया।
बिछुरन माल कमल दल उछरत, झलकति सुकनि सुसीस छरया।
कुडल करण अधर दुति दीपति मानु भानु ससि तात रचया ।।३।।
।।सकल प्राण०।।

चग उपग सग व्रजसुदरि रग राग अति हासु सुनैया।
कटि पट पीत रीत मट्ट कछनि नट बिकट बिकट राट लटक लटया।
लटकत माल लाल गल मोतियन खटक्त उरह बस जम दैख्या ।।४।।
।।सकल प्राण०।।

द्रु द्रु द्रुकट द्रुकटि द्रुकटि धुनि धपमप धपमप धपमप धैया।
किट किट ताल झभरी झनक्त ततथई ततयई धुनिश्न थैया।
घुघरू धनन धमक पग नेउर ता ता तननन वीन बजया ॥५॥
॥सक्ल प्राण०॥

गिरिधर अधर गोवरधन कर धर जजर नार नर जतन रखया।
अडर अमर नर अजर अलेपम दससिर कट धर गेंद करैया।
इंद फुनिंद सिद्ध सनिकादिक, ब्रह्म रुद्र सब खेलि खिलया ॥६॥
॥सक्ल प्राण०॥

धुधुकटि धुधुकटि धुक्टि धुक्टि क्टि मधुर मधुर धुनि करत कहैया।
बजत पखावजि धुधुमपि धुधुमपि धपमप धपमप ध ध धया।
धागडदिक ताल ताल मिलि भुजक्टि ततथइ थइ थइ थइ थइ थया ॥७॥
॥सक्ल प्राण०॥

घुघरनि घुघरनि घुघरनि घम घम घमक घमक पग धरनि धरया।
उलट पलट सब फिरि फिरि निरखति त त तननन वीन बजया।
भम भम भमक ताल क्सालह फिरि फिरि फिरगटि फर फिरया।
सक्ल प्राण प्रिथिराज सुकवि कहि, बाजत मृदग तत नचत कन्हैया ॥८॥

(५)

पृथ्वीराजजी कहैं

हरि! जेम हलाडो तिम हालीजै, काय धण्या सू जोर क्रिपाळ।
मोळो दिवो, दिवो छत्र माथ, देवो सो लेऊ स दयाळ ॥१॥
रीस करो भाव रळियावत, गज भावै खर चाढ गुलाम।
माहर सदा ताहरी माहव, रजा सजा सिर ऊपर राम ॥२॥
मूझ उमेद वडी मह महण, सिंधुर पाख केम सरै।
चीतारो खर सीस चित्र दै, किसू पुतळिया पाग कर ॥३॥
तू सामी पृथुराज ताहरो वळि बीजा को कर विलाग।
रूडो जिको प्रताप रावळो भूंडो जिको अमीणो भाग ॥४॥

---

(५)

पाठांतर—
हर हलाव जेम तेम हालीज की धणियां सू जोर क्रपाल।
मौलो दियो दियो छत्र माथ, दालू ही ले हालस्यू दयाल ॥१॥
रलियावत भाव रीसाणो गज चाढ खर चाढ गुलाम।
माहरा देव ताहरी महिमा रजा सजा सिर ऊपर राम ॥२॥
आसै हम तुम माहीं ईसवर, सिंधुर पाखै केम सरै।
चीतारो खर ऊपर चित्रव किसू पूतली पाग करै ॥३॥
तू सामी प्रथीराज ताहरो, लोका बीजा लाग अलाग।
रूडो जिको प्रताप रावलो भूंडो जिको अमीणो भाग ॥४॥

(६)

गीत प्रिथीराज कल्याणमलोत ठाकुरा नु कहै

रखपाल वडा तो विण कुण राखै, नमो पराक्रम नारीयण ।
ग्रोम गोम विचि दीस भ्रवगति, जळ मे प्राजळनी जळण ।।१।।
कुण राख तो विण करुणाकर, मान ससार विचार मनि ।
ग्रबर घर दीस ग्राघतर, ग्रब विचै हुवती ग्रगनि ।।२।।
जग एकठा वि्है जगजीवन, सु तो किसी परि राख सामि ।
जळण ग्रब नह सक ऊभम, ग्रब सक नह जळणि उभामि ।।३।।
वानी वि्है एकठा वादळ करुणाकर विण कवण करै ।
ग्रब तण सिर भाळ ऊभर, (नै) भाल तण सिर ग्रब भर ।।४।।

(७)

गीत ठाकुरजी रो पिरथीराजजी कहै

प्रहळाद भाळ गज भाळ परीखत, भाळ गुवाळ पडवा भणी ।
सारीखो कोइ न सूझ सावळा धणीयप कर सेवगा-धणी ।।१।।
जाइ राजा बांधिया जरासधि, जाइ ग्रवरीप द्रोपदा जाइ ।
ग्राया सकट ग्रापरा उवेळण, किमन सारीखो धणी न काइ ।।२।।
ईस-सीत सुग्रीव ईसवर इद्र ईस जादुव कुळ ईस ।
ग्रर हण ग्रव चाढण ग्रोळगुवा, श्रीवर तणो न वा सारीस ।।३।।
राकस ग्राह बाण सक्र राजा, क्रितिया दूण छोडण दहक्रध ।
बाळि ग्रसुर वृत कस विभाडण बळ वाधण छोडण वळ बध ।।४।।
ग्रास जास हारी प्रभ एता, ग्रातम ताम न छडै ग्रास ।
भाज सकट मेता भवा लग, दासा मान कियो प्रथीदास ।।५।।

---

(७)

पाठांतर—

१ सरीखो को सामळा न सूझ धणियापगर सेवगाघणी ।।१।।

२ जोइ राजा बधिया जरासधि, जोइ अबरीख द्रोपदी जोई
आय सगठ आपरा उवेलण, क्रिमन सारखो धणी न कोई ।।२।।

३ ईखि इद्र जादव कुल ईखि । अरि हणि ।

४ रात्रस ग्राह बाण रिखि राजा, कृत्या दूसासण दहकध ।
वालि असुवृत कस विभाड, वालि बधण छोड जगबध ।।४।।

५ आस जास पूरी हरि एवो, आतम तास न छड आस ।
भंजै सकट क्रिते भुवणतरि, दासां आणि कियौ प्रिथदास ।।५।।

(८)

प्रिथीराज जी कहै

काळकूट भखियौ सकर काळ पळ ग्रजण किय,
कियो पहळाद पित सरिस ग्रहकार।
इद्र ची लोपना गुम्राळिया ग्रादरी,
भरोस ताहरै गोपि भरतार ।।१।।
खादियौ हुवण रामण सरिस बभीखण,
ग्रागम ग्रकोदर जरासध ग्रत।
बभ जदेव त्री ग्रसत्यि गळि बधिया,
क प्रत राउळ राधिका क्त ।।२।।
महमहण सुरे ग्रसुरे ज मथियौ महण,
देव जुजिठळ रिण सूध दीधौ।
वळ प्रथीदास ससार ग्राडो वहै
कम्मळानाथ वेसास कीधौ ।।३।।
जारिया वारिया हेक ऊबारिया,
राखिया मारि बैसारिया राजि।
जिवाड ग्रमृत दे हेक जीवाडिया,
ग्रसन करि कृपा निज सेवगा काजि ।।४।।

(६)

प्रीथिराजजी कह

तणा द्रोपदी देवता जगन ग्ररि ताणता,
भला कर करण हरि जगत भणिया।
पूरव जगत हू चीर हथिणापुर,
साद हथिणापुरा जगति सुणिया ।।१।।

घळ करण हेक न हेक कूससथळी,
ग्राच श्रुति प्रवाडा ग्ररकि ऊगा।
करण करणा करे भ्रिसन क्रिसना तणा,
पुर विहै सद वसत्र समा पूगा ।।२।।

वार पचाळि विचि द्वारिका वजावै,
विसव जोग्रण जोए जोइ वाद।
ग्रनत ग्राधागळौ दास ऊवेळिया
श्रवणि सरचा ग्रनत दास साद ।।३।।

सनस गुणग्राम नक्यो द्रोपदी सद तणो,
पगुरण तणो गुण नक्यो "प्रिथदास" ।
इळ न आकास गुण दूरि पुगा ज अज,
राउळी सुगुण रुखमणी रमण रास ॥४॥

(१०)

पृथीराजजी कहँ

करै कोप सिर कापि हेक मुगतिगामी कियौ,
अपा कर लकपत हेक कीधौ ।
सारिखौ आपरै हाथ दसरथ सुतन,
दुहू विध राकसा दान दीधौ ॥१॥

मारि दहकध साजोति ले मेळियो,
मर्या कर बभीखण कियौ म्होटौ ।
तै भला भांजियो आज त्रैलोकपत,
त्याग विध दाणवा तणो तोटो ॥२॥

साभि अहकार मल अभपद समपियौ,
मारस जण त्रिकुटगढ समपि सोई ।
रीझियै खीझिय राम जिम राकसा,
किया उपगार तिम कर कोई ? ॥३॥

रीझिय लक द दूरि लइ राखियौ,
कोपि प्रिथ राखियो आप कानै ।
नारियण तणो रामण बभीखण नमा,
मारिया तणो उपगार मानै ॥४॥

(११)

प्रिथीराजजी कह

असमान कुळेह गत माळा उडीपण,
रार बिहै सूरज राकेस ।
पळ मेखळी वणाया एहो,
अनत महर तोनू आदेस ॥१ ।

भुज गिर सिखर रोमराय मदभुज,
तोय फिरेवा सायर त्रिण च्यार ।
वप काळा वळता मुख वाळा,
जूना नाथ ग्रनत जुहार ॥२॥

वीऊ चित वात साच जे वाचा,
असी-च्यार लख आतम आय ।
गात लात सा सहणा गूढा,
नमस्कार हरि बूढा नाथ ॥३॥

नाह छत्रीस राग वाजै नित,
अकवीस मे गुरुड आरोढ ।
सोळ सै जोगणी सहेती,
जोगी घरबारी हरि जोढ ॥४॥

लख घट भाज घड सवा लख,
कळियौ जाय नही किणी ।
इण अवसता तणो तो ईसर,
घोक धोक त्रिहुलोक घणी ॥५॥

(१२)

प्रिथीराज कहै

पथिया रे ! हेक प्रीत-सदेसौ,
कहिजौ जाइ आगळि वेसौ ।
नद जसोदा नेह अनेसौ
अम्हा बिया प एह अदेसौ ॥१॥

एक सु दिन जे गोकळ आयौ,
धाइ जसोदा अचळ धायौ ।
ग्वाळणियाँ मिळि मगळ गायौ,
वीठळ जाइ समद्र वसायौ ॥२॥

वीसारी हरी करै विडाणी
वाणी एह वद विलखाणी ।
रिधि द्वारिका मडि रजधाणी,
रहिया रीभि रुक्मणी राणी ॥३॥

नयणै आंसू उर नेसासा,
अबला विहवळ थई उदासा।
उर अगलूणी अधे आसा,
पीयु न छडै जमना पासा ॥४॥

(१३)

प्रिथीराजजी कहै

ब्रहिणी इंद्राणी रुद्राणी,
वळि वळि वलि विहुरा ब्रहमाणी।
वसुधा तणी वदती वाणी,
रुक्मणि भाग सराहै राणी ॥१॥

सत्र हुणै प्रिय कस सरग्गी,
मुँहि भाजै सिसपाळ उमग्गी।
सखी कहै सहुअ म्हे सग्गी
वडी सुजाइ हरि हत्थ विलग्गी ॥२॥

सु वर रुकमणि तणो सुहावै,
पूजा फळ जो इसड़ौ पावै।
भुवणणि सत्री सावत्री भावै,
पूजण गौरि गवरि पछताव ॥३॥

पति सोहाग रुकमणी पोसै,
भरता आप तणेय भरोसे।
मिणधर इंद्र रुद्र तिय मोस,
दूसिया ब्रह्म विह अक्खर दोसै ॥४॥

(१४)

पृथ्वीराजजी कृत

राधाजी के नख शिख वर्णन की तीन षटपदियें

व्रज भाषा में

करि रंभ हरि चषक इंदु दीपक मृग विषधर।
सरण तट्ट सिख पुनय दिवस खय अफल मद्दभर॥
नील सजल जुव प्रेम सरद निस दभ अक्चस।
चदन वन ग्रह गयद सयल तकि कपूर विजस॥
गति अधलक उरवदन भनि नासक चख वैणी वरण।
यह रूप भूप पृथ्वीराज कह मिले कान राधा रमण ॥१॥

उरग मीन लोय तडित कुभसिह कदल अबुज ।
उम्न मध्य वन कनक रसा निसि बरन स्याम धुज ।।
नगन गग पुर तिमर सुघट तकि मानसर ।
सद कपूर मद झरत लता थिर चपल मलयतर ।।
कुवरि नयण नासक दसन, कुच कटि जघव चरन ।
विमल बाग राधे चली मनु अनग को जय करन ।।२।।

आनन बनी नयन बन पुनि दसन सु कटि गति ।
ससि सपिन मृग पिक अनार केहरि करानन पति ।।
पुरन खिझत जक तरुन पवव वर पच पुष्ट बल ।
सरद पताल बिछोह बाग तरु ल(ता) गिरि बन कज्ज(ल) ।।
निसि सन्निवास सावक चुवत बिगस प्रसूती मद झरत ।
पृथ्वीराज भनत बसी बजत अस वनिता वनबन फिरत ।।३।।

—*श्री सौभाग्यसिंह शेखावत के शोध पत्रिका १५/१*
'महाराज पृथ्वीराज राठौड' रचित छप्पय लेख से,

(१५)

गीत माताजी नू पिरथीराजजी कहै

आई आवजो अण छळ आवीज, देवी साद सुमरिया दीज ।
वळ तज कवण पुकारू बीज, काछराय मो ऊपर कीजै ।।१।।
छिलत तेज रथे पाय छणहण, वेगा खेड नत्रीठा वाहण ।
असवत सेवक करण निमतण, आवीज अहीया उग्राहण ।।२।।
चाळक न मढ हूतो चावर, माछ पचाळ ममे छेडा करि ।
झीझळिपाळ स देवत भूलर, आवीजो व्रन सकट ऊपर ।।३।।
स्रवण साल्हळ सुणो सचाळी, घायज्यो चारण धावळियाळी ।
पीथळ वाहर काछ पचाळी लाल मिळो मुझ हेकण ताळी ।।४।।

---

(१)

१ अलाप – गाते हैं । तुवर – एक वाद्य । सभ – शम्भु ।
२ सपति – सूय । आडवं – १ निर्माण करते हैं २ तैयार करते हैं । ठवति – स्तुति ।
३ पुहप – पुष्प ।
४ अन – और । वळि – और । गगा सगम – १ प्रयाग, २ गगासागर ।
६ थानक – मदिर, स्थान । वसै – निवास करते हैं ।

(२)

१ कवत – १ कविता, २ कवित्त । चवसार – चारा ओर । धुर – प्रथम । अवसर – नत्य करते हैं । चवक – चौक ।

२ दुहडा — दोहा । दमम — दमाम, नगाडा । दडीयड — बजता है । भेरमह — बडा ढोल । व्रद — विरद । पडसदा — प्रतिशब्द । मोड — मौर, मुकुट । चवसरी माळा — चार लडियो की माला ।

३ करताळ — झाझ, मजीरा । कणक्कणै — बजते हैं । झालरी — झल्लरी वाद्य । परठव — धरते हैं । उवारण — निछावर करते हैं । वातियां — दीपक की बत्तियें । मिणनग — मणि रत्न आदि ।

४ पख — देखकर । अप्रया — अप्सरा । अरथावळ — रूपक अर्थ रूप में । रळियामत — प्रसन्न । स मथा — समथजन ।

(३)

१ वधावो — मगलोपचय द्वारा स्वागत करिये । सोवन, सोवनो — सुवर्ण का ।

२ आणी आणी — ले आये पाणिग्रहण करके लाये । उण गळि — श्रीकृष्ण के कठ मे । उण गळि — श्री राधिकाजी के गले मे ।

३ खोळि — लेपन ।

४ सहोद्रा बहिणी — सुभद्रा बहन । वीर — भाई (श्रीकृष्ण) ।

५ सोहलो — विवाह करके आने पर तोरण वदन के समय गाया जाने वाला बधाई का मगल गीत । कासू कासू — क्या-क्या । खवासी — श्री राधाकृष्ण की चाकरी । दुहु की — दोनो की (श्रीराधा और श्रीकृष्ण दोना की) । दुहु जणा — हम दोनो ने । बिहु जण — दोनो ।

(४)

१ निरति — १ अत्यत लीन, २ नृत्य । गध्रव — गधर्व । तत — तहाँ, जहाँ । थकितत रहिया — मुग्ध हो करके स्थिर हो गये ।

२ रखया — रोक दिया । अनग — कामदेव ।

३ पाय — पाँव । छरया — सुदर केश लटि । दुति — द्युति, चमक ।

४ उपग — एक वाद्य । हासु — हसी उल्लास ।

५ झझरी — १ झाँझर, २ झाँझ ।

६ जजर — १ भयभीत, २ वृद्ध । दससिर — रावन । फुनिद — फणीन्द्र, शेषनाग ।

७ पखावजि — छोटा मृदग ।

८ कसालह — झाँझ । फिरगटि — चक्कर । सकल प्राण — अखिल सृष्टि के प्राण श्रीकृष्ण ।

(५)

१ जेम हलाडो — जिस स्थिति मे रखें । तिम हालीज — उसी स्थिति मे प्रसन्न रहू । मोळी — १ मगलसूत्र, २ लकडिया का भारा ।

२ भाव – चाहे। रळियावत – १ खुश, प्रसन्न, २ प्यार, लाड। माहव – माधव, रजा – १ कृपा, २ छुट्टी, ३ मुक्ति।

३ महमहण – १ महा महार्णव परब्रह्म, २ श्रीकृष्ण। सिंधुर पाख – हाथी के बिना। केम सर – कैसे काम चले। खर सीस – १ गदहे की सवारी, २ गदहे के जैसा सिर, गदभ शीष। पाण – १ जोर, २ वश। चीतारो – चित्रकार। पुतळियाँ – पुतली, चित्र।

४ वळि – फिर। बीजा – दूसरे। विलाग – विलग, दूर। रूडो – भला, अच्छा। रावळो – आपका। भूंडो – खराब, निकृष्ट। अमीणो – हमारा।

(६)

१ कुण राखै – कौन रक्षा करे। ओम गोम – आकाश और पृथ्वी। अवगति – समझ में नहीं आने वाली बात। जळण – अग्नि।

२ आधतर – अध बीच में। अब – पानी। हुवती – जलती हुई।

३ सु ता – उसको। किसी परि – किस प्रकार। वह सकै ऊझम – जला नहीं सकती। सक नह उझामि – बुझा नहीं सकता।

४ वानी – अग्नि, वह्नि। बिन्है – दोनों। झाल ऊभरै – ज्वाला उठती है। अब झर – पानी बरसता है।

(७)

१ भाळ – रक्षा। भणी – की, (संबंध सूचक प्रत्यय)। सावळा – श्रीकृष्ण। धणीयप – स्वामित्व। सेवगा धणी – भक्तों के स्वामी।

२ जाइ – जिसने। आपरां उवेळण – अपनों (भक्तों) की रक्षा करने वाला।

३ ईस सीत – श्री राम। अर हण – शत्रुओं का नाश करने वाला अरिहंत। अब चाढण – बल कांति प्रदान करने वाला। ओळगुवां – भक्तों को।

४ त्रितिया – कृत्या, अभिचारिणी। दहकंध – रावण। विभाडण – नाश करने के लिये। बल बाधण – बलि को बांधने वाला।

५ आस जास – आशा और भरोसा। प्रभ – प्रभु श्रीकृष्ण। एता – इन्होंने। केता भवा लग – १ कितने ही जन्मों के, २ कितना ही के जन्मों के।

(८)

१ काळकूट – भयानक विष। भखियो – भक्षण किया। अजण – ब्रह्मा। आदरी – विचारी, विचार किया। गोपि भरतार – गोपियों के स्वामी।

२ खांदियो – शव की अरथी उठाने वाला। आगम – निश्चय करता है। बंभ – ब्राह्मण। त्री – स्त्री पत्नी। राउळ – आपके।

३ महमहण – समुद्र। मथियो – मथन किया। जुजिठळ – युधिष्ठिर। सूप – मार्ग दर्शन। वेसास – विश्वास।

जारिया – जला दिया । वारिया – वारण किया । बसारिया – बिठाया स्थापित किया । जिपाडै – जिताया । जीवाडिया – जीवित किया ।

(६)

१ अरि – शत्रु (दुशासन) । पूरवै – पूर्ण किया । साद – पुकार । जगति – द्वारिका ।

२ कूसथळी – कुशस्थली, द्वारका । अरकि – सूर्य । त्रिसना – द्रौपदी, कृष्णा । बिन्है – दोनों । वसत्र समा – वस्त्र के रूप में ।

३ पचाळि – द्रौपदी । आचागळो – दातार, उदार । ऊवेळिवा – उद्धार करने के लिये । सरवो – शीघ्र सुनने वाला ।

४ सनस – संदेश । गुणग्राम – गुणों की खान, श्रीकृष्ण । सद – पुकार । पगुरण – वस्त्र । इळ – पृथ्वी । अज – आज । राउळो – आपका, श्रीकृष्ण का । सुगुण – उपकार ।

(१०)

१ मुगतिगामी – मुक्ति पाने का अधिकारी । हेक – एक को, रावण को । हेक – विभीषण को । दूहू विध – (शत्रुता और मित्रता) दोनों प्रकार से । राक्सा – राक्षसों को ।

२ दहक्ध – रावण । साजोति – मोक्ष । तोटो – कमी, अभाव ।

३ अभैपद – निभयपद । त्रिकुटगढ – लका । रीझिय – प्रसन्न हो करके । खीझिय – क्रोध करके ।

४ आप कानै – अपने पास । नारियण – नारायण, श्रीराम । मारिया तणो – मारे जाने का ।

(११)

१ उडीयण – उडगण, तारे । राकेस – चन्द्रमा । यळ – पृथ्वी । मसळी – करधनी । महर – सूर्य । आदेस – नमस्कार ।

२ रोमराय – रोमराजि । भदभुज – उद्भिज । सायर त्रिण च्यार – सातों समुद्र । तोय – पानी । वप – शरीर । वळता – झुकाये हुए (मुख की एक मुद्रा) । जूना नाथ – पुरातन प्रभु, श्रीकृष्ण ।

३ असी च्यार लख – चौरासी लाख । बूढा नाथ – पुरातन परमेश्वर ।

४ नाह – नाथ । जोगी घरबारी – गृहस्थ योगी । जोध – योद्धा ।

५ घट – शरीर । कळियो थाय – जाना जाय । अवसता – १ २ रूप । धोक – प्रणाम ।

(१२)

१ केसो = केशव, श्रीकृष्ण । नेह अनेसो = स्नेह व्याघात । अम्हा बिया = हम दूसरो को ।

२ वीठळ = विट्ठल श्रीकृष्ण ने । समद्र वसायो = समुद्र मे द्वारिका का निर्माण कर निवास किया ।

३ विडाणी = परायी । विलखाणी = बिलखती हुई । रजधाणी = राजधानी ।

४ नेसासा = नि श्वास । विह्वळ = विह्वल । अगलूणी = आगे की ।

(१३)

१ अहिणी = शेप नाग की पत्नी, सर्पिणी । वळि वळि = बार बार । बिहरा = दूसरी बार । ब्रहमाणी = सरस्वती ।

२ सत्र = शत्रु । सरग्गी = स्वगगामी । उमग्गी = उमगी ।

३ इसडो = ऐसा । भुवगणि सत्री = नागिन । भाव = अच्छा लगे ।

४ मिणघर = शेपनाग । मोस = ताना देती हैं । दूसिया = दूपित । ब्रह = विरह । विह अक्खर = विधाता के लेख । दोसै = दोप देती है ।

(१४)

१ चक्क = चक्र । खय = क्षय । लक = कमर । चख = चक्षु ।

२ उरग = सप । उरु = जाघें । ब्रखा = वर्षा । मानसर = मानसरोवर । मलयतर = चदन वृक्ष । नासक = नासिका । दसन = दात । अनग = कामदेव ।

३ आनन = मुख । त्रनी = वेणी । पुरन = समुद्र । वन कज्जल = कजरी वन । सन्निवास = पास । बिगस = विकसित ।

(१५)

१ आई = १ आई माता २ करणी देवी । व्रण = वण । चारण छळ = के लिय । साद = पुकार । बीज = दूसरे को । काछराय = देवी । ऊपर कीज = कृपा कीजिये ।

२ मेड़ = चलाकर । नत्रीठा वाहण = अश्व रथ, तेज गति वाला वाहन । निभय । उग्राहण = छुडाने के लिये ।

३ थाळक = आवड देवी । चाचर = चौक । काछ पचाळ = दवी । स दवत असक्त = भयभीत । निभ = भूलर = दवताओ के समूह के साथ ।

४ धावळियाळी = करनी दवी । वाहर = रक्षा । हकणताळी = प्रतिशीघ्र ।

उद्बोधन

इन चक्षुओ से दिखाई देने वाली ससार की प्रत्येक वस्तु माया है माया (और माया जनित सारी वस्तुएँ) नाशवान हैं यह जानते हुये भी कि जिस जिसको हम प्यार करते है, फिर वह चेतन हो या जड, सब नाशवान हैं फिर भी हम उन्हें प्यार करते ही रहते हैं इसी का नाम मोह है मोह ही अज्ञान की जड है और यह अज्ञान का ही दुष्परिणाम है कि मनुष्य सदव इस सुनहरे मनमोहक पक मे फँसा रहता है वह सोचता है कि यही जीवन का सच्चा आनद है और जसे जसे वह उसका भोग करता जाता है, उतना ही उस दलदल मे फँसता जाता है वास्तव मे यह भोग सामग्री तो उस खुजली के समान है, जिसे खुजलान पर लगता तो अच्छा है पर, खुजली का राग बढता जाता है अ त म होता यह है कि जब जीवन म कही किनारा नही मिलता तो डूबा अघडूबा मनुष्य हाथ पाव पछाडता है, छटपटाता है और अपनी विगत भूलो पर पश्चाताप करता है, तब कोई काम न आकर केवल आध्यात्म ज्ञान और राम नाम ही आधार होते हैं राम नाम की यह औषधि रामबाण है, जो अचूक है इस महौषधि का उपयोग सत, महात्मा और भक्तो के द्वारा ही हो सकता है वे ही हमे इस भय पक से मुक्ति दिलवा सकते हैं उनके वचनामृत हमे सजाग कर देत हैं उनकी सत्यनिष्ठ ज्ञानमयी वाणी हमे उद्बोधित करती है अतएव ऐसे सारे उपदेश उद्बोधन सज्ञा के अ तगत आते हैं

राजस्थानी भक्ति साहित्य मे पृथ्वीराज का नाम सदव स्वर्णाक्षरो से अकित रहेगा इस धारा को अटूट रखने के लिये पृथ्वीराज ने प्रबध काव्य, मुक्तक, गीत तथा अनेक पद लिखे हैं अपन सारे भक्ति साहित्य मे जहाँ कवि उद्बोधक के रूप मे हमारे सम्मुख आता है वह कबीर, दादू आदि की भाँति कुछ अशो मे ज्ञानमार्गी बन जाता है इतना होते हुये भी एक बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि निगु ण कवियो की भाँति वे और उनका काव्य न तो दुरूह ही बन पाया है और न शुष्क ही

स्वय अपने पिता महाराजा कल्याणमल की मृत्यु पर कवि ने जिस उद्बोधक गीत की रचना की है वह दशनीय है अपार दास दासियो और समृद्धि से घिरा तथा वासना में रचा पचा कल्याणमल न तो कोई सुकृत्य किय ही और न भगवान का नाम लिये ही, ससार स चल बसा—

सुखरास रमता पास सहेली,
दास खवास मोकळा दाम ।
न लियो नाम पख नारायण,
कलिया उठ चलियो बेकाम ।।

यूनान से लेकर भारतवर्ष तक जितना राज्य फैला हुआ था तथा जिसके नाम का डंका चारों ओर बजता था, ऐसा वैभवशाली व प्रतापी सिकन्दर जब मरा तो उसकी मुट्ठी खाली थी साथ में तो किसी के तृण भी नहीं चलता पंचतत्वों से बनी यह देह पंचतत्वों में मिल जायेगी—

खाटी सो दाटी धर खोदी,
साथ न चाली एक सिळी।
पवन ज जाय पवन बिच पठो,
माटी माटी माहि मिळी॥

माया जन्य वस्तुओं से मनुष्य इतना चौंधिया गया है कि उसे सच्चे और झूठे का अंतर समझ में नहीं आ रहा है धनमद में वह प्रभु को भुला रहा है और व्यर्थ में ही इतनी उछल कूद मचा रहा है, जबकि वह यह जानता है कि यह जीवन तो पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है—

हीरो काइ क्वडी साटै हार,
कहि समझायो आतम केतो।
किमो किसो जिणि हरि वीसार,
आउ किती जिणि कूदै एतो।

अज्ञानवश हम खोटे को खरा, अभोज्य को भोज्य और त्याज्य को ग्राह्य समझ कर, हर काम उलटा कर रहे हैं पृथ्वीराज ने इस भाव को एक छप्पय में सुंदरता से आलेखित किया है—

हू ऊजड हालियो, वार आसन्नी हुती।
म्है कोहोर सींचियर, तोर सुरसरी वहती॥
मेल्हे चदण कठ, आवि वावळियो घमिया।
छाड सज्जण सयण, वीडा भीतर होई वसियो॥
कीरतन न कीधो श्रीत्रिमन, कर जोड त्रयभुवण कर।
आसियो जु मैं वासाणियो, नारायण विणि अवर नर॥

एक अन्य छप्पय में कवि ने बंधन की शृंखला, (कौन किसमे बंधा हुआ है) घटमाले का वनानिक सही चित्रण किया है जीव कर्मों से बंधा हुआ है और कर्म शरीर से बंधा हुआ है आदि का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि हे जीव! तू किसी प्रकार भगवान को अपने हृदय में रख—

जीव बध्ध कम्माणि क्रम्म बधा काइ तन।
काया बध्धी मल, मैल बध्या इन्द्रियागण॥

इद्री बध्धा रूप, सबद परसण रस घ्राण।
अ ले बध्धा मनि, मन्न बध्धो महिलाण ।।
छोडावि ग्राह गज, छोडवण, बधी तो वळि बधयण।
जिणि तिणि प्रकारि प्रियदास जण, राखि राखि रुकमणि रमण ।।

उपयु क्त छप्पय पर अपभ्र श का प्रभाव स्पष्ट है 'बध्ध', 'अम्भाणि' और 'इद्रियायण' आदि शब्द इसके उदाहरण हैं ऐसे इक्कीस छप्पयो मे कवि ने अनेक उदाहरण देकर बार बार यही बतलाया है कि हे मन ! ससार की कोई भी वस्तु तथा कोई भी मानव तुम्हारी सहायता नही कर सकेगा, अतएव तू अ य सासारिक झझटो से मुक्ति प्राप्त कर केवल हरिभजन कर (उक्त छद के अ य अपभ्र श रूप का पाठान्तर द्रष्टव्य है)

इनके अतिरिक्त पृथ्वीराज ने नीति, हरि स्मरण व आत्म निवेदन के बयालीस दोहे और लिखे हैं जो हर दृष्टि से मुक्तक है नीति विषयक दोहे मे कवि ने इस तथ्य को उद्घाटित करते हुये कहा है कि सवेदनशील प्राणी ही सुख दुख का अनुभव करते है, अ य नही—

चातक चकवा चतुर नर, तीनू रहइ उदास।
खर घुघु मूरख गिथळ, सदा सुखी प्रिथुदास ।।

एक अ य दोहे मे कवि ने साग रूपक अलकार के माध्यम से कामाग्नि से जलते हुये तन पर नयन रूपी बादलो से वर्षा नही होने का सु दर वणन किया है—

चित चकमक छाती पथर, काम अगनि कंप गात।
नयन सघण बरसत नही, पिय तन पर जल जात ।।

भगवान की भक्ति का त्याग कर जो मनुष्य केवल सासारिक धधो मे लिप्त रहता है तथा अयोग्य मनुष्यो की चाटुकारिता कर अपने स्वाथ साधन मे ही रत रहता है, उसके लिये कवि ने मौलिक उक्तियो का सृजन कर, नई उपमाओ से इस प्रकार व्यजित किया है—

प्रिथु जे अवरा पुण, गुण छडे गोपाळ,
माणक गुम मोताहळां, मह गळि घाती माळ ।।

और इसी प्रकार—

प्रथि हरि तजि गुण मानवां, जोडे किया जतन्न।
जाणि चित्त भ्रम वधिया, गळ गादहां रतन्न ।।

'मड गळि घाती माळ' और गळ गादहा रतन्न' (मुर्दे के गले मे मोतियो की माला डालना और गधे के गले मे रत्नो की माला पहिनाना) उक्तियो से काव्य सौंदर्य निखर आया है

'मन अश्वभाव' के अतर्गत कवि ने मन की उपमा घोडे से दी है घोडे की लगाम खीचने पर भी जैसे घोडा आगे बढता जाता है, वसे ही यह मन जो प्रभु के प्रेम का पथी है, अब अन्य किसी विषय की ओर आकर्षित न हो, केवल परमात्मा की ओर ही आकर्षित है—

प्रिथ प्रभु पथी प्रेम को, नयणै दीप दिखाइ ।
मो मन लग्गा तुरग जिम, ज्यु खचे त्यु जाइ ॥

ठीक इसके विपरीत रीतिकालीन कवि बिहारी का दोहा है, जिसमे आँखो की तुलना घाडे से की गई है यह घोडा मुँहजोर है, जो खेंचते हुये भी चला जाता है—

लाज लगाम न मानही, नैना मो वस नाहिं ।
ए मुँहजोर तुरग ज्यौं, ऐंचत हू चलि जाहिं ॥

पृथ्वीराज का मन घोडे जैसा है और बिहारी के दोहे के नायक के नन घोडे जैसे हैं दोनों के घोडो की लगामे खींचन पर भी घोडे तो आगे बढत जाते हैं अन्तर है तो भक्ति और शृगारिकता का, श्रद्धा और वासना का तथा सात्विकता और कायिकता का

जसे पवत के झरने पुन पवत पर नही चढ सकते ठीक उसी भाँति बीते हुए दिन लौटाये नही जा सकते इसी सत्य को पहिचान कर कवि निश्चित होकर सोने को मना करते हैं तथा प्रबोध करते हैं कि हे मनुष्य ! उठ और धमकम कर क्योकि यही सार है—

जात वळ नहीं दीहडा, जिम गिर निरझरणाह ।
उठ रे आतम धरम कर, सुवै नचितो काह ॥

'उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन नहीं जो सोवत है
सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है'—वाली उद्‌बोधन पंक्तियाँ भी इसी सार तत्व की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं

और अत मे कवि कहते हैं कि मेरे यह प्राण प्रभु प्रेम को लज्जित करने वाले हैं भगवान से बिछुड कर भी वे इस काया मे रहे इसलिये दुख तो भोगना ही पडेगा अब श्मशान के चक्कर काटने ही पडेंगे—

हरि विछुरत निकस्यो नही, प्रेम सजीवन प्राण ।
लाइक होइन दुखन को, ढूढत फिरौ मसाण ।।

'दसरथरावउत रा दूहा' अथवा 'वसदेरावउत रा दूहा' ग्रथो के दोहो से ये उद्बोधन के दोहे अपेक्षाकृत बहुत सरल भाषा मे लिखे हुये हैं इनमे साहित्यिक छटा का सवथा अभाव सा है जिस वयण सगाई अलकार का कवि ने सवत्र बडी चुस्ती से पालन किया है, उसका भी यहा नितात अभाव हैं इसका एक स्वाभाविक कारण यह हो सकता है कि सभव है कवि को अपने जीवन के उत्तरार्द्ध मे यह लगा कि यह सब भी एक वाक्प्रपच ही है जो वस्तु सरलता और प्रसादिकता मे है, उसकी तुलना नही हो सकती प्रभाव की दृष्टि से इसी का महत्व है हिंदी साहित्य के राष्ट्रकवि गुप्तजी को और पत तथा प्रसाद अथवा महादेवी जसे ख्यातनाम कवियो को लें तो निश्चय ही जनमानस को आदोलित और प्रभावित करन का जितना श्रय गुप्तजी को है उतना किसी को नही वह काव्य ही क्या जो दुगमता के गिरि गह्वरो म टकराता रहे अथवा शब्दो के खिलवाड मे उलझता रहे या फिर पश्चिमी कवि गेटे के अनुसार 'आधुनिक कवि अपनी मसि म पानी अधिक डाल देते हैं'—इस प्रकार निर्जीव सा बना रहे

(१)

प्रिथीराजजी कहै

हीरो कोइ कवडी साटे हारे,
कहि समझायो मातम केरो
किसो किसो जिनि हरि वीसारै,
माठ किती जिणो कूरे एती ॥१॥

पडै इद्र चन्दह दिन पूरै,
वसै इद्र चोकडी बहतरि।
ब्रहमाइ गरडो थियो बिसूरै,
हस रे । तसमात भजै हरि ॥२॥

माडियो मक मतादि भाळ मधि,
प्रिथ तिको वहि मायो पासै।
बार किती मिळती मरणावधि,
पहलो देह तम्पोह पयासै ॥३॥

(२)

गीत श्रीठाकुरजी रो पिरथीराजजी कहै, पणिहारी रै भावरो।

हे कहि कह हे पणिहारी, हससुता तट तंड विहारी।
हे हरणाखी कोतगहारी, हाल घर हर हेरणहारी ॥१॥

गेलै मे ऊभी सिर गागर, चूप किया किता गु चागर।
नागर सूं रीधी वोह नागरि, सुण हे वात सु वातां सागर ॥२॥

सीस दियत सहेल सहेली, गोविंद रूप तू मोही गहेली।
वार भई घर हाल वहेली, हेला किया स सांभळ हेली ॥३॥

सावळ ऊजळ मुरत सा वसी, वार मयम मुरा उगर वसी।
लग मग कोई दोस लगेसी, घर घर घेर हंसी घरेसी ॥४॥

मुझ पणहार सरूप सु सुन्दर, त कर वा ह कमर रिम मंजर।
तैं ऊभी रहिया ऊभा हर पण स दीठा हाल हुवे घर ॥५॥

जोवती प्रभु कहै जोवती खंब संगूर गुभ यावंती।
कामण वा ह सरस कुळवती, वाट मजै ग्रज हर बोहवती।

(३)

पिता कल्याणमलजी री मृत्यु रै समियै पृथीराजजी कहै

मुख रास रमता पास सहेली, दास खवास मोकळा दाम ।
न लियो नाम पलै नारायण, कलिया उठ चलिया बेकाम ।।१।।

माया पास रही मुळकती, सज सुदरि कीधा सिणगार ।
बहु परवार कुटब चौ बाधो, हरि विण गयो जमारो हार ।।२।।

हास हसता रह्या धोळहर, सुख मे रासत ज्यु ससार ।
लाखा धणी पयाण लाब, जाता नह भेजिया जुहार ।।३।।

भाई बध कडूबो भेळो, पिड न राखो हेक पुळ ।
चारपरि कर अगनि सिर चाढो, काढो काढो कहै कुळ ।।४।।

असिया रह्या पग आफळता, मदभर खळहळता महमत ।
व्हालो धणी सिघासण वाळो, पाळो होय हालियो पथ ।।५।।

देहळी लग महळी पण दोडी, फळसा लग मा वहण फिरी ।
मरहट लग कुटब चो मेळो, किणियन सुख दुख वात करी ।।६।।

कोमळ अग न सहतो कळिया, ताती झळिया सहै तप ।
धडी घडी कर तडी श्रोवियो, वडी बडी बाळियो वप ।।७।।

केसर चनण चरचतो काया, भणहणता ऊपर भमर ।
रजियो राख तणै पुगरण, घणा मुसाणा बीच घर ।।८।।

खाटी सो दाटी धर खोदी, साथ न चाली इक सिळी ।
पवन ज जाय पवन बिच पठो माटी माटी माहि मिळी ।।९।।

(४)

गीत

सस कलक सरवर सपक, सुर मुख्ख सघूमिय ।
सुवृप सप्प सविता स्तप्त, गगा गति वक्रिय ।।१।।

नग मेर किरपण कुबेर, इक अख असुर-गुरु ।
नाच नीर नीरस समीर, पीर नहीं परमेसवर ।।२।।

ब्रह्मा कुलाल श्रम कुद्ध हर, नृपति नास पृथुदास शठ ।
सब दोप सबै विठ्ठलेश विण,हसगमणि ताइ दोप हठ ।।३।।

मन मृग भुवन वन अंतरहि मुखिमाया वल्ली घर।
मुन चर नखे भय करे, त पेम हरि समरे ॥४॥

मोह पास परजळ बोध दावानळ लग्गो।
अगनि लोभ ऊभर्म सघण संतोष स भग्गो॥
डसे नागि वरागि काम पारधी मरम हि।
हणेस बाणि गियानि काळ लवाळ उर महि॥
मजर पुह्प आणदमय चहू मग्गे लग्गो चरण।
मन मृग थिया जीवण मुगत तो पसाई वसुदेव तण ॥५॥

विना तूझ वेदा निगरम गोविंद गदाधर।
सुवि सधार ग्रनीया सुरिंद्र ग्रहण उधोर गिरवर॥
करि कुभाव मम कन्ह भाव दे भगत परायण।
गुण गहन गोपाळ निज्ज नामी नारायण॥
श्रेवता करता सखधर काइ निछेछ कमळा-रमण।
छोडिस्य मूझ बळि छेतरण कहि क्रिसन वीजो कमण ॥६॥

अमत लता जे लहै कोई मदार प्रयास।
पारिजातक तजै कोई कडुवा तन वास॥
सीतळ छाया मेल्हि धूप को बसे पथरि।
राभति सुख सेझ सुव को बाउळ मथरि॥
तन प्राप आपर जाणत सुख तज को दुख सहै।
ताहर नाम हरि लभ्भत कोइ नाम बीजो कहै ॥७॥

पाखंड पिंड गयो ध्यान चको गइ धारण।
हीण भत्ति हाहून कम नही जाण कारण॥
ऊपरि होइ ओडिय आप नीवे अविनासी।
केही परि हो ग्रसन जीव रो जोखम जामी॥
आतीय आति भाज नहीं देव दुहली वारडी।
ओ रोग अमगळ ऊपनो ग्रहि हो गोविंद गारुडी ॥८॥

तू कोमळ तू कठिण तू हिज मनहर मन रखण।
तू अतृपत तू तृपत तू हिज वेकल्ल विचख्खण॥
तू दुरजण तू सजण तू हिज जोवण जर आगति।
॥
अधार तू हिज उद्योत तू तू हिज हेक त्रिभुवण तळ।
गोविंद मह हवि गुनह विणि छोडि वध छेह मळ ॥९॥

लाख सिध केहरी एक जबक ग्रहि ल्याव।
दुयण दम्वि भूतस तज कोमड पलाव ।।
सेस नट भुग्र भार भगति प्रह्नाद न माव।
बलि राजा हरि चरण छाडि अवरा चित लाव ।।
रवि किरण पेखि जग तम रहै दव हेमाचळ प्रज्जळै।
हरि हरि पुकार सारगधर जा सिरताज न सभळ ।।१०।।

लोभ मोह जळ वहल लह त्रिस्णा अनिमधी।
कुमति फण ऊछळ अगम चिता तट बधी ।।
काम क्रोध अति रौद्र ग्राह तै सगि मज्जिज।
नही सुचित्त बोहिथ जेणि अवलबि तरिज्ज ।।
माया समुद्र गोपाळ हरि द बूडत आलबयण ।।
करता अनत पाख न को सभा मित्र बधु सयण ।।११।।

वासनीयै अन्न विपुळ होम कीधा हाथाळै।
लक बभीखण थप्पि परम निज वाचा पाळ ।।
अरिजण ओळग त सामरथि होइ सखाए।
अबरीख करि अमर आप अवतार हि आए ।।
बाछलो भगता तू विसन आग भगत उवधरी।
आसगा तेणि लागो अनत श्रीकम ओळग ताहरी ।।१२।।

जाप चरण जयदेव नामदे अहेय निरत्ता।
सुकदेव हि साहीय रगि जे पाडव रत्ता ।।
प्रीति कर प्रहलाद आवि रहियो जां ओल।
आल जे आविया ब्रह्म दिन सोह्या बोल ।।
आसगो तेणि लागो अनत किम न छाड तासकर।
अमवास हूत बीग्रेह्य चरण तक म चक्रघर ।।१३।।

गोकळ तम्ह गोपाळ तइ गोवाळ तुह्यरा।
वेहि लार बाछरू हुए अम्ह मा तो हारा ।।
चूरण कस चालीया तई पेखिवा तमासै।
हुव लार हालिया परम जण तोरा पास ।।
गाजियो कस गुणि गहक्यिा खडवा होण विमरो।
अम ठेलि म हू तोरा पगा हरि तोरा वारतरी ।।१४।।

नाद मूळ थड वेद डाळ अढार पुराणह।
सासत्र। साख प्रसाख पन सवचन प्रमाणह ।।
सातळ अति सुगध गरुव गभोर गमागमि।
अमर असुर अनि अनि भगत बीटियो भुवगमि ।।

वासिया भुवण चउदह विसन वास जास कीरति वळि ।
तिल तिल्ल वार हू हरि तणा बावन चदण ना बळि ।।१५।।

वन सरीर विग्रहे अब आराम उजाडै ।
लाज तेज लावण्य उसण चिता ऊपाड ।।
सकै न को सघारि नाग निरजरा निसाचर ।
भैरव रूप रौद्र तास सिव हरै धनधर ।।
ससार ईस जपै सयळ नर पारधी तत्तविण ।
वाराह उर भजण हरि तू समथ्थ निरदुद विण ।।१६।।

वप वन अतरि वस फिर दह दिसि चाहतो ।
दया अगो मारत क्रोध पारध्ध करतो ।।
केरि चित्र लगूल भ्रम पत्तण उजाड ।
माया छरा उभारि त्रपा वाराह विभाडै ।।
हुव द भजन धानखधर जीहा करत फालियो ।
हरि नाम खग्ग प्राहार विणि पाप सिंघ के पालियो ।।१७।।

मित्र वधु मावित्र निमध जाणियै निरतर ।
स्वारथ हि सनमधि छूटिजाइ है कलेवर ।।
पाच बध ऊवध साम जीतै सु कळपण ।
सोने वूहे रेत जरा आई ग जोवण ।।
आधार पख धर उद्धरण पख थभ थभण गयण ।
दुहिले ज हथवाही दियण सु कुण निरजण तूझ विण ।।१८।।

कुलरि नह अगुली बोर मोखण नर विणकर ।
कट्टारी नह कवच बाथ सुण आवी नाहर ।।
प्रमदा विभचारणी रग प्रिय सरम न खेली ।
चौ गाऊ चलियो जरा विरध तन वेली ।।
जगदीस किया जाइजस्य जीवण क्मि जीवीजिस्य ।
मौ पुरस कूप अतरि सलिल प्यास तास किम पीजिस्य ।।१९।।

सखासुर सघारि मच्छि सायर माणिज्जै ।
मेर कोम उद्धोर धरा वाराहि धरिज्ज ।
हरिणाकुस पाघर खेत्रि नरसिघ वहिज्ज
बळि बायणि बांधीज धरा फरसधर दिज्ज ।।
सधारि कुभ रामण सहित लका रामव लुट्टियं ।
विपरीत काळ आगा विसन तू छुडावि त छुट्टिय ।।२०।।

मधुकैटभ हरिणख्खि हरिणकस्यप सघारिय ।
नृग राजा रिखि वघू रेण तन रूप सभारिय ।।
द्रुपदसुता समरिया सभा कौरव मझ्झारिहि ।
पत राखी पूरिया चीर दीठा ससारी हि ।।
बळि द्वारि हुवा तुच्छहु बहुत ढाकेय जा श्रबर घरणि ।
यो तूफ मूफ राजा श्रनत सोमनाथ राखै सरणि ।।२१।।

---

(१)

१ कवडी – कौडी । साट – बदले मे । विभो – १ वैभव २ घघा । किसो – कौनसा । श्राउ – श्रायु । किती – कितनी । कूद – नाच कूद करता है, तोफान करता है ।

२ ब्रह्माइ – ब्रह्मा भी । गरढो – वृद्ध । तसमात – श्रत । थियो – हुश्रा ।

३ माडियो – लिखा । वहि श्रायो – १ चला श्राया २ प्राप्त हुश्रा । पहला छेह – श्रायु की श्रवधि का प्रथमान्त-काल । तब्योह – कहा गया है । भाळ – ललाट । पचासै – पचास वष की श्रायु मे ।

(२)

१ हस सुता – यमुना । हरणाखी – हरिणाक्षी । हाल – चलो । हेरणहारी – तलाश करने वाली ।

२ गेल मे – माग मे । चूप किया – उमग से । चागर – १ वार्तालाप, २ मिलन । रीधी – प्रसन्न हुई । बोहू – बहुत ।

३ सीख – १ शिक्षा, २ छुट्टी । सहेल – सखा । गहेली – पायल । वार – देरी । वहेली – शीघ्र । हेला किया – श्रावाज दी, पुकारा । हेली – सखी ।

४ सावळ – १ श्यामल, २ श्रीकृष्ण । दोख – दोष कलक । हसी – निंदा ।

५ नजर – नजर । रहिया ऊभा – खडे रहे । दीठा – देख लिये । हम – श्रब ।

६ जोवती – देखती हुई । जोवती – युवती । श्रव सपूर कुम – पानी के भरे हुए घडे को उठाई हुई । कामण – कामिनी । वाट – १ माग, २ प्रतीक्षा । बोहवती – १ गुण श्रागरी, २ रूपवती ।

(३)

१ सुखरास – श्रानन्द केलि । खवास – सेवक । मोकळा – श्रत्यधिक । पख – विना । कलिया – हे पिता कल्याणमल ! (श्रादर सूचक ऊन सना) । श्रकाम – सुकृत्य किये बिना ।

२ मुळकती – मुस्कराती हुई । चौ – का । वाघो – बँघा हुश्रा । जमारो – जीवन । हार गयो – खो दिया ।

३ हास हसता धोळहर – सुदर बेलि गृह । रासत – लीन । पयाण लाब – बडे प्रयाण के समय मृत्यु के समय । जुहार – राम राम, जय श्रीकृष्ण, विदाई का प्रणाम ।

४ कडूबो – कुटुम्ब । हेक पुळ – एक पल भर भी । चापरि करें – शीघ्रता से । काढो काढो – जल्दी निकालो ।

५ असिया – घोडे । मदमर – हाथी । खळहळना – पाँवो की साँकल को खड खडाते हुए । महमत – मदमस्त । व्हालो – प्रिय । पाळो – पदल । हालियो – चला ।

६ महळी – पत्नी । पण – भी । फळमा लग – द्वार तक । लग – तक । किणिय न – किसी ने भी ।

७ ताती झळिया – तप्त ज्वालाएँ । घडी घडी कर – चुन चुन करके । तडो – लकडियाँ । धीबियो – पीट दिया । वडी वडी – अग प्रत्यग, बोटी बोटी । बाळियो – जला दिया । वप – शरीर ।

८ भणहणता – गुजार करते । रजियो – १ प्रस्थापित हुआ, २ सज्जित हुआ सजाया गया । पुगरणें – वस्त्रो से ।

९ खाटी – उपार्जित की हुई । दाटी – गाड दी । घर खोदी – जमीन खोद कर । हेक सिळी – एक तृण भी । पवन – प्राण वायु । पवन विच पठो – पवन म मिल गया । माटी – शरीर । माटी माहि मिळी – मिट्टी म मिल गई ।

(४)

१ सपक – कीचड सहित । सुर मुख – अग्नि । सधूमिय – धुआ युक्त । सुवृप – चदन वृक्ष । सप्प – सप । सतप्प – तापयुक्त ।

२ असुर गुरु – शुक्राचाय ।

३ कुलाल – कुम्हार । हसगमणि – सरस्वती ।

(५)

१ रुद्ध – रोकी हुई, बद । पत्त – पत्ता । अयास – आकाश । नयर – नगर । निवळ – निबल । भणि – कहता है । प्रथ – पृथ्वीराज । विसभरह – विश्वम्भर । दुरमद – अभिमानी उन्मत्त, खोटा गव । दत्त – दान । विहि – विविध । कलित – सुदर, फँसा हुआ ।

२ आसनी – निकट, आसन्न । हूती – थी, से । कोहोर – कोस, कुँआ । वहती – बहती हुई । चीडा – काँटों मे, जगल मे दुजनो के साथ । न कीधो – नहीं किया । वासियो – इच्छा की । वाखाणियो – प्रशसा की । विणि – बिना ।

३ कम्माणि – कर्मों से । कम्म – कम । काइ – काया, शरीर । मैल – पाप । इद्रियायण – इद्रियो से । परसण – स्पश । महिलाण – महला से, स्त्रियो से । राखि राखि – रक्षा करो, रक्षा करो ।

४ त्रसना – तृष्णा । झळ – अग्नि । लकाळ – सिंह । सीगणि – धनुष ।
नख – पास मे । सभरै – याद करे ।

५ परजळ – जलती है । ऊझमै – सुलगता है, पदा होना है, शान्त होता है ।
पारधी – शिकारी । पुहप – पुष्प । पसाई – कृपा ।

६ उधोर – उठाने वाला । श्रेवता – सेवा करते हुए । निद्धेढ – नि शेष ।

७ वाउळसयरि – बबूल (के कांटो) का बिछौना ।

८ भत्ति – भक्ति । ग्रोडिये – चिनिगे । जोखम – भय । जासी – जायगा ।
भाजै नही – मिटे नहीं । दुहेलो वारडी – कठिन समय म ।

९ वेकल्ल – विकल । विचख्खण – विचक्षण । जोवण – यौवन । जर – जरा ।
उद्योत – प्रकाश । तळै – नीचे मे ।

१० जम्बक – जबुक, गीदड । दुयण – दुजन । कामड – धनुष । भुम्र – भुव, भूमि ।
दव – अग्नि ।

११ वहल – बहुत । अनिमधी – अपार । बोहिथ – नाव । बूडत – डूबते हुए को ।
आलबण – सहारा ।

१२ ओळग – भक्ति । उवधरी = उद्धार किया । आसगो – सबध, साथ आशा ।

१३ ओल – शरण । किम – कसे ।

१४ वाछरू – बछडे । चूरण – मारने को । गाजियो – मार दिया । गहक्रिया –
प्रसन्न हुए । विमरी – विमर मे । ठेलि म – धकेल मत । वारतरी –
न्योछावर ।

१५ डाळ – शाखा । पन – पत्ते । वीटियो – लपेटा । वासिया – बसाये ।

१६ उसण – उष्ण । निरजरा – देवता । तत्तखिण – तत्क्षण । समथ्थ – समय ।

१७ वप – शरीर । दह दिसि – दसो दिशाओं मे । पारध्ध – पारधी । लगूल –
वदर लगूर । त्रपा – लज्जा । विभाड – नाश करता है । छरा – सिंह का
पजा । धानखधर – धनुषधारी श्रीराम । जीहा – जीभ से । खग्ग – खडग ।
पालियो – रोका ।

१८ मावित्र – माता पिता । निमध – निर्मित, बनावटी । सनमधि – सम्बन्ध ।
ऊबध – खुले हुए । ग – गया । जोवण – यौवन । गयण – गगन ।
हृथवाही – सहारा ।

१९ कुलरि – कुल्हिया । मोखण – प्राण को, छुटकारा । विणक्र – चिन कर ।
बाथ – बाहुपाश, भिडन । विभचारणी – व्यभिचारिणी । रग – बलि ।
घो – धार । गाऊ – कोस भर की दूरी दो माइल । जरा – वृद्धावस्था ।
विरध – वृद्ध । किया – कहाँ । किम – किस प्रकार । जीवीजिम्य – जीवित

फुटकर

दीया है जग मे भला, दीया करो सहु कोय ।
घर मे धरयो न पामिय, जे कर दीया न होय ।।१।।

दीया का गुण तेल है, दीया की वडि बात ।
दीये उजाळा हुई रहै, दीये विहूणी रात ।।२।।

अखर एक परिणाम दुइ, कहत प्रिथु कवि हेर ।
ऊ घर दीया ऊ कर दीया, कज्जळ उज्जळ फेर ।।३।।

चित चकमक छाती पथर, काम अगनि कप गात ।
नयण सघण बरसत नही, पिथ तन पर जळ जात ।।४।।

प्रिथु मोतन की माल है, प्रोई काचैं तागि ।
जतन करो झाटा बहुत, तूटेगी कहु लागि ।।५।।

चकवा चातक चतुर नर, तीनु रहत उदास ।
खर गुघू मूरख गिथळ, सदा सुखी प्रिथुदास ।।६।।

---

१ दीया = दान । पामिय = प्राप्त होता है ।

२ गुण = लाभ । (तेल है अथवा) ते लहै = वह प्राप्त करता है । विहूणी = विहीन ।

३ अखर = शब्द । परिणाम दुइ = श्लेष मे दो अर्थ । घर दीया = पृथ्वी मे गाड लिया । कर दिया = दान किया ।

४ पिथ = पृथ्वीराज ।

५ प्रिथु = पृथ्वीराज । प्रोई = पिरोई । झाटा = झटके ।

६ गुघू = उल्लू । गिथळ = पागल हिजडा ।

रहा जायेगा । जाइजस्य = जाया जायेगा । पुरस = साढे चार हाथ की एक नाप, पुरसा ।

२० सायर = सागर । माणिज्जै = आनद करते हैं । मच्छि = मत्स्यावतार । मेर = मेरु पवत । कोम = कूर्मावतार । उद्धोर = उद्धार । वाराहि = वाराहवतार । पाधर = समाप्त करते हैं । खेत्रि = युद्ध करके । वायणि = वचन से । फरसधर = परशुराम । आगा = द्वारा से । विसन = विष्णु ।

२१ रिखि वधू = ऋषि पत्नी । मझ्मारिहि = मे । पत = प्रतिष्ठा, प्रतिज्ञा । दीठा = देखे । बहुत = बहुत । ढाकेय = ढक दिया । जा = जिन्होने । यो = वह । तूझ-मूझ = तेरा और मेरा सभी का । सरणि = शरण मे ।

हरि सुमिरण उपदेश व आत्म निवेदन

(१)

प्रथि हरि तजि गुण मानवा, जोड किया जतन्न
जाणि चित्त भ्रम बधिया, गळ गादहा रतन्न

(२)

प्रिथु जु में अवरा पुण, गुण छडै गोपाळ
माणक गुथ मोताहळा, मड गळि घाती माळ

(३)

हता हरि अवडा हितू, काइ न भजे असन्न
चिदानद छड चलण, मडें अलिगण मन्न

(४)

हरि परिहरि करि अवर सू, आस विलबी आनि
तर छड लागी लता, पथर च गळ जानि

---

१ मानवा — मनुष्यो के। जोडं — काव्यबद्ध किये। जाणि — मानो। चित्त-भ्रम — पागल। गळ गादहां — गधे के गले म।

२ अवरा पुणे — दूसरों के गुण गाये। मोताहळा — मोतियो की। मड गळि — मुर्दे के गले मे। घाती — डाली, पहनाई।

३ हता — थे। अवडा — इतने। काइ — कोई। असग्र — मरयु। न भज — नही टाल सका। चलण — चरण। अलिगण — सहेलियाँ।

४ अवर सू — दूसरे से। आनि — दूसरी ओर। च गळ — के गले में।

पाठान्तर—

३ हुवै हरि इवडे हितू काइ न भजै अधन।
चितामणि छंडै चलण मड आलिगे मन॥

४ आस विलूधी आणि।
पापर क गल जाणि॥

(५)

वीथि हरि वीसारि करि, अनि सभर अयाण
रति छडे पति आपणे, जारि विलूधी जाण

(६)

प्राणी अनकारा पुहवि, गोविंद छड न गठ
तूंबी तज सायर तरीस, कावर वठे कठ

(७)

तूंबी ही तारण समथ, जळ ऊपर पाखाण
ताइ तरीय जग तारणै तइ केहा वाखाण

(८)

प्रिथ दास प्रभु जे विमुख, विमुखे रसण रसति
ताई पखाळी जनम हलि, सिर धुणि हाथ घसत

(९)

प्रिथ भुपद पक्ज पमकि जे सचर सहारि
भुवण भवता भुवण जिम, पगो न पडिया पारि

---

५ वीथि = मार्ग । सभर = याद करता है । अयाण = अजान, मूर्ख । आपणो = अपना । जारि = जार पुरुष के । विलूधी = लिपट गई ।

६ अनकारा = वीरा को । तरीस = तिरेगा । कावर = किस प्रकार । कठ = किनारे ।

७ समय = समय । पाखाण = पत्थर । वाखाण = प्रशसा ।

८ रसण = रसना । रसति = रस लेता है । पखाळी = पक्षी ।

पाठातर—

५ वाचा हरि विसारि करि ।

६ प्राणी अनिकारा पहवि गोविंद छंडि म गंठि ।
तू बी तजि साइर तिरसि काकर बध कठि ॥

८ त्रिपे रसणि रसति ।
ताइ पखीली जनम महि ।

९ पथ प्रभपद पंकि प्रमुख पै सचरै संसार ।
भ्रमणि भमती भुयण ज्यम पग न पडियो पार ॥

(१०)

साइ हरि आप न सपदा, साइ सपदा न सपि
जिणि सपजि तू वीसरइ, बुधि वुझावइ झपि

(११)

म नेंढे पून वहु, तू वडा प्रभु साह
साती सेती वीनती, प्रिय सहि जी मुन्ह

(१२)

मानवती वर्णन

पूयो पूरो उगवे, वदीजे बीयण
पृथी नवल्ले रञ्चणी, केहो दोस पियेण

(१३)

प्रवत्स्यत्पतिका

पियु विछुरत प्रियदास सुनि, इहि काम सरि सिद्धि
मा हियरा महवाल जिम, रहे दुहगा विद्धि

(१४)

हरि बिछुरत निकस्यो नही, प्रेम लजावन प्राण
लाइक होइ न दुखन को, अब हू ढत फिरौ मसाण

(१५)

आगमिष्यत्पतिका

पोवण प्रसत प्रसन मन, अग दीवले उजास
साजण साम्हा साजणा, परदेमा प्रयीदास

आप न — मत दे । न सपि — मत दे । जिणि — जिसके । सपजि — प्राप्त होन से । वीसरइ — विसर जाता है ।

नेंढे — छोटा — साती सेती — तेरे से ।

पूयो — पूर्णमासी को । वन्दीजे बीयण — द्वितीया (के चद्र) को वदना की जाती है । नवल्ले — नये को । पियेण — पति को ।

दीवले — दीपक से । साजण — पति ।

न्तर—

।• साई आवि न आपन्, साई सपन् म सप।
जिणि सुणी तू वीसर, वृझ बुझाव झपि ॥

(१६)

एकागीलगन

मो मन तो रस सौं लग्यो, तो तन नैंकु भिदै न
ज्यो पृथिराज हि मत्र बळ, सस्त्र घात लागे न

(१७)

सज्जन वारौं कोट इक, या दुरजन की भेट
रजनी का मेळा किया, विहि का अक्षर मट

(१८)

मन अश्व भाव

प्रिय प्रभु पयो प्रेम को, नयने दीप दिखाइ
मो मन लगा तुरग जिम, ज्यु खचे त्यु जाइ

(१६)

ज्ञान भाव-

वसती ते ऊजर भई, ऊजर तें फुनि वास
इह जुग अरहट की ,घड़ी, देखि हस्यो पृथुदास

(२०)

एक सबद मे सब किया, यसा समरथ सोइ
आगे पीछे जो करैं, जा बळ हीना होइ

(२१)

खिण वसती ऊजड कर, खिण ऊजड जित घास
यह जुग अरहट की घडी, देखि डर्‌यो प्रिथदास

(२२)

मन कहिया चित्त न कर, चित क्रित करै सु होइ
इन दुहुवन झगरो परो, प्रिय प्रभु कर सा होइ

---

१७ मळा — मिलाप। विहि — विधाता।

१८ तुरग — घोडा। जिम — की भाँति।

१६ ऊजर — आबादी रहित। फुनि — वापिस। वास — वस्ती। इह जुग — यह ससार। घडी — लुटिया, घरिया।

२१ खिण — क्षण म। ऊजड — वीरान। जित — पृथ्वी।
चित क्रित — चित्त का किया हुआ। परो — पड़ा।

(२३)

सज्जन भाव

प्रिय गाढ गाढत वढं, दहत न देत दुरार
ए तीन ताइ पारीखिया, कचन सज्जन सार

(२४)

पृथि गढं गाढो वढत, दहत न देत दरार
ए तीनो तीय परखीय, सज्जन सोनो सार

(२५)

प्रियीदास पाणी विसन, छडी म व्रन विलोइ
पाथर पाल्हविसी नहीं, ग्रमी सीचसी तोइ

(२६)

प्रिथि काहे कूवा तकउ, तजि हरि मदिर द्वार
वेस साह पकरीजिसउ, करत चोर विवहार

(२७)

ग्राली मोरा ग्रवगुणा, साहिब केर गुणांह
वूद वरिक्खा रेण-वण, पार न लम्भ ताह

(२८)

मन चित ग्रर जीव जक, ए सभ तुम ही पास
देही भवइ विदेस कू, तउ कहा भव प्रियदास

(२९)

प्री वि उरत प्रिथिदास सुनि, इहइ काम सर सिधि
मो हियरउ मह वाल जिम, रह य दहुगा विधि

---

२३ गाढत वढ – घडने (ठोकने) से बढते हैं। न देत दुरार – घटते नहीं फटते नही। ताइ पारीखियां – ताप द्वारा परीक्षा करने पर। सार – हीरा।

२५ पाल्हविसी नही – भीगेगा नही। ग्रमी – ग्रमत। सींचसी – सींचेगा।

२६ पकरीजिसउ – पकडा जायेगा। विवहार – व्यवहार, काम।

२७ केर – के। वरिक्खा – वर्षा। न लम्भं – नही पाता है।

२८ देही – देह। भवइ – फिरती है। भव=जीवन।

२९ प्री – प्रिया। काम सर – काम वाण। दहुगा विधि – दोना प्रकार स विध गये।

(३०)

जे मैं घण अवगण किया, तो नेलो तू हथ्थ
तू अवगण सदो औक्मा, तू ही कानळि नथ्थ

(३१)

गुरड गुरडधुज पलक मे, जोयण लख्ख ज जाइ
माठौ जाण छडियौ, जण धावत सिहाइ

(३२)

माहव मिले असगणे, जा जगदीसर तोइ
तो प्रथु मुख मगण तणौ, खरो दुहेलो होइ

(३३)

मल माया अैठी मडळी, सुणि पृथुदास सुवस
जे लगै तो कग्गलो जे छडै तो हस

(३४)

भावी अक निलाट पट, लिखी करम कृत जास
नन सज्जन नन दुरजना पळ न मिट प्रिथिदास

(३५)

जात वळ नहिं दीहडा, जिम गिर निरझरणाह
उठ रे आतम धरम कर, सुव नचिंतो काह

(३६)

जात वळतइ सासडइ, जो दीजइ सो लब्भ
विचि ही वाव विलावसी, राख थयेसी सब्भ

---

३० अवगण — औगुण । सदो — का । कानळि — हे कान्ह । नथ्थ — नाथ डाल दे ।

३१ जोयण लख्ख — लाख योजन । माठौ — मद । जण — भक्त ।

३२ माहव — माधव । असगणे — साहस करने से । जा — जिन्हे । मगण — भिखारी । दुहेलो — कठिन ।

३३ अैठी — उच्छिष्ट, जूठी । कग्गलो — कौआ ।

३४ नन — नहीं ही, नही कभी । पळ — पल भर के लिये भी ।

३५ वळै नहीं — लौटते नहीं । दीहडा — दिवस । निरझरणाह — झरने । धरम कर — कर्त्तव्य पालन कर ।

३६ जात-वळतइ सासडइ — स्वाच्छोस्वास लेते लेते ही । लब्भ — लाभ । वाव — प्राण वायु । विलावसी — विलीन हो जायेगा । थयेसी — हो जायेगी ।

पाठान्तर—

३० तो गुण बदो ओक्मा, तु कान्ह ले नथि ।

३१ जोजन लाखां जाइ, धण धावतां सहाइ ।।

महाराणा प्रताप

रा

दूहा

महाराणा प्रताप रा दूहा

जब तक इस भारत भूमि पर एक भी हिंदू जीवित रहेगा हिंदू सूय महाराणा प्रताप का नाम सदव गौरव व श्रद्धा के साथ लिया जायेगा । उन्होंने अपन शौर्य व त्याग स मत प्राय जगति मे जागृति के प्राण फूक कर उसे वीरोचित जीवन जीना सिखा दिया था राजस्थान के सारे राजा महाराजा जब एक एक कर अकबर की प्रचण्ड शक्ति के सम्मुख नतसिर हो गये थे, तब बीहड जगलो मे भूखा प्यासा रह कर भी इसी स्वतन्त्रता के दीपक को अपने राज्य सय और परिवार के सदस्यो का बलिदान देकर भी उस भीषण तूफान से बुझने से बचा कर रखा यह अकेली ऐसी गौरव गाथा है जो इतिहास मे सदैव स्वर्णांकित रहेगी तथा हमे हमेशा अनुप्राणित करती रहेगी

ऐसी दशा मे राजस्थानी हिंदी, गुजराती, बगाली आदि भारतीय भाषाओं मे महाराणा के व्यक्तित्व पर प्रचुरता से लिखा जाय तो कोई आश्चय की बात नहीं है इसम भी राजस्थान के तो ऐसे बहुत कम कवि होगे जिन्होंने महाराणा प्रताप पर एकाध दोहा या गीत न लिखा हो फिर महाराज पृथ्वीराज, जो महाराणा प्रताप के निकटतम सबधी होने के साथ साथ वीरो की प्रशस्ति के गायक थे, कसे अछूते रह सकते थे उन्होने मात्र दो सोरठो का एक ऐसा पत्र लिखा, जिसने न केवल महाराणा की क्षणिक कायरता का विनाश कर दिया बल्कि ऐसा वीर रस का सचार किया कि जिसने सारा इतिहास ही बदल दिया—

> पातळ जो पतिसाह, बोल मुख हूता बयण ।
> मिहर पिछम दिस माह, ऊगै कासपराव उत ॥
> पटकू मूछा पाण क पटकू निज तन करद ।
> दीजे लिख दीवाण, इण दो महली बात इक ॥

[हे महाराणा प्रताप ! यदि आपने अकबर को अपने मुख से बादशाह कहा है तो समझलो कि अब सूय पश्चिम दिशा मे उगने लगा है हे उदयपुर के दीवान ! आप मुझे इतना लिख कर बता दीजिये कि क्या मैं आपकी गौरव मडित-गाथा पर अपनी मूछो पर ताव दे कर अभिमान प्रकट करू या फिर अपनी ही तलवार से आत्मघात कर लूँ]

पत्र का अनुकूल प्रभाव पड़ना ही था महाराणा ने पृथ्वीराज के पत्र का जो उत्तर दिया वह भी एक ऐतिहासिक धरोहर के रूप मे भारतीय जनता के पास रहगी महाराणा ने लिखा कि अकबर के लिये मेरे मुख स सदव तुक शब्द ही प्रयुक्त होगा और इसलिये हे पृथ्वीराज आप निभय होकर मू छो पर ताव दें

उपयुक्त दो सोरठो के अतिरिक्त चौदह दोहे-सोरठे और हैं जिन्हे पृथ्वीराज ने महाराणा प्रताप की प्रशसा मे कहे थे कवि ने उनका यशोगान करते हुये लिखा है कि यद्यपि महाराणा प्रताप जगलो मे पहाडो पर रहते हैं, फिर भी अपने स्वाभिमान का त्याग नही करते है पहाडो मे निवास करते हुये भी वे अनेक राजाओ से घिरे रहते हैं—

> धर बाकी दिन पाधरा, मरद न मूकमाण।
> घणा नरिंदा घेरियो, रहै गिरदा राण॥

प्रताप जैसे पुत्र को अपनी कोख से जन्म देकर कौन माँ गौरवान्वित नही होती ? उसके प्रताप का देख कर अकबर जसा शक्तिशाली सम्राट भी एस चौंकता है जैसे सिरहाने साँप आ गया हो—

> माई एहा पूत जण जेहा राण प्रताप।
> अकबर सूतो ओझक, जाण सिराणै साँप॥

राठौड वीर दुर्गादास जिसकी वीरता और स्वामीभक्ति की तुलना का पात्र इतिहास मे ढूढे नही मिलता, के सबध मे भी इसी प्रकार का एक दोहा जन-मन मे प्रचलित है—

> माई एहो पूत जण, जेहो दुर्गादास।
> बाघ मुहासो राखियो, विण थभ आकास॥

कवि ने कई मौलिक उपमाओ द्वारा महाराणा प्रताप के अस्त्र प्रहार का सुदर शब्द चित्र अकित किया है उनके द्वारा फेंकी जाने वाली बरछी जब शत्रु के कवच को भेद कर बाहर निकलती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो मछली न जाल मे से अपना मुँह निकाला है—

> वाही राण प्रतापसी, बगतर म बरछीह।
> जाणक भीगर जाळ मे मुँह काढयो मच्छीह॥

यही बरछी जब आतों को लेकर बाहर निकली तो कवि ने वीभत्स रस से युक्त क्या ही भव्य उपमा दी है आतो को लेकर निकली हुई बरछी ऐसी लगती थी मानों दर में से मुँह मे बच्चों को लेकर निकलती हुई सर्पिणी—

> वाही राण प्रतापसी, बरछी लचपच्चाह।
> जाणक नागण नीसरी, मुँह भरियो बच्चाह॥

जबकि अन्य राजागणो ने अपने अपने मुकुटो, साफो, पाघो आदि को अक्बर के चरणो मे झुका कर उसकी आधीनता स्वीकार कर ली थी तो उस समय समूचे देश मे एक ही तो ऐसा व्यक्ति था, जिसके सिर पर अनझुकी पाघ रही. कवि ने कितनी विलक्षणता से इसे व्यक्त किया है—

चौथो चीताडाह, बाटो बाजती तणो ।
माथै मेवाडाह, थारै राण प्रतापसी ॥

उपयुक्त दोहे मे कवि न घडी के चौथे भाग अर्थात् पाव घडी (पा घडी) का उल्लेख कर कूटार्थ के माध्यम से छद मे चमक उत्पन्न कर दी है

जबकि देश के सभी छोटे बडे राजागणा ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी, केवल प्रताप ही ऐसे नर सिंह थे, जो अत तक स्वतत्रता का गजन करते रहे—

सहु गोघळिया पास, आळूधा अक्बर तणी ।
राणो खिम न रास, प्रबळो साड प्रतापसी ॥

इस प्रकार मात्र चौदह दोहो मे कवि ने महाराणा प्रताप के चरणा मे जो श्रद्धा सुमन चढाये हैं, वे किसी सामान्य कवि के अधिकार की बात नही है उनके एक एक छद नव नव भावो व नई नई उपमाओं से मडित है, जो गागर में सागर भरने मे समर्थ हैं

———

प्रताप रा दूहा

(१)

पातळ जो पतिसाह, बोलै मुख हूता वयण
मिहर पिछम दिस माह, ऊगै कासप रावउत

(२)

पटकूं मूछां पाण, कै पटकूं निज तन करद
दीजै लिख दीवाण, इण दो मेंहली वात इक

(३)

घर बाकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण
घणा नरिंदां घेरियो, रहै गिरंदा राण

(४)

माई अहड़ा पूत जण, जहड़ा राण प्रताप
अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणै साप

(५)

चोथो चीतोडाह, वांटो वाजंतो तणो
दीसै मेवाड़ाह तो सिर राण प्रतापसी

---

१ पातळ = महाराणा प्रताप। मिहर = सूर्य। पिछम = पश्चिम। हूता = से। कासपरावउत = सूर्य।

२ पटकूं मूछां पाण = गर्व से मूछों पर हाथ धरू। कै = या। करद = तलवार। दीवाण = मेवाड के महाराणा, महाराणा प्रताप।

३ दिन पाधरा = अनुकूल समय। न मूकै = नहीं त्यागता है, नही छोडता है। माण = मान, स्वमान। नरिंदा = राजागणो ने। गिरदां = पर्वतो मे।

४ जण = जन्म दे। ओझकै = चौंकता है। जाण = १ जानकर, २ मानो। सिराण = सिरहाने।

५ चोथो = चौथा भाग, पाव भाग। चीतोडाह = चित्तौड के अधिपति, महाराणा प्रताप। वांटो चोथो वाजतो तणो = घडी का चौथा भाग अर्थात् पाव घडी (पाव रुपया) कूट अर्थ मे पाघडी। मेवाडाह = महाराणा प्रताप।

(६)

हिंदू पति परताप, पत राखी हिंदवाण री
सहे विपति सताप, सत्य सपथ करि आपणी

(७)

पातळ खाग प्रवाण, साची सांगाहर तणी
रही सदा लग राण, अकबर सूं ऊभी अणी

(८)

सह गावडियें साथ, एकण वाडै वाडिया
राण न मानी नाथ, ताडै सांड प्रतापसी

(९)

अइ रे अकबरियाह, तेज तुहाळै तुरकडा
नम नम नीसरियाह राण विना सह राजवी

(१०)

पातळ राण प्रवाडमल, बांकी घडा विभाड
खूंदाड कुण है खुरा, तो ऊभां मेवाड

६ पत = लज्जा, सम्मान। हिंदवाण = हिंदुस्तान। सत्य सपथ करि = प्रतिज्ञा को सत्य करके।

७ प्रवाण = प्रमाण स्वरूप। सांगाहर = महाराणा सांगा का वंशज। सदा लग = हमेशा के लिये। ऊभी अणी = युद्ध के लिए सदैव प्रस्तुत।

८ गावडिय = गायों के झुण्ड को। वाडै = वाडा मे। वाडिया = प्रवेश कराया। नाथ = आधिपत्य रूपी नकेल। ताडै = गरजन करता है।

९ तुहाळै = तेरे। नम-नम = झुक झुक कर सलाम करते हुए। नीसरियाह = गुजरे। सह = सभी। राजवी = राजागण।

१० प्रवाडमल = युद्ध प्रवीण, शूरवीर। बांकी = विकट। विभाड = नाश। है खुरां = घोडा के खुरो से, टापों से। खूंदाडै = पददलित करते हैं। घडा = सेना।

पाठान्तर—

७ पाग प्रवाण।

(११)

वाही राण प्रतापसी, बगतर मे बरछीह
जाणक भीगर जाळ मे मुँह काढ्यौ मच्छीह

(१२)

वाही राण प्रतापसी, बरछी लचपच्चाह
जाणक नागण नीसरी, मुँह भरियो बच्चाह

(१३)

पातळ घड पतसाह री, ग्रेग विघू सी आण
जाण चढी कर बदरा, पोथी वेद-पुराण

(१४)

सहु गोघळिया पास, आळूधा अकबर तणी
राणो खिम न रास, अबळो साड प्रतापसी

---

११ वाही = चलाई, फेंकी। बगतर = कवच। जाणक = मानो। भीगर = मछुआ, धीवर।

१२ लचपच्चाह = आँतें। नीसरी = निकली।

१३ घड = सेना। पतसाह = बादशाह। ग्रेम = ऐसे। विघू सी = नाश किया।

(६)

हिंदू पति परताप, पत राखी हिंदवाण री
सहे विपति सताप, सत्य सपथ करि आपणी

(७)

पातळ खाग प्रवाण, साची सागाहर तणी
रही सदा लग राण, अकबर सू ऊभी अणी

(८)

सह गावडियँ साथ, एकण वाडँ वाडिया
राण न मानी नाथ, ताड साड प्रतापसी

(९)

अइ रे अकबरियाह, तेज तुहाळँ तुरकडा
नम नम नीसरियाह, राण विना सह राजवी

(१०)

पातळ राण प्रवाडमल, बाकी घडा विभाड
खूदाड कुण है खुरा, तो ऊभां मेवाड

---

६ पत – लज्जा, सम्मान। हिंदवाण – हिंदुस्तान। सत्य सपथ करि – प्रतिज्ञा को सत्य करके।

७ प्रवाण – प्रमाण स्वरूप। सागाहर – महाराणा सागा का वशज। सदा लग – हमेशा के लिये। ऊभी अणी – युद्ध के लिए सदव प्रस्तुत।

८ गावडियँ – गायो के झुण्ड को। वाड – वाडा मे। वाडिया – प्रवेश कर नाथ – आधिपत्य रूपी नकेल। ताड – गरजन करता है।

९ तुहाळँ – तेरे। नम-नम – झुक झुक कर सलाम करते हुए। ... गुजरे। सह – सभी। राजवी – राजागण।

१० प्रवाडमल – युद्ध प्रवीण शूरवीर। वाकी – विकट। विभाड – नाश। घोडा क खुरा से, टापों से। खूदाड – पददलित करते हैं। यदा

पाठान्तर—

७ पाण प्रवाण।

प्रशस्ति गीत

राजस्थानी साहित्य के मध्यकाल का इतिहास संघर्षपूर्ण रहा है, अतएव डिंगळ का अधिकांश गीत साहित्य वीर रसात्मक ही रहा है राजस्थान मे कदाचित ही कोई ऐसा वीर होगा, जिसकी पुण्य स्मृति मे एकाध गीत की रचना नही हुई हो और क्योंकि ऐसे वीरो की सख्या भी अगणित थी, इसीलिये यहाँ के कवियों द्वारा अगणित गीतो का सृजन भी हुआ ये गीत हमारे देश के लिये एक अमूल्य थाती है जिनमे जीवित और दृष्ट इतिहास सुरक्षित है राजस्थान मे मुख्य रूप से चारण और भाट कवियो तथा गौण रूप से चारणेतर कवियो ने राजा महाराजाओ अथवा आश्रयदाता जागीरदारो की वीरता, धर्मपरायणता, उदारता आदि उदात्त गुणो की गीतो के माध्यम से भूरि-भूरि प्रशंसा की है डॉ० मोहनलाल जिज्ञासु ने इन प्रशस्ति गीतो को दो भागो मे विभाजित किया है[1] प्रथम नैसर्गिक दृष्टि से आश्रयदाता का गुण कथन और द्वितीय अपने उद्देश्य की पूर्ति के साधन के रूप मे दोनो ही दृष्टियो से लिखे गये ये गीत अपने चरित्रनायक के प्रति अत्यधिक सम्मान या स्नेहातिरेक के कारण अत्युक्तिपूर्ण होते हुये भी सर्वथा निराधार नही होकर ठोस ऐतिहासिक पृष्ठिका लिये हुए हैं

चारणी रचनाएँ प्राय प्रपचपूर्ण भाषा मे काव्यात्मक वर्णनों से भरी रहती है बाद के मारवाडी चारणो की तो यह शैली ही बन गई थी, जो डिंगळ भाषा बन गई थी[2] इसी डिंगळ भाषा मे लिखे डिंगळ गीतो का राजस्थानी साहित्य मे अपना विशिष्ठ स्थान है

डिंगळ भाषा मे रचित ये गीत सगीत विधानुसार गेय न होकर वैदिक ऋचाओ अथवा गीता के श्लोको की भाँति सस्वर पढे जाते थे वास्तव मे गीतो का सस्वर पाठ भी एक कला थी, जो अब आधुनिकता की बाढ मे तथा पारपरिक गीतो के निर्माण के अभाव मे लुप्त होती जा रही है इन गीतों का अपना छद विधान है डिंगळ के अब तक अनेक रीति ग्रंथ प्रकाश मे आ चुके हैं इनमे कवि मछ कृत 'रघुनाथ रूपक', उदयराम कृत 'कविकुल बोध' तथा किसना आढा रचित 'रघुवर

---

१ 'चारण साहित्य का इतिहास भाग १ पृ० १६१ ले०, डॉ० मोहनलाल जिज्ञासु प्रकाशक —उज्वल चारण सभा जोधपुर ।

२ परम्परा अक २५ २६ स नारायणसिंह भाटी, जोधपुर पृ० १६

प्रशस्ति गीत

प्रशस्ति गीत

राजस्थानी साहित्य के मध्यकाल का इतिहास सघर्षपूर्ण रहा है अतएव डिंगळ का अधिकाश गीत साहित्य वीर रसात्मक ही रहा है राजस्थान मे कदाचित ही कोई ऐसा वीर होगा, जिसकी पुण्य स्मृति में एकाध गीत की रचना नही हुई हो और क्योंकि ऐसे वीरो की सख्या भी अगणित थी, इसीलिये यहाँ के कवियो द्वारा अगणित गीतो का सृजन भी हुआ ये गीत हमारे देश के लिये एक अमूल्य थाती हैं जिनमे जीवित और दृष्ट इतिहास सुरक्षित है राजस्थान मे मुख्य रूप से चारण और भाट कवियो तथा गौण रूप से चारणेतर कवियो ने राजा महाराजाओ अथवा आश्रयदाता जागीरदारो की वीरता, धर्मपरायणता, उदारता आदि उदात्त गुणो की गीतो के माध्यम से भूरि-भूरि प्रशसा की है डॉ० मोहनलाल जिज्ञासु ने इन प्रशस्ति गीतो को दो भागो मे विभाजित किया है[1] प्रथम नसर्गिक दृष्टि से आश्रयदाता का गुण कथन और द्वितीय अपने उद्देश्य की पूर्ति के साधन के रूप मे दोनो ही दृष्टियो से लिखे गये ये गीत अपने चरित्रनायक के प्रति अत्यधिक सम्मान या स्नेहातिरेक के कारण अत्युक्तिपूर्ण होते हुये भी सर्वथा निराधार नही होकर ठोस ऐतिहासिक पृष्ठिका लिये हुए हैं

चारणी रचनाएँ प्राय प्रपचपूर्ण भाषा मे काव्यात्मक वर्णनो से भरी रहती है बाद के मारवाडी चारणो की तो यह शैली ही बन गई थी, जो डिंगळ भाषा बन गई थी[2] इसी डिंगळ भाषा मे लिखे डिंगळ गीतो का राजस्थानी साहित्य मे अपना विशिष्ठ स्थान है

डिंगळ भाषा मे रचित ये गीत सगीत विद्यानुसार गेय न होकर वैदिक ऋचाओ अथवा गीता के श्लोको की भाँति सस्वर पढे जाते थे वास्तव मे गीतो का सस्वर पाठ भी एक कला थी, जो अब आधुनिकता की बाढ मे तथा पारपरिक गीतो के निर्माण के अभाव मे लुप्त होती जा रही है इन गीतों का अपना छद विधान है डिंगळ के अब तक अनेक रीति ग्रथ प्रकाश मे आ चुके हैं इनमे कवि मछ कृत 'रघुनाथ रूपक', उदयराम कृत 'कविकुल बोध' तथा किसना आढा रचित 'रघुवर

---

१ 'चारण साहित्य का इतिहास, भाग १,' पृ० १६१ ले०, डॉ० मोहनलाल जिज्ञासु प्रकाशक —उज्वल चारण सभा, जोधपुर ।

२ परम्परा अक २५ २६ ले नारायणसिंह भाटी, जोधपुर पृ० १६

जस प्रकास' अति प्रसिद्ध हैं 'रघुवर जस प्रकाश' मे ९१ प्रकार के गीता का उल्लेख है ससार के छद शास्त्रीय इतिहास मे यह राजस्थानी भाषा का ही गौरव है कि उसका छद विधान इतने प्रचुर वैभव मे मडित है डिंगळ गीत की प्रशसा मे कवि नवलजी लालस ने लिखा है[3]—

गीत डिंगल री तारीफ रो

किसू व्याकरण अवर भाखा अनै पराक्रत
ससक्रित तणं क्यू फिरै सागै,
लाख रा ठाकरा तणा माथा लुळै
आखरा तणा गजवोह आग ॥१॥

नायका पाठडा हूत आवै नहीं
लायकाछरा री अतर लाहा,
कोइक विरदायका माय जाणै सकव
वायका – सायका तणी वाहा ॥२॥

तिकण री सीखिया भेद नावै तुरत
सुरत पण पखिया पडै सास,
विधक घणजाण रा माण छाडै वहै
वाण रा जहूरा तणं वास ॥३॥

जोगमाया तणी भगति कीधा जुडै
प्रथी सिर मुड नह विकट पैडा,
सगत रा पुत्र जाणै कोइक वचनसिद्ध
उगत री जुगत रा घाट अैडा ॥४॥

१ आखरा तणा गजवोह – काव्य का चमत्कार ।

२ नायका पाठडा – नायक नायिकाओ के पाठो (काव्यो) म । लायकाछरारो – काव्य मे योग्य अक्षरों को लाने की कला । वायका सायका – वचन रूपी बाणो की । वाहा – प्रहार ।

३ नावै – नहीं आव । सासै – सशय में । विधक घणजाण रा – अनेक शास्त्रो के जानने वाले विदुप । वाण रा जहूरा – वाणि (डिंगल काव्य) का प्रकाश ।

४ विकट पैडा – कठिन माग । सगत रा पुत्र – चारण, शक्ति पुत्र । उगत – उक्ति । जुगत – युक्ति । घाट अैडा – दुगम घाट ।

3 डिंगल गीत पृ० १३ सं० श्री रावत सारस्वत प्र० शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इस्टीट्यूट बीकानेर ।

वास्तव मे इन गीतो के कहने की कला पर कवियो ने बडा जोर दिया है क्योंकि इस कला के बिना सुदर गीत भी प्रभावहीन होकर रह जायेगा किसी कवि ने इसे उचित ढग से व्यक्त किया है—

कवि के अवसर सब सवसर, कछु कहिब मे वण।
वो ही काजल ठीकरी, वा ही काजल नैण॥

ऊपर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि गीत छदो की इस समृद्ध परम्परा मे अनेक कवियो का योगदान रहा है कवि शिरोमणि महाराज पृथ्वीराज राठौड भी उनमे से एक हैं यह सत्य है कि पृथ्वीराज की जितनी ख्याति उनके सर्वोत्तम ग्रथ 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' तथा अन्य भक्ति ग्रथो—'दसरथरावउत रा दूहा', 'वसदेरावउत रा दूहा', और 'गगाजी री दूहा आदि स हुई है उतनी उनके द्वारा प्रणीत गीतो से नही हुई है इसके दो कारण हैं प्रथम तो वेलि की सर्वोपरिता ने सबको इतना मत्रमुग्ध कर लिया था कि अन्य रचनाएँ गौण बन गइ और द्वितीय गीतो की सख्या भी अल्प थी अद्यावधि पृथ्वीराज के उनचालीस प्रशस्ति गात उपलब्ध हुये हैं विभिन्न शूरो और जूझारा की प्रशसा मे कहा गया एक एक गीत कला की उत्कृष्टता का अमूल्य रत्न है, पर भक्त कवि के रूप म प्रतिष्ठित हो जाने के कारण इनका प्रशस्ति काव्यकार का रूप अधिक दमक नही सका एक तथ्य और भी है प्रशस्ति गीत लिखने का कवि का उद्देश्य किसी स्वाथ की साधना के हेतु नही था अन्य दरबारी कवियो की भाँति उन्ह रोटी और रोजी की चिंता नही थी और इसीलिये उनका काव्य अतिशयोक्तिपूण होते हुये भी राज्याश्रित कवियो के काव्य मे सत्य के कही अधिक समीप था उन्हाने न तो कायरो को शूरवीर ही बनाया और न अपनी मौत से मरने वालो को जूझार सिद्ध किया विपरीत इसके उन्हाने अपने कथित अतिशयोक्तिपूण वणन के लिये स्थान स्थान पर 'गळ गादहा रतन' और 'मड गळ घत्ती माळ' आदि कह कर सामान्य मानव क गुण कथन पर पश्चाताप किया है

अल्प मात्रा म ही सही, पर एक बात तो सुनिश्चित है कि पृथ्वीराज अपन समय के प्रसिद्ध गीतकार थे और अनेक विद्वाना न गीत साहित्य में भी उन्ह शीष स्थान दिया है

एक बार जोधपुर के मोटा राजा उदयसिंह ने चारणो के ऊपर कुपित हो, उनके गाँव जब्त कर लिय मारवाड के आउवा नामक नगर म समस्त चारण उनके इस आदेश का प्रतिकार करने के लिए एकत्रित हुये चारणा न वहाँ धरना दिया और उसके पश्चात् परिणाम के अभाव म उन्हान चाँदी की अर्थात आत्महत्याए करना प्रारम्भ किया प्रसिद्ध चारण कवि रामा सादू भी वहाँ था यह कवि मवाड का था और इसे मारवाड मे भी रामासणी नामक गाँव जागीरी मे मिला हुआ था पर जसे ही इसे यह मालूम हुआ कि महाराणा प्रताप पर अकबर की विशाल सेना

मानसिंह के नेतृत्व मे चढ आई है तो धरने का त्याग कर, अपने सनिकों के साथ महाराणा की सहायताथ आ पहुँचा हल्दी-घाटी का तुमुल युद्ध हुआ और वहाँ यह वीर मातृभूमि की रक्षाथ वीरगति को प्राप्त हुआ पृथ्वीराज तो महाराणा के परम प्रशसक थे और जब उन्हान यह जाना कि उनके आदश पुरुष की ओर अपनी मातृ भूमि की रक्षाथ एक चारण कवि ने अपने स्वार्थों को तिलाजली दे अपना जीवनोत्सग कर दिया तो कवि की वाचा वह निकली—

गीत सादू रामै रो प्रिथीराज कहै

गयो तू भला, भला तू न गयो
धिन धिन तू सादवा धणी।[1]
जाड अणी माहैडो जाकळ
अणी करण पातळा अणी ॥१॥

तै लिय आहव राण प्रिजडहथ
ले लाघण सासण न लिया।
साहै ससत्र सालिया सात्रव
कठ सोहै न खालिया किया ॥२॥[2]

[हे सादू कुल श्रेष्ठ ! तेरा धरना देने जाना, नहीं जान के समान हो गया तू प्रताप की सेना की सहायताथ सेना लेकर आ पहुँचा तूने सासण के लिये लघन करना छोडा और गले पर अपनी ही कटारी से घाव न कर (आत्महत्या न कर), तूने युद्ध मे तलवार धारण कर शत्रु सेना का सहार किया, तू धन्य है]

इस गीत के अतिम दुहाले से स्पष्ट हो जाता है कि सादू रामा के पिता का नाम धरमा था— धरमा तणो न बठो धरणै,' तीसरे दुहाल से पता चलता है कि रामा किसी प्रसिद्ध व्यक्ति आवा का वशज था— आवाहरा न बीजा ओपम पृथ्वीराज न इस गीत क माध्यम से रामा म निहित उदात्त गुणो को उजागर कर हमारे सम्मुख एक सास्कृतिक आदश की स्थापना की हैं व्यक्तिगत स्वार्थों से श्रेष्ठ राष्ट्र का स्वार्थ है क्योकि दश सर्वोपरि है रामा इसी आदश की प्राप्ति की हतु अपना सवस्व अपण कर युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हुआ अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाना इस गीत का दूसरा आदश है

इस गीत का भाषायीय स्वरूप परिनिष्ठित डिंगळ होते हुये भी अपेक्षाकृत सरल है इसम सवत्र उत्तम वयणसगाई अलकार के प्रयोग के अतिरिक्त अनुप्रास (सोहै ससत्र सालिया सात्रव) पुनरुक्तिप्रकाश (धिन धिन तू सादवा धणी) विरोधा-

---

१ सादवा धणी — चारणों की सादू शाखा का स्वामी। जाड अणी — बडी सेना।
२ आहव — युद्ध। प्रिजड — कटारी। सात्रव — शत्रु।

भाम (गयो तू भला, भला तू न गयो), आदि अनेक अलकारो का सुदर प्रयोग हुआ है

इतिहास प्रसिद्ध कल्ला रायमलोत के अद्भुत पराक्रम से प्रभावित हो पृथ्वीराजजी ने दो गीतो की रचना की प्रथम गीत व्यक्तित्व शीर्षक के अन्तगत थोडे विवेचन के साथ उद्धृत किया गया है अतएव यहाँ पर कल्ला के जीवन की चारित्रिक विशेषताओ का वणन और द्वितीय गीत सबधी समालोचनात्मक विवरण मर प्रस्तुत करना समीचीन होगा गागा का वशज और रायमल के पुत्र कल्ला अप्रतिम वीर थे एक बार बादशाही नौकरी के कारण इन्हें लाहोर जाना पडा लाहोर मे किसी मनसबदार के आदमी के अपमानजनक शब्द कहने के कारण कल्ला ने उसका सिर कलम कर दिया, पर साथ ही बादशाही-परिणाम की आशका के कारण वे अपने किले सिवाने मे आकर रहन लगे आशका निर्मूल न थी बादशाह ने हत्या का बदला लेने के लिये इनके ही बधु मोटे राजा उदयसिह से कहा इस प्रकार के निर्देश से बादशाह को एक लाभ और होता दोना वीर तथा उनकी सेनाओ का नाश एक तरफ बधु तथा उसके प्रति अपार स्नेह तथा दूसरी ओर शक्तिशाली बादशाह की आज्ञा गुलामी क्या नही करवा सकती ? विवश होकर मोटे राजा ने अपने महाराजकुमार सूरसिह को एक विशाल सेना के साथ आक्रमण करने को भेजा सूरसिह बुरी तरह परास्त हो सामुँह लौट आये इधर इस हार पर बादशाह ने मोटे राजा को कडे शब्दो मे उपालभ दिया और आज्ञा दी कि वह स्वय जाकर उस उद्दण्ड को दड दे निदान मोटे राजा ने आक्रमण किया पर कई दिनों के कठोर घेरे का भी कोई सुफल नही निकला अत मे पोलियो नामक नाई को लोभ देकर गढ मे प्रवेश करने के गुप्त माग का सारा भेद जान लिया मोटे राजा की सेना किले के भीतर प्रवेश कर गई यह देखकर रनिवास की सभी क्षत्राणियो ने तो जौहर कर लिया पर कल्लाजी ने उस समय जो युद्ध किया वह अद्वितीय था सिर कट जाने के बाद उनके धड ने शत्रु सेना का वह घान निकाला जो आज तक सुनने मे नही आया और अत मे वह वीर सवत् १६४५ को वीरगति प्राप्त हुआ

नव चौकिये महळ नीसाणी,
राखी राख कर निय राणी।
कलो मुवो कय अकथ कहाणी
पब्ब सीस चढाय पाणी॥

नव नीसाणी—किले की नौ चौकियो पर अभी तक उनकी रानी का जौहर स्थान पूजित है। राख—सती की भस्मी। अकथ कहाणी—कहानी अकथनीय है। पब्ब पाणी—पवत (अणखले किले) पर यश रूपी पानी चढ़ाकर।

पृथ्वीराज ने युद्ध वर्णन करते हुये कहा है कि एक बार तो सारा संसार भी यदि उसके मार्ग का अवरोधक हो जाय, तो भी राठौड कल्ला निर्भय होकर, बिना रुके क्षात्रधर्म का निर्वाह करते हुये तथा तलवारों से मुसलमान सेना का संहार करते हुए, तलहटी से किले में जाने के लिये पर्वत शृंगों पर चढता गया अपने उज्ज्वल चरित्र से उसने सिवाने के किले को भी यशस्वी बना दिया—

रायमलोत रोद रीसाण,
थुडिया कटक लूबिय थाणै।
रूका मुहै विढत राणै,
सिरगै चल चढियो समियाणै ॥२॥

नमे न निरभय जगत नडत,
खेडेच खत माग खडत।
घायै अरदळ सेन घडत,
चढियो गिरवर नीर चढत ॥३॥

इस गीत में उत्तम वयणसगाई, अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश आदि अलंकारों के साथ साथ 'नीर चढत और चढावै पाणी' आदि रूढि प्रयोगों के द्वारा अर्थ चमत्कार उत्पन्न हो गया है 'खत माग' अर्थात 'रजवट' का उल्लेख कर कवि ने क्षत्रियों के 'प्राण जाहिं पर वचन न जाहिं' जैसे गुणों और उससे उत्पन्न गौरव को अंकित किया है गीत में वीरता वर्णन की अद्भुत छटा और अत्युक्ति का अभाव वस्तुत उल्लेखनीय है

गीतों का अध्ययन करते समय एक और तथ्य उभर आता है वह है राजपूतों का मुसलमानी नामों का अनुसरण करना इसके दो कारण हो सकते हैं प्रथम तो मुसलमानों का राजनैतिक दबाव तथा द्वितीय चापलूसी करने की दृष्टि से स्वेच्छा से ख्यातों में तो ऐसे अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं[1] मुहता नैणसी री ख्यात, पुरुष नामानुक्रमणिका में तो 'लाडखान' नामधारी ऐसे क्षत्रियों का नामोल्लेख है[2] जिनके पिता और पुत्र दोनों के हिन्दू नाम थे एवं

---

२ रायमलोत — रायमल का पुत्र राव कल्ला। रोद — यवन। रूकां मुहै — तलवारों से। विढते — लडते हुए। सिरगै — शृंगों पर।

३ नडत — अवरोध होने पर। खत माग — क्षात्र मार्ग। घायै अरदल — शत्रु सेना का नाश करते हुए। नीर चढत — यश रूपी पानी चढाते हुए।

---

१ मुहता नैणसी री ख्यात भूमिका भाग ४ पृ० १८ सं० पं० बदरीप्रसाद साकरिया
२ वही पुरुषनामानुक्रमणिका पृ० ८२

उदाहरण दृष्टव्य है कछवाहो की वशावली का विवरण देते हुये नणसी ने लिखा है—'ऊदो लाला रो→लाडखान ऊदा रो→फतैसिंघ लाडखान रो तिणनू राजा जैसिंघ बेटो कर गोद लियो थो'[१] इन गीतो मे भी एक गीत 'गीत दोलतखान नारायणदासोत नू' इसी प्रकार के नाम से सबधित है

यह सभी गीत व्यक्ति-पूजा मे सबधित हैं

इन उनचालीस गीतो मे से दो चारणो पर, एक मुसलमान पठान पर दो अपने बडे भ्राता महाराजा रामसिंह पर दो महाराणा प्रताप पर, दो वीरवर कल्ला रायमलोत पर, पाँच गीतो मे व्यक्ति सूचक नाम का अभाव है तथा शेष राजस्थान के किसी न किसी वीर से सबधित हैं

निश्चय ही इन गीता का उद्देश्य ऐतिहासिक विभूतियो के चरित्र के एक सबल पक्ष का उजागर करना रहा है और ऐसा करते समय सहज ही अत्युक्तिपूर्ण वर्णन हो जाता है वीर की वीरता का मूल्याकन करने के लिये वीर काव्य का इसे एक आवश्यक अग ही समझना चाहिये पृथ्वीराज के गीता मे उनके अपने मौलिक रूपक बडे ही सुरुचिपूर्ण और विषय को (दुरूह नही बनाकर) स्पष्ट करने वाले होते हैं। जब तक उन्हे समझने की कोशिश नही करते वे अत्युक्तिपूर्ण मालूम होते है। साथ ही इन गीतो द्वारा हमारे मध्यकालीन समाज का जो सास्कृतिक पक्ष उभर आया है, वह कोई कम महत्वपूर्ण नही है अतएव हमे इन गीतो का मध्यकालीन भाषा, शैली, सास्कृतिक व सामाजिक पक्ष तथा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे ही मूल्याकन करना चाहिये

---

१ वही भाग प्रथम पृ० ३१८

(१)

गीत प्रिथीराज राठोड रो कहियो

अकबर दळ अगनि भडाह आरीयण
लाकड सुहड बळै कुळ लाज
दूध कुसळि पोहतो खीची दळ
पाणी आवटियो प्रिथीराज ॥१॥

चामरियाळ घडा चूडाक्रमि
अधपति काठ जळै अहकारि
हरिराज उत वहरण होमता
पै जासउत पहुतो पारि ॥२॥

खरहड फोज अगनि खूदाळम
नर ईंधण जाळिजै नरेस
रासो खीर निवाछ राखियो
नीर प्रजळियो खेड नरेस ॥३॥

सतदळ वैंमदर मानव सळ
बळै तेजि बोह मानवबळ
अमरत धारु हरै ऊजाणो
सुरहरो जळियो सुजळ ॥४॥

(२)

गीत प्रिथीराजजी कहै

सतपुरखा तूझ जिसा साहसमल,
धोरे नह छाडियो ध्रम।
मन अभवै भव नवज आदर,
कुळ दहुवा देसीया क्रम ॥१॥

मैला राज पेखि मालावत,
भाटी तो हुयवो खत भीर।
बीजो हुवो काच कुलवती,
सोनो जो नायका सरीर ॥२॥

दोसीयें विस अभिनमा देवा,
लाभियो नहीं पटवर लेनि।
ऊना वसतर नवज अभाव,
दासी तणा पटबर देखि ॥३॥

गीतो की प्रथम पंक्ति अकारादि क्रम से—

(१)

गीत प्रिथीराज राठोड रो कहियो

अकबर दळ अगनि कडाह् आरीयण
लाकड सुहड बळै कुळ लाज
दूध कुसळि पोहतो खीची दळ
पाणी आवटियो प्रिथीराज ॥१॥

चामरियाळ पडा चूडाकमि
अथपति काठ जळै महकारि
हरिराज उत वहरण होमतो
पै आसउत पहुतो पारि ॥२॥

खरहड फोज अगनि सू दाळम
नर ईंधण जाळिजै नरेस
रासो खीर निवाछ राखियो
नीर प्रजळियो खेड नरेस ॥३॥

सतदळ वैमदर मानव सळ
बळै तेजि बोह् मानयबळ
अमरत धार हरै ऊजाणो
सुरहरो जळियो सुजळ ॥४॥

(२)

गीत प्रिथीराजजी कहै

सतपुरखा तूझ जिसा साहसमल,
घोरे नह छाडियो ध्रम।
मन अभव भव नवज आदर,
कुळ दहुवा देसीया क्रम ॥१॥

मैला राज पेखि मालावत,
माटी तो हुयवो खत भीर।
कीजो हुवो काच कुलवंती,
सोनो जो नायका सरीर ॥२॥

दोसीयै विस अमिनमा देवा,
सामियो नहीं पटतर लेखि।
ऊना वसतर नवज अभाव,
दासी तणा पटवर देखि ॥३॥

सपति काजि तूझ सारीसा,
रायजादा जेसळगिर राव।
कुळ ध्रम छाडि नवज क्रमेवो,
नवज बोलियो छाडि नियाव ॥४॥

(३)

गीत

खेडपत करू भागोड हाडा खेती
समझती न थी कुळवट सनीमा
ताण री ऊच धारी अडग अडसनण
भुजा हिंदवाण री लाज भीमा ॥१॥

वेसु पूरब पछम दखण उतराध वीच
साख पकस वट तज अवसाण
मडी गहिलोतगुर गळे थाटे मरद
खेत धरमपणा री अडप खूमाण ॥२॥

जुगादि जोध जोगिंद जारी जहर
तूझ विण अवर [कुण] गयण तोल
धणी चीताड खटतीम कुळ ढाकिया
एक भीमण भुजडड ओलं ॥३॥

(४)

गीत पाहू भीमा रो प्रिथीराजजी कहै

भरि सूतो नींद ऊपर भीमा, रूक वहै लू खिया रिम।
किम सभरी तरवार ग्रही किम, किम काढी वाही सु किम ॥१॥
पोढियं जु तैं कियो राव पाहू, भारथ हू अधिको भाराथ।
वाम तणं दाहिणं वळियो, हाथवर वाहत हाथ ॥२॥
तन ढोलिया पछै डूगर तण, सूत नींद जु त सभव।
सारहली चत्र वार साचवी, हेकिणि जिणि वाखाण हुवै ॥३॥

(५)

गीत गोपालदास माडणोत रो प्रिथीराजजी कहै

धणी कर बाखाण सत्र कर धमगळ धमळ
सहोयर। तीन मारो समोया।

माडहै परणजै भमध गोपाळमल,
जानिया साथ रिडमाल जोधा ॥१॥

माडव वेर ही नवे ग्रह माडिया,
ब्राह्मण फिरै नारद विचाळै ।
रोद्रणी बीदणी छेह सिर राळियै,
रुधर तबोळ मुख हूत राळ ॥२॥

माडहो भ्रमलगत सगा वाक मुहै,
वडम वर सोह - सत्र चढै वखवाद ।
बीद मुरधर तणो सतर ची बीदणी,
मवलगत परणिया सींधव नाद ॥३॥

पटधर पखणी भ्रपछरा पूखणै,
धार तोरण भ्रणीवाध खत्र धोड ।
विकट लाडी, सबै लगन वाको भ्रवक
मयक रो - परणज बाधिय मोड ॥४॥

हुव जस दायजो पात्र पळचर हुवै,
खरच वरियाम सत्र दाम खूटा ।
जोत म पोढियो महल जेसाहरो,
छेहडा भ्रवतरण तणा छूटा ॥५॥

(६)

गीत जसै चारण रो प्रिथीराजजी कहै

जम पासै एक पोढीयौ बीजौ,
पिसुण थहै । जागीय पछै ।
मानो मारि - जसो भ्रणमारिय,
भ्रावण जीवता दुलभ भ्रछै ॥१॥

भ्रावे सका नही उपराठा,
भ्रालोचिया भ्राविया इम ।
मानो भ्रमध पोढिये मार,
रोहड भ्रणमारिय इम ॥२॥

बारहठ हुवै जाणीयौ बीजौ,
बोलिया सात्रव पलिग बीयै ।
मारै भारमलोत न मारा,
दानावत जाणि न दियो ॥३॥

(७)

गीत मडलै दूदै ससारचदोत रो, प्रिथीराजजी कहै

चढै भीड बनडाल ऊपाडियै चाचरै,
माडियै ढाल रिणताळ माथै ।
हुकम सू ताहरै साथ मडळाहरा,
साकतिया तणा रथ थहै साथै ॥१॥

खळ जुता बगतरा नरा सभिया खरा,
त्रिजड प्रसणा तणा क्रघ तोडै ।
रात दिन सदा ही कमध तार रहै,
जोगणी तणा पीठाण जोडै ॥२॥

विघन रा विसाऊ चद रा वीरवर,
खळा करणा इळा खाग खूदा ।
रुधर घापा थकी केविया तणै रिण,
देवि दै तुझ आसीस दूदा ॥३॥

(८)

गीत सादू रामै रो महाराज प्रिथीराजजी कहै

गयौ तू मला भला तू न गयौ
घिन धिन तू सादवा घणी
जाडै-अणी माहेडो जाकळ
अणी करण पातळा अणी ।

तै लिय आहव राण त्रिजड हथ
ले लाधण सासण न लिया
सोहै ससत्र सालिया सात्रव
कठ सोहै न सालिया किया ।

दळ आपरो नत्रीठौ दी'हो
धाये लीन्हा प्रसण घणा
मावाहरा न बीजा ओपम
तागावाळा नसा तणा ।

चारण जाणै माय चारणा
अब समै विच नथ अनथ
धरमा तणो न बैठो धरणै
रामो बठो रम-रथ ॥

(९)

गीत राठोड सेखा सूजावत रो पृथीराजजी कहै

(गीत छोटा साणोर)

ग्रह न सकै ग्रहै उग्रहै ग्रहिया,
दाखै चद दुणियद दुवै ।
सेखडा सामि सनाह सारिखो,
हेक कन्है जो भीछ हुव ।।१।।

ग्रधड ग्रहै किम सुतन ग्रांपणी,
कहै किरणपत सोम कथ ।
एकाधीपत जिसो ऊदावत
हेक हुव जा खडग हथ ।।२।।

राह ग्रहै किम सोम कहै रवि,
मिळै ग्रसुर घड केम मुड ।
सुभट बिया रिणमाल सारिखो,
जुडणहार एहवो जूडै ।।३।।

ससिहर कहै सपेख सूरिज
ग्राड ग्रहण नित करै ग्रनेक ।
सूर कळहगुर गेखडा सारिखो
ग्रांपा बिहू न जुडियो एक ।।४।।

(१०)

गीत राठोड कला रायमलोत रो पृथ्वीराज कहै

वढ चढ बोलियो पतसाह बदीतो, मडोवर रख माण मलीतो ।
जिण जमवार लगे जस जीतो, कलो भलो रजपूत कहीतो ।।१।।

पृळिया दळ पारभ पतसाहै, सिंघ नरेसर वीडो माहै ।
बकिया वयण तिके निरवाहै, गढ समियाण कलो पडिगाहै ।।२।।

घट गागरट तलहटी थाणो, राव ग्रग्राज करै रीसाणो ।
करडा वयण कह् कलियाणा सिर पडिय प्रापिसि समियाणो ।।३।।

तोडिस मछर वधै तियाळ वेध पड्यो घर सेध विवाळै ।
उदो राव दुरग ऊदाळै, रायमलोत दुरग रखवाळ ।।४।।

सूजाहरो डाखिया साबळ, छावो विढ ग्रणखला नियछळि ।
दीठो काळ रोहियां ग्ररिदळ, चढिया गढ जूजुवा चळि चळि ।।५।।

भारतसीह जिसा भूपाळा, माचि झळह गढ़ ऊपरमाळा ।
रे कहता आयो रवताळा, कमियो रहो मुहै किरमाळा ।।६।।
जिम रावळ दूदो जसाणें, सातळ सोम मुआ समियाणें ।
निहसि राव चूंडो नागाण, कीधो मरण तिमो कनियाण ।।७।।
जुडि धड काह मुओ जाळघर, थाट विडारि हमू रणथभर ।
अगति लाज भणखला ऊपरि कलियो जूझि मुओ गज केहरि ।।८।।
नरसिंघ मणियड ओळ निरोहै रहियो भाण मडोवर रोहै ।
लुद्रव भोज मुओ वढि लोहै, सिर समियाण कलो भ्रित सोहै ।।९।।
पावागढ़ जूझार पताई वळि जमल चौओड सवाई ।
लाखावड सिर माड लडाई, वाघहरा रहियो वरदाई ।।१०।।
हाथीसी हरमाण हथाळो, कुंभ गागरण मामो कालो ।
आनू मजन मुओ अडसालो, समियण तेम कलो सपखाळो ।।११।।
अचळ तिलोकसिंघ रण आग जुडि गागरण मुआ छळि आग ।
लाज तिका भुज अवरि लाग, खेड नरेसर विढियो खाग ।।१२।।
वढि घा भोज मुओ बीकाण, पाटण अरिजण जेण प्रमाणे ।
वरसलपुर खेमाळ वखाणै सावो तेम कल समियाणै ।।१३।।
निहचल वात कलो निरवाहै, चावो रावा बोल चढाहै ।
रवि ससिहर लगि नाम रहावै, इद छभा विच बठो आव ।।१४।।

(११)

गीत सेरखान रो प्रिथीराजजी कहै

सिर झूर हुवो चढि खाग सेरा,
सासि आमियो ज्योति सगाथ ।
आदम गयो घूणतो उतवग
हूरा गई मसळती हाथ ।।१।।
कण कण कमळ कियो अबदूका
पना खुम्हाई तो हूस पिण ।
तसवी विण त्रनयण गयो तिण
वेगम रथ गा खसम विण ।।२।।
कमळ पठाण कियो चढि कुटके
मिळि ज्योति रहमाण मझारि
गवरा वर सिणगार पखो गो
निवर गई वर चगा नारि ।।३।।

(१२)
मेवाड रा राणाश्रा रो
गीत

(यह गीत पृथ्वीराज कृत कहा जाता है)

वाजइ नोबतै नीसाण गाजइ खमूठाणै गजराज ।
वाजिराज लीमइ लाही साज मइ विराज ।।
राइजादउ महाराज साहिया दउ सिरताज ।
राजा राउ सेवइ राजइ रूप जग राज ।।१।।

पाहडा किमाड सउध्रउ नाउ वइरवइ पछाड ।
दाळिद विभाडणउ मेवाड मइ दुवाहू ।।
पाट रखपाळ थाट सोहइ पातिसाहू ।
पातिसाहा साल हिंदूपति पातिसाहू ।।२।।

ग्ररिसी लखमसीह भीमसीह ग्रजइसीह ।
जैसीह खूमाण वापइ जस जोडी जूप ।।
मोकल हमीर सेतइ लाखइ कूंभइ मोटमन ।
रायामाल सागइ उदइ प्रतापसी रूप ।।३।।

मेवाडां चीग्रोडा मइणि ग्राहडा ग्रमगनाथ ।
नागद्रह मइलपुरा मीसोदा नमोहि ।।
राइजादउ गुहिलोत रावत राउळा राणा ।
सेलगुरा रायगुरा चाडगुरा सोहि ।।४।।

भेगधारी ततकारी थइकारी नगारी भारी ।
तालधारी रागधारी करइ सुर तार ।।
भट भासा देववाणी चारण चतुर वाणी ।
दूसरा हमीर तणउ सेवइ दरबार ।।५।।

एजदी गुलाव गेंदा ग्रवर जबाधि ग्रग ।
पूजा घणसार सृगमद मइ प्रमाण ।।
केसर चदण करा मलयतर केतकी रा ।
ग्रभिनवउ पृथ्वीराज सेवता ग्राघ्राण ।।६।।

दूवा मोडी सा[illegible] दीजइ गाम हाथी दाम दीजइ ।
दांन वाजा साज दीजइ मेवाडउ मस[illegible] ।।
जगतउ करणि वापउ ग्रमरेस पाट थापउ ।
मूर धीर मौजां इइ साहूण समद ।।७।।

(१३)

गीत रायसिंघ रो राठोड प्रिथीराज कहै

रमतो मन माथै बिया रायसिंघ महलै चापतो मरम ।
दीस तुझ द्वारि अण दूजा, है ग गळ थी तो हुकम ॥१॥

साह तणो सहतोइ अणसहतो, दुव न लोपाइयै दुवो ।
ताइ साहरइ दरबारि कल्याणतण, हटका सहै निरोस हुवो ॥२॥

अमहलि महळि अवरि सिरि अवरा, रायहर व्यापक थकौ रहै ।
सोइज आज हुकम सुरताणी, सिघद्वारि गळहथा सहै ॥३॥

अकबर दिसि आदेस अकबरी अनि राउ घणी कीय अजक ।
बळ तजि होठ चाटतो वळियो धूहडि धरि मारियो धक ॥४॥

(१४)

गीत रामसिंघ कल्याणसिंघोत रो राठोड प्रिथोराजजी कहै

सकति सा सिवा श्रोण सिव सीस कजि सवहै,
समळ पळ काजि अब एह सूधो ।
खाति करी राम अतरीक रथ खेडिया
तैं रभ चे रथे रवि माग रूधो ॥१॥

चौसठी चोळ कजि कमळ कजि विप चरण,
पायल कज ग्रीधणी पल करि पूर ।
आहुच राम वर परिणवा आवरया,
सुरत्रिया रूधियो पथ रथ सूर ॥२॥

रगत कजि चाउडा रुड ची माळ रुद्र
मास भख विहग वन छांह मळिया ।
निहगपुर रूधियो माग लाभ नहीं,
भाण रथ रभ रथ आइ भिळिया ॥३॥

रगत कज योगिणी ईस उतवग रचै,
खगा पळ पूरव खळ दळ खाग ।
सुतन कलियाण वर रभि पोहतो सरग,
मीत मुगतो हुग्रो आमियों माग ॥४॥

पाठान्तर—
१ हैं बै बलपीयरो

(१५)

गीत

तो तणा सूर सवगा तणी श्री, रिण कजि सनाहिया रहे।
कामे कत ऊजळ कीए, लोह काटि सावळा वहे ॥१॥
सुहड तुहारा सिह समोभ्रम, मिळि सग्राम महळि मिळिया।
पदमणि वदन सपेख रवि परि काट सिलह घट काजळिया ॥२॥
जोध तुहारा जोध कळोधर, सदा सनाहिया कळह सुख।
वर प्रामिया इसा वर नारी मैला नन ऊजळा मुख ॥३॥

(१६)

गीत प्रिथीराज राठोड कहै (मेघा मोहिलरो)

मिटिया रिण दळ दूसरा मेघा,
कळि ऊपनी नीपनी काहि।
सूरजमाल कटारी समहर,
मीर तण लाई उर माहि ॥१॥
मोहिल राण वेलियं मिटत,
गह दाख काढी अवगाढ।
गळक तणं पिजर नू मेल्ही,
जगदीठी वहती जमदाढ ॥२॥
हिंदू हेक-हेक राव हैवं,
घणो वाखाण सुपह घगा।
पलट साथ पछ प्रतिमाळी,
तू वाहै नतसी-तणा ॥३॥
अणिया मुहै नेतसी भ्रमोभ्रम,
साहण सभेदग साहसधरि।
बळवत सूर भाजियो बिजड़ो,
सगळो सावी तणो सरीर ॥४॥

(१७)

गीत मोटै मोहिल रो प्रिथीराजजी कहै

सवर चढि वृषभ, गुरुड सारगधर,
सहिया रण रथ छोडि सरं।
निबर वहै ग्रचभो देसो
मोटो दळ-पारसो मर ॥१॥

त्रिनयण तेख उखेखत श्रीकम,
विहग खडो हिव करो म वार ।
मरै पराई आरति मोहिल,
अरक कहै देखो एक वार ।।२।।

ईश किसन सूरज अचरिजिया,
जुडिवा कौतिग देखि जुवो ।
मोटा सामि आगळी मोटो
माटै प्रब आफळै मुवो ।।३।।

हरि हर पतग वीभम रहिया,
घटि घटि विढता दीठ घणो ।
आफळि मुवो राम साह आगै,
तढमल डूगरसीह तणो ।।४।।

(१८)
गीत वैरसल प्रीथीराजोत नू प्रीथीराज कल्याणमलोत कहै

आलोच करै जोईयो उदसिघ, गोत वर लाभलाभ गिण ।
हाथ चढै न देवडा हीरा, वरागर घाइया विण ।।१।।

विणज वर नह वोम वैहरता कहै राव ए मत्र कर ।
पर इया चहवाण पीथउत, नह जीरव लजी नयर ।।२।।

जैतहरा घायो इम जाण, उदैसिघ निज सोफ उर ।
सपज रतन करग मूराउत, पिंड ताहरो करत न पूर ।।३।।

(१६)
राम मानमलोत रो गीत प्रिथीराजजी कहै

पावक काइ जहर वहे काइ परपच,
कळह न आवै सिलह करि ।
दोहरा तो जिम मान दुजडा-हथ,
आद कहै वरहीण अरि ।।१।।

मगळ जहर चूक करि मार,
म्कै ~ह दाखव रह ।
मगिया नहीं न्याय है माना
सबळै तै निवळा समह ।।२।।

पाठांतर—
१ मानम साम । २ मट जोर कै ।

आगि दहै विस चूकि आगिमैं,
पिड चढि नह दाख प्रभति ।
सकजै भारहमाल समोभ्रम,
सदा न वछिया अकज सति ।।३।।

केवी अकज_सकज गिण कमधज,
कळह न आया सिलह करि ।
जागविये नत्र मान जादवे,
भरियो लोहै नींद भरि ।।४।।

(२०)

गीत खगार जैमलोत नू, प्रिथीराजजी कहै

अमगळि वर वर कुशळि खगार आणिया
घणी महळ करि मगळ घणो ।
माथै दाघ वहै मालाउनि तिलक तणो मिस तुझ तणो ।।१।।

गव राखिया तणी भूरमराव, समहरि घरि करती सिणगार ।
राम उपम तिलक रिख ग्रहि छत्रीस ताहरो भाव खगार ।।२।।

राजाहरा रिण आगणि राजा, थोमै भरि दळ चीत थिर ।
राइहरै मानै राईजादी, सारै माग स दाघ सिर । ३।।

(२१)

गीत कछवाहै अचलदास बलभद्रासोत नू प्रिथीराजजी कहै

भव स जाप थाश भणि भणि, कर साहियै दायण वादी किणि ।
अचळ जहर ऊभा रण अगणि, चोटी भग थई चदाणणि ।।१।।

असुर पारसी मत्र उचार, अगळा काळकोट आधारै ।
मामा वेणी सरप वहारै, प्रिसण गारडू [म] कर न पसारै ।।२।।

रवद वाच वचन लागा रति लागू माथि जाई वादी लसि ।
विसम प्रिथम हरै कीधा वसि, कुमरि धमरि चाल नवा वसि ।।३।।

सोढ़ सहर लागी के गामति दिस कूरम न कीधा भार वति ।
हरमां हरिस न जाई मिळियै हमि, दसत म पूगीपर मूक दति ।।४।।

(२४)

गीत रामसिंघ कल्याणमलोत नू पिरथीराजजी रो कहियो

एक फरसधर राम सुतन जमदगन नरेसर ।
एक दसरथ सुत सुता सारगधनखधर ।
इक बसदे सुत सम सुतो हलधरण महाबल ।
एक बलावत राम खडगधारी खाडण खळ ।
एक एक हुआ एक एक जुग त्रत त्रेता द्वापर कळि ।
हुवो न हुइ है पावमो चार राम रव चक्रतळ ।।१।।

(२५)

गीत भोपत चहुवाण रो प्रथीराजजी कहै

भव सादरि छोहि बखाणे भोपति वेली गया पडतो बाथ ।
काढी हुती हाथ कटारी, हूतो कना कटारी हाथ ।।१।।

भारथ तण जु कीधो भारथ, कर एक बीजो कमण ।
दुजड काढि वाहतो न दीठो, पडियो हिज दीठो प्रिसण ।।२।।

पोह जोगिणिपुर धर सँभरि पोह, साहाळो प्रघटतं लोह ।
त द्रोहियो प्रिसण भ्रणद्रोहा, द्रोहै जिही छद्रोहै द्रोह ।।३।।

दाणव तणी यू प्रिथम दूसरा, तं ग्राहवै कियो ऊगाढ ।
ग्रह काढी वाही वडँ ग्रहि, दाढा थकै खिचै जमदाढ ।।४।।

(२६)

गीत राठोड कले रायमलोत रो प्रिथीराज कहै

आप दईव कोपिये ग्रवर, ग्रनि ऊतारे उतरि उतरि ।
आतम चाड धड किण ग्रवरि, गगहरा विण तीर गिरवरि ।।१।।

रायमलोत रोद रीसाणे, थुडिया कटक लूबिय थाण ।
क्वां मुहै विढतै रांणै सिरगै चल चढियो समियाण ।।२।।

नम न निरभय जगत नडतं खेडेचै खत माग खडत ।
पाय ग्ररदळ सेन घडत, चढियो गिरवर नीर चढतं ।।३।।

नव चोकिये महळ नीसाणी, राखी राख करै निय राणी ।
कलो मुवो कय ग्रकथ कहांणी, पच्व सीस चढाव पाणी ।।४।।

(२२)

गीत फहीम पूजावत रो प्रिथीराजजी कहै

विढण दीह विढता फहीम ऊपरै ग्रह ग्रहो,
जोवै जग पतग ए अचभ जुवो ।
है तो हिंदू जनम अछर कहै वरसि हू,
हूर कहै दूर हू मिया हुवो ।।१।।

अरक कहै पूजउत सणो रण जोय अरण,
वाहतो त्रिजड घड कमळ वढिया ।
कमध चं समध कजि रभ वीरवा करै,
परी कहै हुई खत पढिया ।।२।।

रवद घड फहीम घड रहचते, -
हसं रवि परी अपछर ग्रहै हुवै पाळो ।
चवै चपावती खुदाई पै न्याव चली,
चव चदवदनि हरि कहै चालो ।।३।।

कहर गुर पोहर सिर विना विढियो कमध,
कर वद सुर रथि वलण कीधी ।
वह गई सुर असुर नारि दरिगह वडै
दईव रणमलहरा दुवै दीही ।।४।।

(२३)

गीत मांडणोत सारग दे रो प्रथीराजजी कहै

सुरागुर एम कहै सारगदे, खतिया पारख एह खत ।
जाह पित सुता मात जावती, सुता आवै सेज सत ।।१।।
कहै एम रिणमाल कळोधर, रात ज आव करण रिण ।
जननी तणा चूक जाणावै, जाहि अदीठा पिसण जण ।।२।।
भारमलोत जीहा इम भाखे, रजवट राखण रेस रिम ।
रत पित पीठ मात जा रमती, कळह सदीहा करै किम ।।३।।
माया चहर तणो माडेचा, पखा सपूरस एह प्रमाण ।
मारियो मलो मान मागता, ऊजळं दीह वर आरांण ।।४।।

(२४)

गीत रामसिंघ कल्याणमलोत नू पिरथीराजजी रो कहियो

एक फरसधर राम सुतन जमदगन नरेसर ।
एक दसरथ सुत सुता सारंगधनखधर ।
इक वसद सुत सम सुतो हलधरण महाबल ।
एक कलावत राम खडगधारी खाडण खळ ।
एक एक हुआ एक एक जुग क्रत त्रेता द्वापर कलि ।
हुवो न हुइ है पांचमो चार राम रव चक्रतळ ॥१॥

(२५)

गीत भोपत चहुवाण रो प्रथीराजजी कहै

भव सादरि छोहि बखाण भोपति वेली गया पडतो वाथ ।
काढो हुतो हाथ कटारी, हूतो कना कटारी हाथ ॥१॥
भारथ तणं जु पीधो भारथ, कर एक बीजो कमण ।
दुजड काढि वाहतो न दीठो, पडियो हिज दीठो प्रिसण ॥२॥
पोह जोगिणिपुर धर सँभरि पोह, लोहाळी प्रघटतं लोह ।
त द्रोहियो प्रिसण भ्रणद्रोहा, द्रोहै जिहो छद्रोहै द्रोह ॥३॥
दाणव तणी यू प्रियम दूसरा, तै आहुचं कियो ऊगाढ ।
ग्रह काढी वाही षड ग्रहि, दाढा थर्कं विच जमदाढ ॥४॥

(२६)

गीत राठोड कले रायमलोत रो प्रिथीराज कहै

आप दईव कोपियं अवर, अनि ऊतारं उतरि उतरि ।
आतम चाड चढ विण अवरि, गगहरा विण तीर गिरवरि ॥१॥
रायमलोत रोद रीसाणं, थुडिया कटक लूबिय थाण ।
रूका मुहे विढतं रांण सिरगं चल चढियो समियाण ॥२॥
नमे न निरभय जगत नडतं खेडेच ग्वत माग खडतं ।
घाय अरदळ सेन घडत, चढियो गिरवर नीर चढतं ॥३॥
नव चोकिये महळ नीसांणी, राखी राख करै निय राणी ।
कलो मुवो कय अकथ कहाणी, पव्व सीस चढाव पाणी ॥४॥

(२७)

गीत रायसिंघजी रो पिरथीराजजी कहै

एहो पीथळो वीराण आखाडै, लोहै वीर लडेवा ।
रिण आगण रावा रोहडियो कमधज माग केवा ॥१॥

हाका डाक जमातो हूकळ घड खूदतो ध्यावै ।
लागो हस भगोती लेवा, आडो आडो आवै ॥२॥

मरि चढरणि चवदस ममडा, सीहा टोळ स ऊभो ।
पडिया भड तळफै पावा तळ अखो बहस ऊभो ॥३॥

खेलि सारप आळा खेल, जमा कत जमदूतो ।
जोगणपीठ माडिया जागर, करि देवळ अवधूतो ॥४॥

रिण वाडी धू साळ राठोड, धरती ऊपर धाया ।
सिंधुर भाटी डार सहेता, एकल मारै आया ॥५॥

(२८)

गीत मडल अचलदास नू प्रथीराजजी रो कहियो

पूख दिस काम आकरो पडियो तो गिण नाम प्रमाण तिण ।
चाल्या कटक साभळ अचळा, राठोडा झिल दीध रिण ॥१॥

स्रवणा इम साभळ नव सैंहसा, ऊना भागा कहै अछ ।
वाता कळह तणी वीदावत, पाणी द पुछिहा पछ ॥२॥

अणभग हुतो ताहरो आमो दडवडिया सह बिया दळ ।
पछ कळह वत मडळ पूछो अजळ जळ पहली अचळ ॥३॥

(२९)

गीत दोलतखान नारायणदासोत नू प्रथीराजजी कहै

दामणि करि ग्रहै सासरै दोलति, अवळा तण न रहियो ओळ ।
धावळियाळि तणै छळि धायो, परिहरि पहरणहार पटोळ ॥१॥

सासरिवाडि नारीयण सभ्रम, साही चाळ न सूणो साहै ।
लोवडियाळि तण रसलीणो चूनडियाळ न चाहै ॥२॥

रेवत पूठी राव राठवड, आछटि छेह थयो असवारी ।
लोडाउमातण घति लागो, काज प्रना तजि राजकु वारी ॥३॥

(३०)

गीत दलपत रार्यासघोत नू प्रथीराजजी कहै

दला दियती श्रोळमा जेतमाल दिसा, निस ग्ररध जागवी थाट नमियो ।
साहिजादो तण महिल नवसौहसो, रासउत दोपहर तेण रमियो ।।१।।

रोदघड राव रावळ रम श्राध रत, भाग सौभागणी कमध भीनो ।
मुगलण भ्रागणे पेम रस माणवा, दल दीहा भलौ मोहत दीन्हो ।।२।।

हार मे वीर गज मीर खडत हुये, पहट सुज पाधरै खोत पाली ।
जवनणी तणी घड पूगडी जीव ले, होड गाहणा हसम छोड हाली ।।३।।

(३१)

गीत वेलियो रामसिंघ कल्याणसिंघोत नू पिरथीराजजी कहै

सरणाई सरण वखाण सबदी, मन जोगी जोहा ग्रमर ।
रामा वदन वखाणै रामा, हाथ वखाण वर हर ।।१।।

रीसाणै सुरताण राण राव ही पाव न रखै ।
खगघर ग्रवर सू न सू खूनी तीडाहरा ज तूझ पख ।।२।।

तो विण कलियाणोत निभतण, रासण धीरज मन रहसि ।
हेकण बिये न ग्रभुवण होवै, वळि जुग चोथै पव ग्रसि ।।३।।

मीठा करे जाणियो मीठो, कमघज घन्न ताहरा क्रत्त ।
बीकाहरा वेण विसतरियो, ग्रत भुवणा माहै ग्रम्रत ।।४।।

नाता समध परै ग्रन नारी, सलखक्ळोधर कुसुम सर ।
सुणियो त्याह वछियो सपेखण, वेखीयो त्याह वाछियो वर ।।५।।

विढता ही नू छछोहा वीरति, सहसा ही पालण सहल ।
हू भामी रामा भारी हथ, सत्रा न रहिया नाटसल ।।६।।

(३२)

गीत राणै प्रतापसिंघ रो प्रिथीराजजी रो कहियो

नर जेथ निमाणा, नीलजी नारी ग्रकबर गाहक ग्रति ग्रवट ।
ग्राव तिण हाट ऊदावत वेच किम रजपूत वट ।।१।।

रोजायता तणै नवरोज, जेथ मुसीज जगत जण ।
चोहटै तिण ग्रावै चीतोडो, पतो न खरचै खत्री पण ।।२।।

पड़पंच दिढ बध लाज नको पथ, खोटो लाभ कुलाभ खरो ।
रज वेचवा न ग्रायो राणो हाटा हुरम हमीरहरो ।।३।।

पिंड आपरैं दास परियावट, रोहिण आव तण बळ राण ।
खत्र वेचियो जठैं वड खत्रिया, खत्र गखियो जठ खूमाण ।।४।।

जासी हाट बात रहसी जग, अकबर ठग जासी एकार ।
रेह राखियो खत्री धम राण, सगळोई वरत ससार ।।५।।

(३३)

गीत जगमाल उदैसिघोत सिसोदियै रो पिरथीराजजी कहै

वळावळी गोळा वहै वीर हक वापरी, चाच खग वाहतो काढतो चाल ।
देवडा तणी घड माहि सीसोदियो, माल्हियो मानसर हस जगमाल ।।१।।

चाच तरवारिया रतन सिर चुगतो, कमळि पग दीयतो धडा काही ।
सुचलि चालियो उदसिंघ समोभ्रम, माल्हियो आबुबा सेन माही ।।२।।

सार जळबोळ दळ बेल सीरोहियो त्रिरदपति वीटियो घण वार्ण ।
पिसण घड रहचिघड चापनो पोयणी, जगो पावासरो हम जाण ।।३।।

हम गति हस जगमाल हाल सग्रहि धारि आवारि ले लहरि धायो ।
सारि अरि मारि तणो लाय सघण पार सागाहरैं सरग पायो ।।४।।

(३४)

गीत राव रायसिघ देवड रो प्रिथीराज कहै

कोळो कर भाग तिजारो कमधज गुळ खूमाणो गाळ वियो ।
कूड क्यर मुई किरमाळा कहर कमू भो सोध कियो ।।१।।

सघ ओखदी छोलरा रायसिघ धाय जगड मिठाई घात ।
भेळा कर-मुसटिया भारथ भिळतै राय अनेरी भात ।।२।।

पीध चढाय करैं रिण चापर, किरमाळै आहूत किंयो ।
दळा सहत दळनाह देवड, जहर तिहै नर जारवियो ।।३।।

(३५)

गीत पुवार सादूल मालावत नू पिरथीराजजी कहै

कर लेखण कुत करे पिंड कागद मसि कर मास रुहिर कळिमूल ।
मिळ मेडत मडावर माथ, सवळो खत कियो सादूळ ।।१।।

कलम छडाळ समर पाठो कर घण पळ मसि मेळवि घण घाव ।
तेरह साखा सिर तेपन, सम समत कियो माल सुजाव ।।२।।

लेखण धण सावळा लिखते, भ्रग रस मसि दुत भ्रर ।
धार पुरे सिर लिया धूहडा, कळि नामी राखियो कर ।।३।।
केहवा खत कर मयद कळोधर, हुग्रा जुतं लीधा सति हस ।
वयण वयण सट वरण वाचम, वाचा वस छत्रीस वस ।।४।।

(३६)

गीत जोध सोलकी रो पिरथीराजजी कहै

खाग भट विकट खेताहरो खेलतो, झाट झडि ओझडा वाहतो झेलतो ।
विढतो वाढतो वीडतो वेलतो, थाट अवियाट दरबार गो टलतो ।।१।।
घरहर पाखरा रच त्रिविधी घडा, साझ सुज आविया नीमज सूजडा ।
खानरा भीच दरबार ऊभा खडा, जाग रे जाग जगमाल भड जोधडा ।।२।।
जागियो जोध झूझार जुडिवा सझै, अमर छळि खाग गणाग लग ऊद्धजै ।
भीछ राणै तणो नगा विमुहो भज तळछियो मिघळो जेम माया तज ।।३।।
ध्रू धरणि पडै घड विढ धारूजळ, सोनगिर राव सू सत्र कर साखल ।
दूठ भड रासउत दाख देतो दळ, छिल वयावर मरण गयो दुनी छळै ।।४।।

(३७)

गीत उदै मेहावत नू पिरथीराजजी कहै

अनि पडियो, अजन न पडियो थान, समी भोम सत्र गयो सधार।
ऊद अलद थक आपाणो, मारणहार राखियो मार ।।१।।
पत्र-सुत कायण हार तणो पिक, रवमुत जो कान रहत ।
तो मेहाउत सारिखी मीढति, सीधं जिण बीधियो सत ।।२।।
पडि राठाड वद जगि पोरसि-तनि भेदियै छेदियो तन ।
ऊ॰ वडे वहादर ऊर मत रै ही रहिय करन ।।३।।

(३८)

गीत रतनसी रो पिरथीराजजी कहै

अपछर इम कहै सलखहर ओपम, किमी विलागो कळह कथ ।
विपहर हुमा सुहरे बाधं, रता पधारी वळे रथ ।।१।।
धारांगना हाथ वरमाळा, भाळै ऊभी भाळपळ ।
विढण कियो दपाळ वंसोधर विधन पधारण हुवै वळ ।।२।।
जगहथ ऊन जुडिसि जमवारो, कद न थाकै तूझ कर ।
भरधरि पुहूण भ्रवरीस ऊभिया, आवो अवधार अमर ।।३।।
पोह पडिगाहि प्रसण दळ पाम, पडियासग पूजव पतो ।
उदक सम वैठो मासाड, रप बठो आपमण रतो ।।४।।

(३६)

गीत प्रिथीराज कल्याणमलोत कहै

पर भविया पूत लियाळि परणतं, गोग्रळक मचती गहणि ।
तं आणे सु रतन वळातण, त तिह फेरे राम तिणि ।।१।।

दीहो रण वीद मग दियत, रामा तैं छडिय रथ ।
वामैं अगि आण वाढाळी, हथळेवो दाहिण हथ ।।२।।

प्रतमाळी पतिव्रता सरसि पिडि, घर फिरियं अरिहर सघरि ।
फिरत कमध अफिर घड फेरे फेर चौथे चड फिरि ।।३।।

राव राठौड तणो रस लूधी, सभ कलहि पामियो सुख ।
अरिग्रहवन भणती अणियाळी, मिळै, तबोळ स रुहिर मुख ।।४।।

परण पाधारत परमपुरि पित दायजो सबळ जस खाटि ।
कुल उजवाळे राम कटारी को ऊजळी पड तैं काट ।।५।।

(४०)

गीत राणै प्रताप रो प्रिथीराज कहै

ऊगा दन समैं कर आखाडा,
चौरग भुवन हसत अणचूक ।
रोदा तणा रगत सू राणा,
रगियो रहै तुहालो रूक ।।१।।

मोकळहरा महा जुध मचतैं,
वचता सार नत्रीठ वहै ।
पातळ ! तूझ तणो पडियालग,
रुधिर च रचियो सदा रहै ।।२।।

खित कारणं करैं नित खळवट,
खेट कटक तणा खुरसाण ।
असणा सोग अहोनिस पातळ
रग सावरत रहै खूमाण ।।३।।

ऊगा सूर समो ऊदावत,
वढै वसू छळ बोल विरोळ ।
चळपळ अरी तणै चीतोडा
चद्रप्रहास रहै नित चोळ ।।४।।

(१)

१ आरीयण — १ आयजन । हिन्दू । २ शत्रुगण, अरिगण । सुहड — सुभट । आवाटयो — जल गया ।

२ चामरियाळ — मुसलमान । घडा — सेना । वहूरए — लकडियो क टुकडे ।

३ सग्हड — घोडा । खू दालम — मुसलमान । प्रजळियो — जल गया ।

४ वैसदर — अग्नि । ऊजाणो — उज्वल हुआ । सूरहरो — सूरसिंह का वशज ।

(२)

१ जिसा — जसे। ध्रम — धम । क्रमन — कमनवज — नही ही । आदरे — प्रारभ करे।

२ मालावत — माला का पुत्र । खत — क्षत । की जो — यदि क्या । पेखि — देख कर ।

३ दोसीय — शत्रु । अभिनमा देवा — देवा का पुत्र । ऊना बसतर — ऊनी वस्त्र ।

४ क्रमेवो — चलता है । नवज — नही । जेसळगिर — जसलमेर ।

(३)

१ खेडपत — राठौड । भागौड — नाश । कुळवट — कुलमर्यादा । सनीमा — मित्र । अडसतण — अडसी का पुत्र ।

२ वट — गव । थाट — समूह मे । अडप — हर । खूमाण — खुमान के वशज । जोध — जोरावर । वीर । जोगिंद — योगी द्र ।

३ जारी जहर — जहर, को पचाने वाला । गयण — आकाश । खटतीसकुळ — छत्तीसा क्षत्रिय कुल । ढाकिया — शरण दी । पालन किया । आत — शरण मे ।

(४)

१ रूक — तलवार । लू बिया — आक्रमण किया, झपट पडे । रिम — शत्रु । किस सभरी — कसे याद आगई (नीद म)

२ पौढिय — सोत हुए । पाइ — भाटी (एक शाखा) । भारथ — महा भारत । भाराथ — युद्ध । वाहत — प्रहार करते हुए ।

३ तन छोलिया पछ — प्राणान्त होने के बाद । डूगर तण — डूगरसिंह का पुत्र । सारहली — तलवार । चत्रवार — चार बार । साचवी — सभाली ।

(५)

१ वाखाण — प्रशसा । सत्र — शत्रु । यज्ञ । धमळ — युद्ध मगलगान । तीख — श्रेष्ठता । सहोवर — भाई । समोधा — योद्धा । जानिया — बाराती । है — कयापक्ष का घर, मडप । कमध — राठौड ।

५ ग्रोपम = तुलना । नसा = गव । तागावाळा = (१) ब्राह्मण (२) चारण । नथ ग्रनथ = नही जीते जाने वालो को जीतने वाला । रभ रथ वठो = वीरगति को प्राप्त हो गया ।

(६)

१ उग्रहे = छोड देता है । ग्रहिया = ग्रहण लगने के बाद । दुणियद = सूय । दुव = दोनो । सनाह = कवच । भीछ = वीर ।

२ किरणपात = सूय । सोम = चद्र ।

३ राह = राहु । केम = क्यो । जुडणहार = युद्ध करने वाला । ग्रेहवो = ऐसा ।

४ सपेखे = देखे । कळह = युद्ध । ग्रघड = राहु । कळहगुर = युद्ध प्रवीण ।

(१०)

१ वढ चढ बोळियो = हठपूवक बोला । जिण = जिसने । जमवार लगे = जीवन भर ।

२ पुळिया = भाग गये । पारभ = ग्रपरिमित । बीडो साहै = बीडा उठाता है । पडिगाहै = रक्षा करता है ।

३ थट गागरट = बहुत बडी सेना । ग्रग्राज = गजना । रीसाणो = क्रोधपूवक । समियाणो = सिवाना नगर ।

४ मछर = गव । तियाळ = तेरा । वेघ = शत्रुता । रुघ = युद्ध । दुरग = दुग । उदाळ = नाश करता है ।

५ सूजाहरो = राव सूजा का वशज । डाखिया = प्रहार करते हुये । छावो = प्रगट, पुत्र । विढ = युद्ध करता है । ग्रणसला = सिवाने का किला । रोहियाँ = रोके हुये । जूजुग्रा = ग्रलग ग्रलग ।

६ कळह = युद्ध । ऊपरमाळा = निकटस्थ गुप्त माग से । मुहै किरमाळा = तलवारो के प्रहारो से ।

७ जसाणै = जसलमेर मे । निहसि = वीरगति को प्राप्त हुग्रा । नागाणै = नागौर म । कलियाणै = कल्ला ने ।

८ जुडि घड = युद्ध करके । कान्ह = कान्हड दे । ग्रगति = इस प्रकार, वास्तव मे ।

६ निरोहै = (१) ग्रवरोध मे । (२) घेरे मे । रहियो = वीरगति को पाया । वढि लोहै = शस्त्रो से कट करके ।

१० पताई = पावागढ (गुजरात) के रावल प्रतापसिंह का उपनाम । वरदाई = विरद प्राप्त । जैमल = राठौड वीर जयमल ।

११ हथाळी = (१) दृढ हाथो वाला (२) शीघ्र गति से शस्त्र चलाने वाला । कुभ = महाराणा कुभ । माभी = मुख्य । काला = मतवाला । ग्रडसालो = वीर । सपखाळो = जबरदस्त वीर ।

२ विचाळै = बीच मे । रौद्रणी = रौद्र रूप वाली । राळिय = डालकर, डालती हुई ।

३ वीद = दूल्हा । मुरधर = मारवाड । सीधव नाद = युद्ध वाद्य के बजने के साथ सतर री = शत्रु की । नवलगत = नई रीति से ।

४ अणीबाध = सेना समूह । नबक = बलवान । पूखणै = पूजा करती हैं । पखणी = गिद्धणी । लाडी = दुलहिन ।

५ पळचर = मासभक्षी पक्षी । खूटा = समाप्त हो गये । जेसाहरौ = जेसा का वशज । जोत मे पोढियो = ज्योति मे मिल गया छिहड़ा अवतरण = जन्म रूपी गठ बधन ।

(६)

१ बीजो = दूसरा । पिसुण = शत्रु । अणमारिय = बिना मारे हुए । दुलभ = दुलभ ।

२ उपराठा = (१) विरुद्ध । (२) पीठ फिराया हुआ । आलोचिया = समाधान करके ।

३ सात्रव = शत्रु । भारमलोत = भारमल का पुत्र । दानावत = दाना का पुत्र ।

(७)

१ भीड = सहायतार्थ । वकडाळ = विकराल । चाचर = युद्ध स्थल मे । रिणतालळ = भयानक युद्ध । मडळाहरा = मडला का वशज । सावतियां = युद्ध देविया ।

२ खळ = शत्रु । त्रिजड = तलवार । प्रसणा = शत्रुओ के । पीठाण = (१) युद्ध (२) युद्ध भूमि ।

३ वगतरा = बख्तर । खळा = शत्रुओ को । विधन = युद्ध । विसाऊ = (१) बसाने वाला । (२) प्रारम्भ करने वाला । उळा = टुकड । खाग = तलवार । केविया = शत्रुओ के ।

(८)

१ जाडै अणी = विशाल सेना मे । त्रिजडहथ = खडगधारी । अणी = (१) सेना । आहव = युद्ध ।

२ घालिया = घाव । ओपम = उपमा । रभ रथ = अप्सरा के रथ से (स्वग गया) ।

३ लाषण = लक्षन, मनशा, धरना । सासण = चारणो का दान मे दी जाने वाली भूमि ।

४ सालिया = नाश किया । सात्रव = शत्रुओ को । नत्रीठौ = भयकर । प्रसण = शत्रु ।

५ ओपम – तुलना । नसा – गव । तागावाळा – (१) ब्रह्मण (२) चारण । नथ अनथ – नहीं जीते जाने वालों को जीतने वाला । रम रय वठो – वीरगति को प्राप्त हो गया ।

(६)

१ उग्रहै – छोड देता है । ग्रहिया – ग्रहण लगने के बाद । दुगियद – सूय । दुव – दोनो । सनाह – कवच । भीछ – वीर ।

२ किरणपात – सूय । साम – चद्र ।

३ राहु – राहु । केम – क्यो । जुडणहार – युद्ध करने वाला । अेहवो – ऐसा ।

४ सपेखे – देखे । कळह – युद्ध । अधड – राहु । कळहगुर – युद्ध प्रवीण ।

(१०)

१ वढ चढ वोळियो – हठपूवक बोला । जिण – जिसने । जमवार लगे – जीवन भर ।

२ पुळिया – भाग गये । पारभ – अपरिमित । वीडो साहै – बीडा उठाता है । पडिगाहै – रक्षा करता है ।

३ थट गागरट – बहुत बडी सेना । अग्राज – गजना । रोसाणो – क्रोधपूवक । समियाणो – सिवाना नगर ।

४ मछर – गव । तियाळ – तेरा । वेध – शत्रुता । रुध – युद्ध । दुरग – दुग । उदाळै – नाश करता है ।

५ सूजाहरो – राव सूजा का वशज । डाखिया – प्रहार करते हुये । छावो – प्रगट, पुत्र । विढ – युद्ध करता है । अणराला – सिवाने का किला । रोहिया – रोके हुये । जूजुआ – अलग अलग ।

६ कळह – युद्ध । ऊपरमाळा – निकटस्थ गुप्त माग से । मुहै किरमाळा – तलवारा के प्रहारो से ।

७ जसाणै – जसलमेर म । निहसि – वीरगति को प्राप्त हुआ । नागाणै – नागौर मे । कलियाणै – कल्ला न ।

८ जुडि घड – युद्ध करके । काहू – काहड दे । अगति – इस प्रकार, वास्तव मे ।

९ निरोहै – (१) अवरोध में । (२) घेरे मे । रहियो – वीरगति का पाया । वढि लोहै – शस्त्रों से कट करके ।

१० पताई – पावागढ (गुजरात) के रावल प्रतापसिंह का उपनाम । वरदाई – विरुद प्राप्त । जमल – राठौड वीर जयमल ।

११ हथाळी – (१) दृढ हाथो वाला (२) शीघ्र गति से शस्त्र चलाने वाला । कुभ – महाराणा कुभ । माझी – मुख्य । कालो – मतवाला । अडसालो – वीर । सपखाळो – जबरदस्त वीर ।

१२ जुटि = भिड करके । छळि जाग = युद्ध छिड़ने पर । विढियो खाग = दोनो हाथो म तलवारो से लडा । अचल तिलोकसिंघ = गागरोन के प्रसिद्ध वीर अचलदास खीची और तिलोकसी ।

१३ वढि घा = प्रहारो से कट कर के । बीकाणै = बीकानेर मे । जेण प्रमाणे = उसी प्रकार । खेमाळ = खेमराज । साको = (१) आक्रमण । (२) युद्ध ।

१४ निहचल वात = निश्चल प्रतिज्ञा । निरवाहै = निर्वाह करता है । इद छभा = इद की सभा । बठो आव = विमान म बैठ कर आता है ।

(११)

१ सूर = सूरा । चढि खाग = तलवारो से । सरा = ध्यान । सासि = स्वास । प्रामियो = प्राप्त किया । सगाथ = साथ । उतवग = सिर । हूरा = अप्सराएँ ।

२ वेगम = हूरे । खसम = पति । तसबी = माळा । (रूडमाला) अनयण = शिव ।

३ कमळ = सिर । निवर = बिना वर के (क्वारी) । चगा = सुदर । वेगम रथ = हूरो का रथ । रहमाण = रहमान । गवरा वर = शिव, महादेव । पखो = रहित । गो = गया ।

(१२)

१ खभूठाण = हाथिया को बाधन का स्थान । वाजिराज = घोडे । राइजादउ = राजपुत्र । सेवइ = सवा करते हैं ।

२ वइरवइ = शत्रुओ को वर के बदले मे । विभाडणउ = नाश करने वाला । पाट = १ सिंहासन गद्दी । २ राज्य । थाट = सेना । साल = शल्य । काटा । हिंदूपति पातिसाह = मेवाड के महाराणाओ का विरद ।

३ जस जोडी = यशस्वी । जूप = समूह । मोटमन = उदार ।

४ मेवाडा सीसोदा = मेवाड के महाराणाओ के विरुद । सेलगुरा = १ भाला चलाने वालो म श्रेष्ठ । २ शस्त्र धारियो मे श्रेष्ठ । रायगुरा = राजाओ मे श्रेष्ठ । धाडगुरा = रक्षा करन वालो मे श्रेष्ठ ।

५ भेखधारी = साधु सन्यासी । वदकारी = १ बाजा बजाने वाला । २ नतक । ततकारा = वीणा बजाने वाला । नगारी = नगाडा बजान वाला । भट-भाखा = १ भाटो की भाषा । २ वीर भाषा । ३ लोक भाषा । देववाणी = सस्कृत भाषा ।

६ एजली = एक पुष्प । गेंडा = एक पुष्प गदा । जवाधि = एक सुगधित द्रव्य । घणसार = कपूर । मृगमद = कस्तूरी । मलयतर = चदन वृक्ष । अभिनवउ = वशज । आघ्राण = सुगधि ।

७ दूवा = १ काव्य । २ आना । ३ आशिष । दाम = धन । साज = वाद्य सामग्री । मेवाडउ मसद = मवाड का अधिपति । जायउ = पुत्र । मौजा = मौज, आनद । मौजा इद्र = इद्र के समान वैभव ।

(१३)

१ बिया — दूसरा । मनमाथ — इच्छानुसार, मन्मथ । चापतो — अधिकार करता हुआ । अण — कण । गळथी — बँधे हुय । है — घोडा । ग — हाथी । (पाठान्तर, हैव — बादशाह)

२ साह — बादशाह । अणसहतो — सहन नहीं करता । दुव — दूसरा । लोपाइयै — उलघन करता है । दुवो — हुक्म । हटका — (१) चुभने वाली बातें । (२) भय । निरोस — शांत, रोषरहित ।

३ महळि — १ महल में । २ रानी । गळहया — बधन ।

४ अजर्क — ऊधम, बेचन । अनि — दूसरा । होठ चाटतो — पश्चाताप करता हुआ । वळियो — लौटा । धक — आगे । अक्वर दिसि — अक्बर की ओर से । आदेस — आज्ञा ।

(१४)

१ अव — पव । समळ — चील पक्षी । खाति — उत्साह । पळ — मास । सूधो — श्रेष्ठ । अतरीक — अंतरिक्ष । खेडिया — चलाए । रुधो — रोका ।

२ चोळ — रक्त । आहच — (१) विनाश किया । २ युद्ध किया । ग्रीधणी — गिद्धिनी । चौसठी — चौसठ योगनिया । सुरत्रिया — देवागनाओ ने । रुधियो — रोक दिया ।

३ अग — भक्ष । माग — माग । भाण सूय । निहगपुर — स्वर्ग । लाभ — मिलता है ।

४ पोहतौ — पहुँचा । सरग — स्वर्ग । मुगतौ — मुक्त । प्रामियो — प्राप्त किया । ईस — महादेव । उतबग — मस्तक । वर रभि — अप्सरा का वरण करके ।

(१५)

१ सनाहिया — कवच धारण किये हुये । सबळा — भाले ।

२ सुहड — सुभट । समोभ्रम — १ पुत्र । २ समान । काजळिया — काजल युक्त । महळि — रानी । परि — समान ।

३ कळोधर — पुत्र । कळह — युद्ध । प्रामिया — प्राप्त किया । नन — नहीं ।

(१६)

१ कळि — युद्ध । ऊपनी-नीपनी — घटना, नई बात । समहर — युद्ध ।

२ अवगाढ — युद्ध वीर । गळक — गला । पिंजर — शरीर । जमदाढ — कटारी । वेळिय — साथियो के ।

३ हेक हेक — एक एक ने, सभी ने । वाखाण — प्रशसा करते हैं । सुपह — राजा । प्रतिमाळी — कटारी । हैव — बादशाह । चक्रवर्ती राजा । नतसी-तणा — नेतसी का पुत्र । नेतमी-अगोभ्रम — नेतसी का पुत्र । बिजडी — तलवार, कटारी । तावी — शत्रु ।

(१७)

१ छोह=क्रोध । दिणियर=सूय । छळ पारको=दूसरे के युद्ध म ।

२ तेख=क्रोध । उखेखत=१ क्रोध करते हुये । २ देखते हुये । विहग=गरुड । पराई आरति=दूसरे का दु ख निवारणाथ ।

३ कौतिग=कौतुक । आफळ=युद्ध करके । जुवो=अन्य प्रकार का । अचरजिया=चकित हो गय । मोट प्रव=(परोपकार के लिये मरने के) मरणोत्सव मानकर।

४ वीभम=चकित, विभ्रम । तद्रमल=वीर । तणो=पुत्र ।

(१८)

१ आलोच=युद्ध । गोत=गोत्र । धाइया विण=बिना मारे ।

२ बिणज वर=वर का बदला । वहरता=व्यवहार म लाने से । लजी=स्त्री वग । नह जीख=सहन नही कर सक्ती ।

३ सोझ=विचार । सपज=किया जाता है । करग=१ कटारी । २ हाथ ।

(१९)

१ काइ=अथवा । दुजडाहथ=खडगधारी ।

२ चूक=धोखा मगळ=अग्नि । असह=असह्य शत्रु । रूक=तलवारो से ।

३ सकज=कर सकता है । वछिया=इच्छा की । प्रभति=सवथा । पिड=युद्ध । भारहमाल समोभ्रम=भारमल का पुत्र ।

४ केवी=शत्रु । सिलह=कवच । भरियो लोहै=प्रहारो से पूण ।

(२०)

१ आणिया=लाया । महळ=महिलाएँ । दाघ=१ शत्रुता । २ कलक ।

२ समहरि=युद्ध । खत्रीस=क्षत्रियो का ईश । आक=भाग्य ।

३ राजहरा=राजसिंह का वशज । थोभ=रोकता है । चीत छिर=स्थिर चित्त से । माग=वाग्दत्ता ।

(२१)

१ थाका=थक गये । जाप=मत्र जपन । दोयण=शत्रु । वादी=गरुडी । रण अगाण=रणागण मे । थई=हो गई । चदाणणि=चद्रवदनी ।

२ गारडू=सपेरा । पारसी मत्र=मलिन मत्र । काळकोट=कालकूट । विष । वामा=स्त्री । प्रिसण=शत्रु ।

३ रवद=मुसलमान । कुमरि=कुमारी । विसमें=विषमय । चमरि=युद्ध । चौरी ।

४

४ के = कई । हरमा = हूरा । मूकँ = डालता है । दसत = हाथ । पूंगीघर = सपेरा ।

(२२)

१ ग्रह ग्रही = तलवार चली । पतग = सूय । ग्रछर = ग्रप्सरा । बरसि हू = मैं वरण करूगी । मिया हुवो = मुसलमान हो गया ।

२ ग्ररण = सूय का सारथी । समध = सवध । वरिवा = वरण करने के लिये । परी = हूर । खत पढिया = नमाज पढी (मुसलमान हो गया) ।

३ थवै = कहती है । रहचतँ = लडते हुए ।

४ वहर गुर = युद्ध विशारद । दरिगह = ईश्वर का दरबार । गोहर = प्रहर । ग्रसुर = मुसलमान, यवन । दुव = दोनो । विढियो = लडा । रणमलहरा = रणमल का वशज ।

(२३)

१ खतिया = क्षत्री । खत = क्षत्रियत्व । सुरागुर = इन्द्र । पारख = परीक्षा ।

२ कळोधर = पुत्र, वशज । ग्रदीठा = १ ग्रदृष्ट । २ नहीं देखने योग्य । पिसण जण = शत्रुजन ।

३ रजवट = क्षत्रियत्व । रेस = सहार । रिभ = शत्रु । जीहा = जीभ से । मुँह से । सदीहाँ = दिन मे ।

४ चहर = बाजीगर । पखा = दोनो पक्ष (मातृ पितृ) । ग्राराण = युद्ध । माडेचा = भाटी क्षत्री । सपूरत = सपादन करते हैं । साक्षी भरत हैं । मान = बदला, वर ।

(२४)

१ फरसधरराम = परशराम । जमदगन = यमदग्नि ।

२ सारग धनखधर = राम । हलधरण = वलराम । कलाक्षत राम = कल्याणसिंह का पुत्र रामसिंघ । रव चक्कतळ = रवि परिभ्रमण के नीचे अर्थात् समस्त सृष्टि मे । खाम्ण खळ = दुष्टो का नाश करने वाला ।

(२५)

१ छोहि = १ उत्साह । २ जोश । पड ती बाथ = द्वन्द्व युद्ध मे । लडाई होने समय । कना = ग्रथवा ।

२ भारथतणं = भारतसिंह के पुत्र ने । बीजो = दूसरा । कमण = कौन । दुजड = कटारी । प्रिसण = शत्रु । वाहतो = प्रहार करते हुग्रा ।

३ द्रोहियो = नाश किया । ग्रणद्रोहा = ग्रजीत । छाछोहै = १ प्रचड । वेगवान । पोह जोगिणिपुर = दिल्लीपति । घर सँभरि पोह = साभर पति (चौहान) । लोहाळी = तलवार ।

४ आहचै — १ प्रहार करके । २ युद्ध करके । ऊगाढ — १ पौरुष । २ प्रबल । ३ नाश । वाही — प्रहार किया । मार दी ।

(२६)

१ रागहरा — राग का वशज ।

२ थुडिया — लड । म्का — तलवारो से । समियाणे — सिवान के किले पर । सिरग — शृगा पर । शिम्बरो पर ।

३ नडतै — अवरोध होने पर । खेडेच — राठौड कल्याणमल न । खतमाग — क्षात्र धम ।

४ पब्ब — सिवाने के पवत पर । महळ — रानी । राख करै — जौहर द्वार भस्म होकर के । निय — अपनी ।

(२७)

१ वीराण — वीरा के । आखाडै — युद्ध भूमि मे । केवा — १ युद्ध । २ वर का बदला ।

२ हूवळ — युद्ध घोष । मगोती — तलवार ।

३ चवदस — चौदस । टोळ — चला करके । तळफ — तडफ रहे हैं ।

४ आळा — युद्ध । युद्धों मे । सारप — तलवार से । जोगणपीठ — दिल्ली । जागर — युद्ध ।

५ घू साळ — यशस्वी । सिंधुर=हाथी । डार=झुड ।

(२८)

१ भिल=१ खूब । २ स्वीकार करके । ३ सहायता । आकरो=कठिन ।

२ स्रवणा=कानो से । नव सेंहसा=राठौड । ऊला=१ दूसरे । २ शत्रु । पुछिहा=पूछेंगे । पाणी द=जलाजलि दकर ।

३ आभो=१ शक्ति । २ सहारा । दडवडिया=भाग गये । कळह=युद्ध । बिया=दूसरे । वत=वात । अजळ जळ=जलाजलि ।

(२९)

१ दामणि = दामन । ओळ = ओट मे । धावळियाळि — करणी देवी । छळि= १ युद्ध । २ लिये । पटोळ — वस्त्रो को ।

२ ळोवडियाळी — करणी दवी । चूनडियाळ — पत्नी । सासरवाडि — ससुराल । नारीयण सभ्रम — नारायण का पुत्र । चाळ — दामन

३ रेवत — घोडा । आद्यटि — १ झटका देकर । २ मार कर । थयो — हुआ । लोडाउआ — यवन लोग, शत्रुगण ।

(३०)

१ थाट = १ समूह । २ फौज । नवसाहसो = राठौड । रासउत = रायसिंघ का पुत्र ।

२ रौदघड = यवन सेना । मोहत = मुहत । दल = दलपत । भीनो = रसलीन हुमा ।

३ पहट = नाश । खोत = मुसलमान सेना । जवनणी = मुसलमानिन । घड-पूगडी = सेना रूपी लडकी । गाहणा = ग्रहण करने वाला । हसम = सेना ।

(३१)

१ सरणाई = शरण म श्राय हुए, शरणागत । जीहा = जिह्वा से । हाथ = हाथ की शक्ति । सबदी = वाल । वैरहर = शत्रुगण ।

२ रीसाणें = गुस्सा करने पर । पखै = पक्ष म, शरण मे ।

३ कळियाणोत = कल्याणसिंह का पुत्र । निभ = निभय । तीडाहरा = राव तीडा का वशज । वळि = फिर ।

४ क्रत = कम । म्रतभुवणा = मृत्यु लोक । मीठा करै = सुकृत करके । वेण = वचन ।

५ सलख कळोधर = राव सलखे का वशज । वेखियो = देखा । पख = बिना । वाछियो = इच्छा की ।

६ भामी = योछावर होने वाला । नाटसल = जबरदस्त । छछोहा = योद्धा । सत्रा = शत्रुगण ।

(३२)

१ निमाणा = झुका दिया । भ्रवट = कुमार्गी । ऊदावत = उदयसिंह का पुत्र । हाट = दुकान पर, बाजार म । रजपूतवट = क्षत्रियत्व ।

२ चीतोडो = महाराणा प्रताप । पतो = प्रताप । पण = प्रतिज्ञा । मुसीज = लूटे जात हैं । रोजायता = मुसलमान । खत्रीपण = क्षत्रियत्व ।

३ नको = नही । रज = रजस्व, क्षत्रियत्व । दिढ = दृढ । हमीर हरो = हमीर का वशज । हाटा हुरम = मीना बाजार ।

४ परियावट = कुलमर्यादा । खूमाण = खुमान का वशज ।

५ एकार = एक बार । रेह = मरे (सबोधन) । खत्री ध्रम = क्षात्र धम ।

(३३)

१ वळाविळी = चारो ओर । वापरी = उपयोग मे ली। घड = सेना । माल्हियो = मस्ती से चला । मानसर = मानसरोवर ।

२ आबुवा = आबू वाला की । उदसिंघ-समोभ्रम = उदयसिंह का पुत्र ।

३ जळवोळ — असंख्य (सेना) । वीटिया — वेष्टित किया घेर लिया । पावामरो — मातम-ोवर का । मार — तलवार । वेल — सहायता । पोयणी — कमलिनी । सीरोहियो — सिरोही वाला ।

४ सारि — तलवार से । लोय — लोगो को । सागाहरै — सागा के वशज ने । सरग — स्वर्ग ।

(३४)

१ कोळी — फूली । वसू भो — गला हुआ अफीम । सोध कियो — शुद्ध किया ।

२ ओखदी — औषधि । छातरा — छिलके । मुसटिया — भींच दिया, दबाया, मारदिया ।

३ चापर — शीघ्रता । जीरवियो — पचा लिया, हजम कर लिया । किरमाळं — तलवारो से । आहूत कियो — निमंत्रित किया । दळनाह — सेनापति ।

(३५)

१ कुत — भाला । कळिमूल — युद्ध । खत — दस्तावेज ।

२ छड़ाळ — भाला । समर — युद्ध । पळ — मास । पाठो — कागज । साखा — शाखाएँ । माल सुजाव — माला का पुत्र ।

३ सावळा — भालो से । धूहड़ा — धूहड़ का वशज । अगरस — रक्त ।

४ मयद — सिंह । (सादूळ) । मयद कळोधर — सादूल का पुत्र ।

(३६)

१ खेताहरो — खेता का वशज । ओभड़ा — अजस्र प्रहारो से । भाट — प्रहार । वेलतो — नष्ट करता हुआ । अवियाट — भयकर । गो ठेलतो — धकेलता गया । विढतो — लड़ता हुआ ।

२ पाखरा — कवच । सूजड़ा — तलवारो से । खानरा — खान के । भीच — बहादुर ।

३ भीछ — बहादुर । विमुहो — उलटे । तळछियो — १ घायल किया हुआ । २ सहार किया हुआ । सिघळी — सिंह । छळि — युद्ध ।

४ दूठ — १ दुष्ट । २ वीर । दाख — देखकर । छिलै — छलकता है । भ्रू — सिर । कयावर — श्रेष्ठ कर्म । दुनी — दुनिया । धारूजळं — तलवारो से । सोनगिर राव — स्वर्णगिरि (जालोर दुर्ग) पति ।

(३७)

१ क्रनि — कर्ण । अजन — अर्जुन । अलद — १ चबूतरा । २ घर । पिक — तोता । पकसुत — कमल । आपाणो — १ शक्तिशाली हुआ । २ अपना । रवसुत — कर्ण ।

२ मीढति — तुलना करते हैं। वीधियो — वीध डाला।

३ पोरसि — पौरुष। ऊरं — आक्रमण किया। वद — कहता है।

(३८)

१ सलखहर — सलखा का वशज। ओपम — उपमा। विलागो — लगना। फसना। बिपहर — दो पहर। कळहक्थ — १ युद्ध चर्चा। २ युद्ध। रता — रतनसी।

२ भाळ — देखती है। भाळयळ — ललाट। वळ — लौटि आव। हुव — थव।

३ जमवारो — जीवन। अच्छरि — अप्सराएँ। पुहुण — स्वागत करने के लिये। अवयार — १ स्वीकार करना। २ उद्धार करना। अमर — अमर लोक।

४ पडियालग — तलवार। उदकसम — सूर्योदय के समय। उदक — १ जल। २ दान। पोह — प्रातःकाल। पडिगाहि — उत्साहित होकर के।

(३९)

१ परभविया — पर भव में। लियाळि — कटारी।

२ वीद — दुल्हा। वाढाळी — कटारी। हथळेवो — पाणिग्रहण।

३ प्रतमाळी — कटारी। अरिहर — शत्रु। अफिर — नहीं लौटने वाली। पिडि — युद्ध में।

४ रसलूधी — रसलुब्धा। अणियाळी — कटारी। अहवन — आह्वान।

५ परमपुरि — स्वर्ग। खाटि — प्राप्त करके। काट — जग। खित — पृथ्वी। दायजो — दहेज।

(४०)

१ दन — दिन। आखाडा — युद्ध। हसत — हाथ। अणचूक — अचूक। रोदा — मुसलमान। रूक — तलवार।

२ मोकळहरा — मोकळ का वशज। पडियालग — तलवार।

३ खित > क्षित — पृथ्वी। खळवट — युद्ध। नाश। असणा — शत्रुओं का। खूमाण — खूमाण का वशज। सावरत — लाल।

४ सूर — सूर्य। ऊदावत — उदयसिंह का पुत्र। वसू — वसुधरा। छल — युद्ध। चीतोडो — महाराणा प्रताप। चद्रप्रहास — तलवार। चोळ — लाल। चळ्बल — रक्त। युद्ध।

स्फुट

इस विभाग मे मात्र एक को छोडकर शेष सारी कविताएं, महाराज पृथ्वीराज राठोड के जीवन से घनिष्ट सबध रखती हैं यह छद कूट-काव्य शली का है, जिसे सामान्य भाषा में बुझौवल कह सकते हैं स्वय कवि ने अतिम पक्ति मे 'पीथळ कहै ऊ कवण नर' कह इसे प्रश्नांकित बना हमसे उत्तर की अपेक्षा की है यह विचित्र पुरुष पगळा है तथा इसके नाखून, चक्षु और कान भी नहीं है और जिसके बोलने से हृदय कांप उठता है —

पुरस एक पागळो जीह विण कीरत जपै ।
नख चख स्रवण विहूण, तास बोल्या उर कप ।।

यह पुरुष अन्य कोई न होकर 'नगारा' है

इसी प्रकार का दोहा क्रम स० १५, 'चपा सबधी अन्य दोहे' के अन्तर्गत है जिसमे भी एक बुझौवल है— अरथ ज दोहा माह '

इसी विभाग का एक अति प्रसिद्ध दोहा कवि के गुरु से सबधित हैं, जिसमे उनके तीन गुरुओ का नामोल्लेख है ये तीन गुरु हैं, श्री विट्ठलनाथजी, श्री गदाधर व्यास तथा श्री रामसिंघ— तीनू गुरु पृथिदास कवि ने एक अन्य स्थल पर चार और गुरुओ के नाम दिये हैं जिनका विशद वर्णन इसी ग्रथ के 'व्यक्तित्व' भाग मे आलेखित है

अन्य सारे दोहे तथा व्रजभाषा में लिखा मनहरण छद, सभी कवि के जीवन के तीन चार प्रसगो से सबधित हैं —

(१) 'वेलि' जसे उत्कृष्ट ग्रथ की रचना के पश्चात्, जब उसका प्रचार और प्रसार होने लगा था तो कुछ चारण कवियो के मन मे अकारण ही ऐसा सदेह उत्पन्न हुआ कि ऐसा उत्तमकोटि का ग्रथ चारणो के अतिरिक्त कोई नही लिख सकता व डिंगळ भाषा पर अपना एकाधिपत्य मानते थे वे यह भूल जाते हैं कि वीरता और भक्ति किसी की बपौती नही है किसी चारण कवि ने ही कितना उपयुक्त कहा है—

जो करसी उणरी हुसी, आसी विण तूतीह ।
अ नही किणरे बापरी, भगती रजपूतीह ।।

अस्तु, वेलिकार ने जब यह सुना तो उसने तत्कालीन चार प्रसिद्ध चारण कवियो को आमन्त्रित किया तथा यह ग्रथ स्वय सुनाया ग्रथ सुन कर माधोदास दधवाडिया और केशव गाडण ने तो तुरत अपना अभिमत व्यक्त करते हुये

क्योंकि राजा परमभागवत हैं, इसलिये ऐसे ग्रंथ का निर्माण उनसे सभव है, जबकि दुरसा आढा और माला सादू का सदेह वसे ही बना रहा इस पर पृथ्वीराज ने दो दोहो मे माधोदास और केशव की प्रशसा की तथा तीसरे मे दुरसा और माला की निंदा ऐसा प्रतीत होता है कि दुरसा आढा भी धीरे धीरे पृथ्वीराज के कवित्व-शक्ति से प्रभावित होते गये और एक अति प्रसिद्ध गीत 'रुक्मणि गुण लखण रूप गुण रचवण ब्रह्मतणा भाखिया वड' मे भूरि भूरि प्रशसा की माला के विचारो मे भी अवश्य परिवतन आया होगा, पर पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाणो के अभाव मे निश्चयात्मक रूप से कुछ नही कहा जा सकता

(२) दूसरा प्रसग राजबाई से है जिसका विस्तृत वर्णन पृ० ६ पर किया गया है यही राजबाई स्मरण करते ही तुरत सहायतार्थ आ उपस्थित हुई—'राव सुणता राजई, तै आणवो तेथ,

(३) अन्य तीनो प्रसग कवि की पत्नीद्वय लालादे और चपादे से सबधित हैं, जिनका विस्तृत वर्णन 'व्यक्तित्व' खड मे, 'वैवाहिक जीवन' के अतगत किया गया है

इनके अतिरिक्त पृथ्वीराज रचित जो चार कुडलियाँ उपलब्ध हुई हैं उन पर भाषा और भाव दोनो ही दृष्टियो से विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि वे पृथ्वीराज के स्तर की नही हैं ऐसी दशा मे उन्हें पृथ्वीराजकृत स्वीकार करना एक प्रश्न चिन्ह ही रहेगा।

पृथ्वीराजजी कहै (कूट दोहे)*

पुरख एक पागळो, जीह विण कीरत जपं।
नख चख स्रवण विहूण, तास बोल्या उर कप ॥
है सुथिर दरबार बाघ गजबध चलावै।
मया कर महपती, तास सुसोभा पावं ॥
अर थाट अडण सूरा सकज, परदळ हाका पलणो।
पीथळ कहै ऊ कवण नर, जास पखें जस बोलणो ॥
तोप गीरग कल्याणतण, गयो ज उसण अगाह।
मिण किर अरि डसिया नही, भरयज दूहा माह ।।

गुरु सबधो दोहा व प्रसग

गुसाईजी श्री विठ्ठलनाथजी श्री गोकुल बिराजते हैं। तब श्री राव कल्याणमलजी के छोटे पुत्र श्री पृथ्वीदासजी दिल्ली जावते गोकुल आये हैं सा श्री गुसाईजी को दशन कर आपके शिष्य भय। यहाँ प्रमाण दोहा पृथ्वीराजजी को—

दीक्षा गुरु विठलेश है, गुरु गदाधर व्यास।
चतुराई गुरु रामसिघ, तीनु गुरु पृथिदास ॥[1]

(महाराणा प्रताप के पत्र पर अकबर और पृथ्वीराज मे विवाद की बात जान कर, चपा का चिंतित हो पति के पास मे पत्र भेजना व पृथ्वीराज क उत्तर का प्रसग)

चपा का प्रश्न—पति जिद की पतिसाह सों, एह सुणी मैं आज।
कहँ पातळ अकबर कहाँ, करियौ बडो अकाज ॥

मनहरण छद

पृथ्वीराज का उत्तर—

जबत सुने हैं बैन, तबतें न मोको चैन,
पाती पढ़ि नेक सो विलब न लगावेंगो।

---

*पुरख—पुरुष। विहूणा—विना। थाट—सेना। अडण—मुकाबिला करने के लिये। पेलणो—नष्ट करना। हाका—१ शोर। २ आक्रमण। अर—अरि। गौरग—गौराग। उसण—अग्नि। मिण—मणि।

---

१ 'आर्याख्यान कल्पद्रुम' दयालदास कृत। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर। राजस्थानी विभाग ग्रंथांक १८०

लेक जमदूत से समथ्थ रजपूत आनि,
आगरे मे आठा जाम ऊधम मचावगो ।
कहै प्रथीराज, प्रिया ! नेक उर धीर धरो,
चिरजीवी राना सो म्लेछन भगावगो ।
मन को मरद्द मानो प्रबल प्रतापसिंघ
बब्बर ज्यो तडपि अकबर प आवैगो ॥

पृथ्वीराज कृत केसोदास गाडण और माधोदास दधवाडिया के प्रशसा मे कहे गये दोहे जो उनके द्वारा वेलि की प्रशसा करने पर प्रतिप्रशसा मे कहे गय थे—

'कसो' गोरखनाथ कवि, चेलो कियो चकार ।
सिध रूपी रहता सबद, गाडण गुणभडार। ॥[1]
चू डै चत्रभुज सेवियो, तलफळ लागो तास ।
चारण जीवो चार जुग, मरो म माधोदास ॥[2]

प्रथम पत्नी लालादे सबधी प्रसग

(अवधि समाप्त होने पर भी पति के न लौटने पर लालादे का चितारोहण कर भस्म होना)—

पति परितिग्या साभळो अवध उलघन थाय ।
प्राण तजू तो विरह मे, कदै न राखू काय ॥

(लालादे के जल जाने पर पृथ्वीराज का विरह विलाप)—

कथा ऊभा कामणी, साई ! थू मत मार ।
रावण सीता ले गयो, वे दिन आज सभार ॥१॥
लाला, लाला हू करू, लाला साद म देय ।
मो अधा री लाकडी मीरा खीच म लेय ॥२॥
तो राध्यो नह खावसू, रे वासदे ! निसड्ड ।
मो देखत थें बाळिया, लाला-हदा हड्ड ॥३॥

---

१ और २ राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान, काव्य चर्चा पृ० ८१-८२ ले० डॉ० कन्हैयालाल सहल प्र० राजपूत प्रस लि० जयपुर ।

द्वितीय पत्नी चपादे सबधी प्रसग

(लालादे और चपादे, दोनो बहिनो के साम्य पर पृथ्वीराज का एक बारगी धोखा खाना, पर फिर पहिचान लेना)—

आयी है चपा अठै वा लाला अब नाहि

(चपा को अगीकार करना)—

चपा! डगला चार, सामा ह्वै दीजै सजल।
हीडळते गळ हार, हसतमुखा हरराय री॥

चपा का उत्तर —

मुकुल परिमल परीहरे, जब आये ऋतुराज।
अलि नही, अलि हयन की, कलि विकसे कहि काज॥

चपा सबधी अन्य दोहे —

चपा! थू हरराज री, हँस कर वदन दिखाय।
मो मन पात कुपात ज्यू, कबहू तृपत न थाय॥१॥
चपा! चव पासेह अति ऊडइ पथ डोहियो।
दरस विकसती देह, हल आया हरराजउत॥२॥
चपा तिल अम्ह चीत, वास तुम्हीणो वासियो।
हिव जु फूली प्रीत, मो हीयइ हरराजउत॥३॥
चपा चढी सुवास, मो मन माळी हरतणी।
नण सुगधी वास, हीय आगइ हरराजउत॥४॥
चपा घउकइ काढि, उपजइ दाखिजसइ नही।
तन सू तन ची चाढि, काइ हरि सू हरराजउत॥५॥

चपा सबधी अन्य दोहे —

१ कुपात — कुपात्र।
२ चव पासेह — चारो ओर। डोहियो — उद्वेलित। हरराजउत — हरराज (जैसलमेर के राजा) की पुत्री।
३ अम्ह — मेरे। चीत — चित्त। मोहीयइ — मोहित करती है। (मरे हृदय म)।
४ आगइ — आगे। हरतणी — हरतनया चपा।
५ दाखिजसइ नही — कहा नहीं जाता।

चपा चमकताह, दात कहूँ कै दामिणी ।
अहरां नइ आभाह, होड पडी हरराजउत ।।६।।

चपा चउसर माळ, गूथ नइ घातो गळइ ।
काइ तोसू इकताळ काइ हरि सू हरराजउत ।।७।।

ज्या परमळ त्या तुच्छ दळ, ज्या दळ त्या नही गध ।
चपा केरे तीन गुण सदळ सरूप सुगध ।।८।।

सज्जण घणा ही सपज, काळा अन कुव्रन्न ।
म्हाका सयणा सारिखा, समुद्रे नही रतन्न ।।९।।[1]

तोनू लोडे रे हीया, तू ही तानू लोडि ।
ऊ मन खच अप्पणो, तू मो लाहु तोडि ।।१०।।

सज्जणिया साल नही, साल आहीठांण ।
समरि समरि पिजर भये, देख देख आहिनाण ।।११।।

ने माणस किम वीसरै ज्यासू घणो सनेह ।
राति दिवसि मन मे बस, ज्यू बाबीहा मेह ।।१२।।

हसो चीत मानसर, चक्वो चीत भाण ।
तिम हू तूनै चीतवू भावै जाण म जाण ।।१३।।

साजिणी थारी थकी, भाव जाण म जाण ।
चिलै चढी कमाण ज्यू त्यू भावै त्यू ताण ।।१४।।

---

६ अहरा – अधरो की । नइ – और । आभाह – आकाश मे । होड – प्रतिस्पर्धा ।

७ इकताळ – प्रेम । गळइ – गले मे । काइ – अथवा । तोसू – तुझसे ।

८ केरे – के । परमळ – सुगध ।

९ कुव्रन्न – खराब वण के । सपज – मिलते ।

१० लोडे – विचलित करता है । तोनू – तेरेको ।

११ सालै नही – शल्य रूप नही है । आहीठाण – चिन्ह, सकेत । अहिनाण – चिन्ह । साल – सलते हैं

१२ बाबीहा – पपीहो के । किम – कैसे । ज्यासू – जिनसे ।

१३ चीतै – स्मरण करता है । मानसर – मान सरोवर । भाण – भानु सूर्य । भाव – चाहे ।

१४ साजिणी – सजनी । चिल – प्रत्यचा पर । ताण – खीचले ।

---

[1] दोहा सख्या ९ से १४ तक श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ने प्रेषित किये है

गाथा

एक अन्य प्रसग —

पृथ्वीराज वरस ३६ रावळ हरराज री दीकरी भटियाणी चापावती परणनइ पातिसाह री चाकरी गयो । तिवारइ पातिसाह चाकरी करतो चचळ चित दीठो । तरइ पूछियो—

प्रश्न—मन उतराधो तन दखण, कहो नहि कवण विचार ?

उत्तर—मन गुणवती मोहियो, तन रूधो दरबार ।।

गाथा

इतरइ पातिसाह पूछियो । किसी गुणवत । तरइ प्रिथीराज कहइ ।

के सेवइ पग नाथना के सेवइ तन गग ।
प्रियु सेवइ चपाकली सदळ सरूप सुगध ।।

गाथा

तरइ पातिसाह रीभवाण हुइनइ सिरपाव देनइ सीख दीधी । तर वरस बारा हुती घरे आया । जरइ महल पधारिया । तरइ चचावती देखनइ कह्यो—

बहु दीहा हु वल्लहो, आयो मदिर आज ।
कवळ देख कुमळाईया कहोस केहइ काज ।।
चुगै चुगाय चच भरि, गये निलज्ज कग्ग ।
काया सर दरियाय दिल, आइ ज बैठे बग्ग ।।

गाथा

तरइ पृथ्वीराजजी बोलिया

काया थिहुर म पेख धन, मू घ म करि अणुराव ।
पाना पुरखा वन फळा इहु त्रिहु पक्का साव ।।
अवर सहु धवली भली, निखरो पळी मराह ।
तिणथी कामिण यू डर, (जु) दीठ कग्ग सराह ।।

वल्लहो – वल्लभ । चच – चोच । कग्ग – कौआ । बग्ग – बगुले । दीहा – दिवस । थिहुर – स्थिर । मुध – मुग्धा । अणुराव = उपेक्षा । निखरो – (१) सुदर (२) बुरा, पळी – काले बालो मे सफेद बाल । सराह – बाणो से ।

पृथ्वीराज चंपावती संबधी एक और प्रसग—

सफेद बाल को निकालते समय दपण मे चपा की परिछाई देखकर—

पीथळ धोळा आविया, बहुली लागी खोड ।
पूरे जोबण पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड ।।

चतुर चपा ने उपयुक्त उत्तर दिया—

प्यारी कह, पीथळ सुणो, घोळा दिस मत जोय ।
नरा, नाहरा डिगमरा, पाक्या ही रस होय ।।
खेडज पक्का धोरिया, पथज गध्धा पाव ।
नरा तुरगा वनफळा, पक्का पक्का साव ।।

पृथ्वीराज

कृत माला साद्गू और दुरसा आढा विषयक वह दोहा जा इन दोनो के 'वेलि' की प्रशसा न करने पर कहा गया था —

बाई बारे खाळिया, कोई नही न जाय ।
ऊदे मालो ऊपनो, मेहे दुरसो थाय ।।[1]

पृथ्वीराज कृत

राजबाई की प्रशशा में कहा गया दोहा —

बयानो केथ आगरो चिडारवो स केथ ।
राव सुणता राजई त प्रणवो तेथ ।।

कुण्डलिया प्रथीराज किलाणमलोत री कही

अरक रातम्बर उगव, तिते सिर घर सेस ।
तूम सर (अेके) राज नही अइयो मुरधर देस ।।
अइयो मुरधर देस, कनेरा सुहावणा ।
लोर्ई धावळ वेस, चटक्का लावणा ।।

धोळा आविया = सफेदबाल आगय । (वृद्धावस्था का सूचक) । बहुळी = बडी। खोड = अवगुण । डिगमरां = दिगम्बरो के । गध्धा = ऊटों के ।

---

१ राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान काव्यचर्चा पष्ठ ८१ ८२, ले० डॉ० कन्हैयालाल सहल, राजपूत प्रेस लि०, जयपुर सन् १९४९

केहर लकी नारि, कुरगो नणिया ।
बोलै घर घर माझ, सुकोकिल वणिया ।।१।।

कोकिल बैंणी कामणी केसर बरणै गत्त ।
पिव रत्ती प्राण रत्त पर, हत हरदे चित्त ।।
हेत हरदे चित्त कै रग सुरगिया ।
लगै वचन लभ क वैंणी उरगिया ।।
काजळ टीलो वढाय क भ्रूहु धानखसी ।
किर नग्गी समसेर, उपच्छर उर वसी ।।२।।

उपच्छर जेही उर बसी, रगी लोई वेस ।
पूगळ करी पदमणी त्रिया मुरधर देस ।।
त्रिया मुरधर दस क छला टोळिया ।
कासू सायिवराज पै मीठी बोलिया ।।
पावे गळिया पैठ क करवत्ता सघियां ।
तये घूमर पान जिण्हारा लधिया ।।३।।

लजा हुजा लधिया, मारू खडी नार ।
पारबती हर पूजिया कै तूठ किरतार ।।
क तूठ किरतार वै मारू घट्टिया ।
जाणक विधका हस कही (   ) या ।।
उर दोय घर अनार कै नारगिया ।
प (हरे) रगे सुरग क फूलो केतकिया ।।४।।[१]

---

१ अरक = अक, सूय ।
२ गत्त = गात = शरीर । उरगियां = नागिन । उपच्छर = अप्सरा ।
३ पूगळ = भूतपूव बीकानर राज्यान्तगत एक प्रदेश ।
४ तूठे = प्रसन्न होते हैं ।

१ बगाल हिंदी मण्डल कलकत्ता सग्रह कॉपी स० ६८ श्री सौभाग्यसिंह का लेख राजस्थान भारती भाग ६ अंक ४ पृष्ठ ४५ ४६ से उद्धत ।

पृथ्वीराज राठौड

संबंधी उपलब्ध प्रशंसात्मक काव्य सामग्री

एक पराक्रमी वीर के रूप में तो पृथ्वीराज की ख्याति पहिले से ही थी पर जैसे ही भगवद्भक्ति से आपूरित उनका प्रथम ग्रंथ 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' प्रकाश में आया तो उनकी ख्याति में चार चाँद लग गये अब तो उनकी यशोगाथा सर्वत्र गाई जाने लगी भक्तों ने उन्हें श्रेष्ठ भक्त के रूप में स्वीकार किया और काव्य रसिकों ने उच्चकोटि के कवि के रूप में

राजस्थानी ग्रंथों में यही एक मात्र ऐसा ग्रंथ है जिसकी सर्वाधिक टीकायें विभिन्न भाषाओं और शैलियों में लिखी गई संस्कृत, ब्रज, गुजराती, हिंदी, ढूंढारी और मेवाड़ी आदि टीकाओं में इसकी अपार लोकप्रियता का पता चलता है विशिष्ट और सामान्य जन के पठनपाठन के लिए 'वेलि' की शताधिक प्रतिलिपियाँ की गईं और इस प्रकार हम देखते हैं कि यातायात और दूर संचार के साधनों के अभाव में भी वेलि और उसके कर्ता की कीर्ति सौरभ सर्वत्र प्रसरित हो गई थी

उनके काव्य से प्रभावित हो चारण, भाट, भक्त और कवियों ने समय समय पर जो भावांजलियाँ अर्पित की हैं उनकी उपलब्धता को ध्यान में रख उसको एक स्थान ही विभाग में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है इस विभाग के दो कवि, मुरवार नाभादास तथा राष्ट्रीय कवि दुरसा आढ़ा तो उस काल के समकालीन नामों में से रहे हैं जिनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है

म्हैं कहियो हरि भगत प्रथीमल,
स्रवण वयण कहण ततसार ।
रामो कहै पीथा महाराजा,
आखर व्यास तणो अवतार ॥३॥

तै ऊपर पाछो दूहो प्रथीराजजी कहै—

गुण पूरा गुरु सुगुरा, सायर सूर सुभट्ट ।
रामो रतनो खेतसी, गाडण गांधी हट्ट ॥

*—अनूप संस्कृत लाइब्रेरी । राजस्थानी विभाग
गुटका नं० १२६ स ।*

(२)

गीत प्रथीराजजी रो दुरसो आढो कहै

रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण,
वेलि तासि कुण कर वखाण ।
पाचमो वेद भाखियो पीथळ
पुणियो उगणीसमो पुराण ॥१॥

केवळ भगत अथाह कलावंत,
तै जु क्रिसन श्री गुण तवियो ।
चिहु पाचमो वेद चालविया,
नव दूणम गति नीगमियो ॥२॥

मैं कहियो हर भगत प्रिथीमल,
अगम अगोचर अति अचड ।
व्यास तणा भाखिया समावड,
ब्रह्म तणा भाखिया वड ॥३॥

(३)

गीत पथ्वीराजजी रो, मोहनरामजी रो कह्यो

रुकमणी तणी वेलि पृथीमल रची,
उदधि वास कीधो उदरि ।
बुधि गजमुख बोलिवै विदुखा,
पुणिया वाइक व्यास परि ॥१॥

श्रवणं ब्रह्म सवद तको सचरिमो
नयण अरक इद उभ निवास ।
हरि कर मौलि घ्यान हरि सम हरि
अवळि, दीपवै तणो उजास ॥२॥

विस जाणग ग्रहम उकति ताइ वधी,
वाहु हणू भणिया तो वीर ।
रति सट ग्रगि उर मा (ल) सुरत्ती,
धरणी ग्रखिर मेर स धीर ॥३॥

पढ़िव गग प्रवाह प्रवाणी,
सुणता ग्रम्रित पान समथ ।
माड प्रभू री माथ ग्रथ माखण,
परगट कीधी लता ग्रथ ॥४॥

(४)

गीत पृथ्वीराज कल्याणमलोत रो

बारहट लाखो कहै

वपि वाधै नितू विराज ग्रविरळ भले विहु विध उरनवली भाति ।
प्रभु सू जेतो हेत प्रथीमल, प सरसो तेतो पुरसाति ॥१॥
राजे राव राठोड प्रथीरज, रूडै ग्रगि रूडी बे रीत ।
प्रीत जिसी सरस जगतपति, प सो तिसी खत्रीपण प्रीत ॥२॥
ग्रधिको नित कलियाण ग्रगोभव, उभै विधि ग्रधिकार ग्रछेह ।
ऊहे जिम तूझ सनह सरिस हर, सु सतिय तो सरिस सनह ॥३॥
विध विहु रिध की जत वसोधर, धारण हेकण ग्रवण धन ।
मनि तू ऊवर सुरे न मानै मछर न ऊबरै नरे मन ॥४॥

—*शोध पत्रिका, वष १८ अक १ श्री सौभाग्यसिंह शेखावत क महाराज पृथ्वीराज राठौड़ रचित छप्पय लेख से ।*

(५)

वेलि रा ढूढाडी टीकाकार लाखाजी चारण कृत

कितरा ग्राग वड कवी, पुथ्वा प्रभु जस पेस ।
श्राज ग्रोपमा चातुरी, वकत्या ग्रथ ग्रादेस ॥१॥
नारायण तणो काव्य वड नीको, वाखाणण चौ करि विस्तार ।
चोज कमध कवि चाढि ग्रोपमा, नमो पीथ नित उकति ग्रपार ॥२॥

वरदा वष १३ अंक ४ से—
पाठान्तर—
१ अविरच । ३ उभै विध । ४ विध विहूं अधिकी जत बसोधर । ऊवर ।

(६)
गीत

गढवो कहै रा ।। प्रिथीराज कल्याणमलोत नू

काकर है कू जाणो ?
ठोठणो ठाहरा वड ए ।
कहिया गुण काकाणा,
मैंकाणो नैंव जाणति ।।१।।

प्रिथीराजजी कहै—

वड श्री प्रथम चिसाणो
पाछै वूलति जोड दादाणो ।
मकाणै कू जाणो तिका तो ?
काकाणो नैंव जाणति ।।२।।

(७)
कलस भोजक जादव कृत

(उद्भिज वेलि से वेलि ग्रंथ का रूपक)

वेद बीज जळ वयण सुकवि झड मडी सघर,
पत्र दुहा गुण पुहप वास भोगी लिखमीवर ।
पसरी दीप प्रदीप अधिक गहरइ आडवर,
जे जपड मन सुध्धि, अब फळ पामै अंतर ।
विस्तार कीध जुग जुग विमळ धणी क्रिसन कहिणार घन,
अमृत वेलि पीथल अचळ, तैं रोपी किल्याण तन ।

(८)
भक्तमाल के रचयिता नाभादासजी कृत छप्पय

सवैया गीत सलोक वेलि दोहा गुण नव रस ।
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विधि गायो हरिजस ।।
परिदुख विदुख सलाध्य वचन रचना जु उचार ।
अर्थ विचित्र निमोल, सब सागर उद्धारै ।।
रुकमिणी लता वरणन अनुप, वागीस वदन कल्याण सुव ।
नर दव उभ भाखा निपुण, पृथ्वीराज कविराज हुव ।।

(९)
सम्राट अकबर

पीथल सौं मजलिस गई, तानसेन सौं राग ।
रीझ बोल हँस खेलबो, गयो बीरबल साथ ।।

(१)

१ वखाण — प्रशसा । भाखियो — कहा, रचा । पाथा — पृथ्वीराज ।

२ कलावत — कल्याणसिंह का पुत्र, पृथ्वीराज । चो — के । तवियो — वर्णन किया । चाळवियो — रचा । नव दसमो ग्र थ — उन्नीसवाँ पुराण । नीगमियो — बनाया ।

३ आखर — १ अतिम । २ अक्षर । काव्य-रचना मे ।

(२)

१ पुणियो — कहा । वर्णन किया, रचा ।

२ किसन-स्त्री — श्री कृष्ण की पत्नि, रुक्मिणी । गुण तवियो — गुण गाया । काव्य रचा । नव दूणम — नौ का दूना, अठारह ।

३ अचड — श्रेष्ठ । समोवड — समान ।

(३)

१ बुधि — सरस्वती । गजमुख — गजानन । विदखा — विद्वत्तापूर्ण । पुणिया — निर्माण किया, कहा । वाइक — वचन (ग्रथ) । परि — समान ।

२ सचरियो — उत्पन्न किया कहा । २ चला । मौली — १ मस्तक । २ चोटी । सम — बराबर, समान । अवळि दीपक — दीप पंक्ति ।

३ जाणग — ज्ञाता । हणू — हनुमान । रुति खट — षट ऋतु । सुरत्ती — सुन्दर, अच्छे रग वाली ।

४ प्रवाणी — परावाणी ब्रह्मविद्या । ग्र थ — कथा, रचना, ग्र थ । परगट — प्रकट । माथा — मथनकर । प्रथ — पृथ्वीराज ।

(४)

१ नवली — १ नयी । २ अनोखी । पै सरसो — उसी समान । पुरसाति — पुरुषार्थ ।

२ बे — दो । रूडी — १ भली । २ सुदर । सो तिसी — वसी ही । खत्रीपण — क्षत्रियत्व ।

३ कलियाण अगोभव — कल्याणमल का पुत्र । अछेह — अत रहित । अनत । व्हैं — १ है । होता है । सतिय — सती पत्नी ।

४ बिहु बिहु — दोनो प्रकार । रिध — ऋद्धि । जत वसोधर — जैतसिह का वशज । हेकण — एक ही । अखण — प्रदान करने के लिये । २ कहने के लिये । ऊबर — उद्धार होता है । मछर — मत्सर ।

(१०)

श्रीसार कृत

वेलि की संस्कृत टीका की प्रशस्ति से उद्धृत

तद्भ्राता राष्ट्रकूट प्रकटतर यशा शुद्ध चेता सुशील ।
सद्बुद्धि शास्त्रकर्ता हरिचरण युग्माराधनकाग्रचित्त ।
पृथ्वीराज प्रसिद्धो जगति गुणनिधा राजराजा कवीना ।
समा वल्लीतिनाम्नी हरि चरितय युता राज गीताचकार ॥१६॥
पृथ्वीराजावतारेण भक्तानुग्रह काम्यया ।
स्वय नारायण स्वस्य जगाद्चरितहित ॥२०॥
दाता भोक्ता हरेभक्ति कर्ता शास्त्रस्य शास्त्रवित् ।
पृथ्वीराज समो राजा न भूतो न भविष्यति ॥२१॥
श्रुत्वा वल्लीतिनामान सव रसाद्भुत ।
टीका सुटीका तस्याय कृष्णनदोहयचीकरत् ॥२॥

(११)

विभिन्न दोहे

वद च्यार नव व्याकरण, गुण चौरासी गूढ ।
त मत प्रथ कल्याण तन, अव गई मजलस ऊठ ॥
वठ सरस्वती नूर मुख, पिंड पौरख उर राम ।
तभगि प्रथ कल्याण तन, चहु विलबण ठाम ॥

(१२)

प्रस लीलो, पिव पीथळो, चपावती ज नार ।
अै तीनू ही श्रेष्ठा, सिरज्या सिरजणहार ॥[1]

(१३)

पृथ्वीराज कल्याण रा, थारो जस गाऊँ ।
तू दाता, हू मगतो, इण नातै पाऊ ॥[2]

प्रसग —(२) कहते हैं कि पथ्वीराज की स्मरण शक्ति बडी तेज थी कोई कवि इनाम की आशा से कुछ बना कर लाता और इन्हे सुनाता तो वे उस काव्य को तुरत दुहरा देते और कहते कि यह तो पुरानी कविता है अत मे एक चारण ने सोचकर यह दोहा बनाकर इन्हें सुनाया तथा पुरस्कार प्राप्त किया)

[1] और २ यह दोनों दोहे 'राजस्थान रा दूहा पृष्ठ १०६ १०७ स० श्री नरोत्तमदास स्वामी से उद्धृत किये गये हैं।

(१)

१ बखाण – प्रशंसा । भाखियो – कहा, रचा । पीथा – पृथ्वीराज ।

२ कलावत – कल्याणसिंह का पुत्र, पृथ्वीराज । चो – के । तवियो – वर्णन किया । चाळवियो – रचा । नव दसमो ग्रंथ – उन्नीसवाँ पुराण । नीगमियो – बनाया ।

३ आगर – १ अतिम । २. अक्षर । काव्य-रचना में ।

(२)

१ पुणियो – कहा । वर्णन किया, रचा ।

२ किसन-स्री – श्री कृष्ण की पत्नि, रुक्मिणी । गुण तवियो – गुण गाया । काव्य रचा । नव दूणम – नौ का दूना, अठारह ।

३ प्रचंड – श्रेष्ठ । समोवड – समान ।

(३)

१ बुधि – सरस्वती । गजमुख – गजानन । विदखा – विद्वत्तापूर्ण । पुणिया – निर्माण किया, कहा । वाइक – वचन (ग्रंथ) । परि – समान ।

२ सचरियो – उत्पन्न किया कहा । २ चना । मौली – १ मस्तक । २ चोटी । सम – बराबर, समान । अवळि दीपव – दीप पंक्ति ।

३ जाणग – ज्ञाता । हणू – हनुमान । रुति राट – षट ऋतु । सुरत्ती – सुंदर, अच्छे रंग वाली ।

४ प्रवाणी – परावाणी ब्रह्मविद्या । ग्रंथ – कथा, रचना, ग्रंथ । परगट – प्रकट । माया – मथनकर । प्रथ – पृथ्वीराज ।

(४)

१ नवली – १ नयी । २ अनोखी । पै सरसो – उसी समान । पुरसाति – पुरुषार्थ ।

२ बे – दो । रूडी – १ भली । २ सुंदर । सो तिसौ – वैसी ही । खत्रीपण – क्षत्रियत्व ।

३ कलियाण अंगोभव – कल्याणमल का पुत्र । अछेह – अंत रहित । अनंत । ह्वै – १ है । होता है । सतिय – सती पत्नी ।

४ विध बिहु – दोनो प्रकार । रिध – ऋद्धि । जत वसोधर – जैतसिंह का वंशज । हेकण – एक ही । अवण – प्रदान करने के लिये । २ कहने के लिये । ऊबरै – उद्धार होता है । मछर – मत्सर ।

(५)

१ कितरा – कितने । पुण्या – कहे, रचे । चोज – १ चमत्कार पूर्ण उक्ति । २ बुद्धि की सूक्ष्मता । ओपमा – उपमा । वक्त्या – वक्ता । प्रथ – १ विशाल । १ पृथ्वीराज । आदेश – नमस्कार ।

२ तणो – का । वड नीको – अति उत्तम । वाखाणण – वर्णन करना । चो – का । कमध कवि – कवि पृथ्वीराज राठौड़ । पीथ – पृथ्वीराज । उकति – उक्ति ।

(६)

१ काकर – कैसा । कूं – क्या । ठाठाणो – अपार समूह । ठाहरा – स्थान । काकाणा – १ काका का घर । २ काका (पिता) संबंधी । नेंकाणो – मायका । नव – नहीं ।

२ वड श्री – प्रथम पत्नी । चिसाणो – चीख मारी, चिल्लाया । कुलति – कुलवती । दादाणो – दादा का घर । तिका – वह ।

(७)

झड़ सघर – अविरल धारा । पुहप – पुष्प । वाग भोगी – भौंरा । लिखमीवर – विष्णु, श्रीकृष्ण । दीप-प्रदीप – खंड प्रखंडों में । गहरड़ – घने । आडंबर – प्रसार । पीथळ – पृथ्वीराज । रोपी – बोई ।

(८)

सलोक – श्लोक । सलाध्य – प्रशंसा के योग्य, श्रेष्ठ । निमोल – अमूल्य । वागीस वदन – जिसके मुंह पर सरस्वती विराजमान है । कल्याण पुत्र – कल्याणमल का पुत्र पृथ्वीराज । नर भाखा – जन भाषा । देव भाखा – संस्कृत भाषा । उभ – दोनों ।

(१२)

असलीलो – श्वेताश्व । पिव – पति । पीथळो – पृथ्वीराज । सिरज्या – सरजन किया । सिरजणहार – ईश्वर ।

नामानुक्रमणिका

व्यक्ति व स्थान

ा भूपतिराम साकरिया
1926, बालोतरा (राजस्थान)
ालोतरा, जोधपुर, उदयपुर
(हिन्दी) बी एड
एव अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
पटेल आर्ट्स कॉलेज वल्लभ
र

संस्थाएं, ग्रंथ व पत्रिकाएं

प्रो भूपतिराम साकरिया

जन्म 3 जून 1926, बालोतरा (राजस्थान)

शिक्षा स्थल बालोतरा, जोधपुर उदयपुर

डिग्री एम ए (हिन्दी) बी एड

पद 1 प्रोफेसर एव अध्यक्ष, हिन्दी विभाग टी वी पटेल आर्टस कॉलेज वल्लभ विद्यानगर

2 मेजर, एन सी सी (अवकाश प्राप्त)

सपादन 1 पद्य पुष्प

2 गद्य द्वादशी

3 साहित्य सलिला

4 ढोला मारू रा दूहा

स्वरचित 1 छेटो (राजस्थानी काव्य सग्रह), 1966

2 आधुनिक राजस्थानी साहित्य 1969

3 महाकवि पृथ्वीराज राठौड व्यक्तित्व और कृतित्व, 1975

सदस्य 1 राजस्थानी परामर्श मडल साहित्य अकादमी, दिल्ली

2 सेनेट सरदार पटेल युनिवर्सिटी वल्लभविद्यानगर

3 भूतपूर्व अध्यक्ष हिन्दी अभ्यास क्रम समिति सरदार पटेल युनिवर्सिटी

प्रकाशनाधीन रचना इतरा द किरतार

लेखन शोधपूर्ण निबध

कहानी

मिनी एकाकी

नवबोध की कविताएँ